रवीन्द्रनाथ के नाटक

(द्वितीय खण्ड)

रवीन्द्रनाथ के नाटक

(द्वितीय खण्ड)

'राजा', 'डाकघर', 'मुक्तधारा' और रक्तकरबी'

अनुवादक :

स० ही० वात्स्यायन

प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'

भारतभूषण अग्रवाल

हजारीप्रसाद द्विवेदी

साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

*Ravindranth ke Natak (*Volume II*)* : Hindi translation by S. H. Vatsyayan, P. C. Ojha 'Mukta', B. B. Agarwal and H. P. Dwivedi of Rabindranath Tagore's Bengali plays *Raja, Dakghar, Muktadhara and Raktakarabi.* Sahitya Akademi, New Delhi (1967) Price Rs. 8.00

विश्वभारती प्रकाशन विभाग के सौजन्य से
इस संस्करण का प्रकाशन

प्रथम संस्करण : १९६३
द्वितीय संस्करण : १९६६
तृतीय संस्करण : १९६६
चतुर्थ संस्करण : १९६७

प्राप्ति-स्थान :
साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

मुद्रक :
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

मूल्य : आठ रुपये

प्रस्तावना

१

संख्या और रूप की विविधता की दृष्टि से रवीन्द्रनाथ के नाटको की संख्या कम नही है। सख्या और श्रेणी-वैचित्र्य के मापदण्ड के आधार पर विचार करने से उनके काव्य के उपरान्त ही नाटकों को स्थान देना पड़ता है। उनकी नाटक-रचना के धारावाहिक इतिहास का अनुसरण करने पर हम देखते है कि किशोरा-वस्था से लेकर जीवन के आखिरी दिन तक नाटक-रचना तथा नाटक-प्रयोजना में उनका उत्साह बराबर बना रहा। रचना से पहले की पीड़ा है प्रयोजना तथा अभिनय। रवीन्द्रनाथ के नाटक लिखना प्रारम्भ करने से पहले उनके अन्यतम अग्रज ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर ने नाटक लिखना प्रारम्भ कर दिया था, घर मे उन सब नाटको का बीच-बीच में अभिनय भी चलता रहा; घर से बाहर पेशेवर रगमच पर अभिनीत उनके नाटको से उनकी ख्याति बढ चली। और उनसे भी पहले रवीन्द्रनाथ के ताऊ जी के बड़े लड़के गणेन्द्रनाथ, गुणेन्द्रनाथ आदि नाटक-प्रेमी रामनारायण से नाटक लिखवाकर बडे प्रेम से घर में उनका अभिनय करवा रहे थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि बालक रवीन्द्रनाथ नाटक-रचना तथा प्रयोजना के वातावरण के बीच पले है। साहित्य के विषय मे सचेतन इस प्रकार का वह बालक पहले दर्शक के रूप मे, फिर अभिनेता के रूप मे और अन्त मे लेखक के रूप मे नाटक की ओर आकृष्ट होगा यह सहज ही समझ मे आ जाता है। हुआ भी यही। केवल-मात्र दर्शक की भूमिका जब खत्म हो गई, तब ज्योति-रिन्द्रनाथ के नाटको मे दो-एक गीत, दो-एक सवाद जोड़ना उन्होंने प्रारम्भ कर दिया; उन्हीं के नाटको मे भूमिका ग्रहण करके वे दर्शको के सम्मुख आत्म-प्रकाश करने लगे। 'जीवन-स्मृति' ग्रथ मे इन सब विवरणो का आभास मिलता है। किन्तु इसी बीच अर्थात् इस वातावरण की प्रेरणा से वे कब प्रथम बार नाटक-रचना मे प्रवृत्त हुए यह बात जानने का कौतूहल बहुत ही स्वाभाविक है। 'जीवन-स्मृति' से ज्ञात होता है कि शान्तिनिकेतन के धूप से अभिषिक्त मैदान मे बैठकर बालक कवि ने 'पृथ्वीराज-पराजय' नामक एक रौद्ररसात्मक नाटक लिखा था।

यह नाटक बाद मे उपलब्ध नही रहा। रवीन्द्र के जीवनीकार प्रभातकुमार मुखोपाध्याय का अनुमान है कि परवर्ती युग में रचित 'रुद्रचण्ड-नाटक', 'पृथ्वीराज-पराजय' का रूपान्तर-मात्र है। इस लुप्त उदाहरण को छोड़ देने पर 'वाल्मीकि प्रतिभा' नामक गीति-नाटय को उनकी प्रथम नाटक-रचना की प्रचेष्टा कहा जा सकता है। पहले जिस घरेलू वातावरण का उल्लेख किया गया है 'वाल्मीकि-प्रतिभा' के साथ उसका सम्बन्ध है। 'विद्वज्जन-समागम' नाम की एक सभा बीच-बीच मे जोड़ासाँको की ठाकुर-हवेली में बैठती थी। उसी सभा के मनोरंजन के हेतु इस चिरसरस गीति-नाट्य की रचना हुई थी। रवीन्द्रनाथ के इसके प्रधान कारीगर होने पर भी बिहारीलाल, ज्योतिरिन्द्रनाथ तथा अक्षय चौधुरी के हाथ का काम इस रचना मे मिल जाता है। उस समय के लिखे हुए अधिकांश नाट्यकारों के अधिकाश नाटक कब के सूखकर रस-विहीन हो विदा ले चुके है, किन्तु बीस साल के युवक द्वारा रचित यह नाटक अब भी अम्लान है। जब भी इसका अभिनय होता है दर्शको की कमी नही होती।

मधुसूदन दत्त ने प्रथम बँगला-काव्य की रचना करके अपने बन्धु को लिखा था कि शेर ने रक्त का स्वाद पा लिया है अब भला छुटकारा कहाँ ? प्रथम नाटक की रचना के बाद रवीन्द्रनाथ की स्थिति भी कुछ इसी प्रकार की हुई। कुछ ही वर्षो के भीतर 'रुद्रचण्ड', 'कालमृगया', 'प्रकृति का प्रतिशोध', 'नलिनी' एव 'मायार खेला' उन्होने लिख डाले। 'रुद्रचण्ड' नाटक का नायक रुद्रचण्ड दस्यु है। नागरिक सभ्यता और राजपद के विरुद्ध उसका निदारुण विक्षोभ नाटक मे प्रकट हुआ है। नाटक मे दो चरित्र और हैं—रुद्रचण्ड की बालिका कन्या अमिया तथा चाँद कवि। इस नाटक को यदि हम स्मरण न रख सके तो भी कोई हानि नही—किन्तु इस बालिका को और इस कवि को भूलने से काम नही चलेगा। ये दोनो परवर्ती नाटको मे नाना नामो से और आखिरकार सब नामो मे रूपान्तरित होकर समाविष्ट होते चले गए है।

'कालमृगया' नाटक परवर्ती युग मे 'वाल्मीकि-प्रतिभा' के साथ युक्त हो गया है।

'मायार खेला' गीति-नाट्य है। यद्यपि 'वाल्मीकि-प्रतिभा' और इसमे प्रभेद इतना ही है कि पूर्वोक्त मे तो घटना-विन्यास तथा चरित्र-सृष्टि पर अधिक जोर दिया गया है, पर 'मायार खेला' मे वह चेष्टा नही की गई है—सुर के धागे मे हृदयावेग को पिरो देना ही इसका उद्देश्य रहा है।

रचना की दृष्टि से 'प्रकृतिर प्रतिशोध' अपक्व होने पर भी यहाँ सबसे

पहली बार रवीन्द्रनाथ ने अपने जीवन-तत्त्व को प्रकाशित करने की चेष्टा की है। 'प्रकृतिर प्रतिशोध' की बालिका 'रुद्रचंड' की अमिया का रूपान्तर है।

यहाँ आकर रवीन्द्रनाथ के जीवन का नाटक-रचना में शिक्षा प्राप्त करने का यह पर्व खत्म होता है। नाटकीय गति, घटना-विन्यास तथा चरित्र-परिकल्पना सुर का नाटकीय भावप्रकाश के उपाय रूप में नियोग, यहाँ तक कि वनदेवियो तथा मायाकुमारियो के गमनागमन मे नृत्य का आभास, सभी कुछ इन नाटको मे प्राप्त हो जाता है। परवर्ती युग के विभिन्न प्रकार के नाटको मे इन समस्त गुणो का विकास तथा परिणति देखने को मिल जायगी, इसीलिए इस समय को मैने शिक्षा प्राप्त करने का पर्व कहा है।

२

'मायार खेला' रचना के कुछ समय वाद ही प्रकाशित 'राजा ओ रानी,' 'विसर्जन' तथा 'चित्राङ्गदा' मे रवीन्द्रनाथ की नाटक-लेखनी ने मानो पूर्ण शक्ति प्राप्त कर ली। 'चित्राङ्गदा' की आलोचना को यथास्थान के लिए स्थगित करके बाकी दो के सबंध मे हम अपना वक्तव्य पहले कह लेते हैं। 'राजा ओ रानी' और 'विसर्जन' पाँच अक के शेक्सपियरीय ढग के त्रासदी नाटक है। 'विसर्जन' पूर्वतन उपन्यास 'राजर्षि' के कुछ अंशो का नाट्य-कृत रूप है। वहुत-से लोग 'विसर्जन' को रवीन्द्रनाथ का श्रेष्ठ त्रासदी नाटक समझते है। परन्तु मेरी धारणा दूसरे ढंग की है। थोड़ी-बहुत तकनीक की त्रुटि रहने पर भी विशुद्ध मानव-रस के प्राचुर्य के कारण 'राजा ओ रानी' मुझे श्रेष्ठतर लगता है। रवीन्द्रनाथ ने परवर्ती युग मे, काफी समय वीत जाने पर तकनीकी त्रुटियो को सशोधित कर लेने के उद्देश्य से 'तपती' नाटक लिखा था। हम लोगो को नवीन नाटक अवश्य मिला—किन्तु 'राजा ओ रानी' को श्रेष्ठतर रूप मिला या नही, इसमे सन्देह है।

इस पर्व मे कवि ने तीन प्रहसनो की रचना की थी। उनमे 'प्रजापतिर निर्बन्ध' ने 'चिरकुमार सभा' नाम से परवर्ती युग मे जनप्रियता अर्जित की है। साधारण-जनों के विचार मे यही उनका श्रेष्ठ प्रहसन है। मेरी व्यक्तिगत रुचि 'वैकुण्ठेर खाता' के प्रति है। इसकी रसपरिधि सकीर्ण किन्तु गभीर है, इसके पात्र संख्या मे थोड़े होने पर भी सुस्पष्ट एवं सजीव है; इसकी हँसी निरन्तर अश्रु के साथ लगकर चलती हुई अन्तिम दृश्य मे जिस अपरूप प्रहसन की सृष्टि करती है उसमें

हास्य और आँखों के पानी ने हाथ मिलाया है। वहुजनो के अभिनन्दन से वचित यह प्रहसन रवीन्द्रनाथ की एक निर्दोष सृष्टि है।

इस पर्व के अन्तर्गत रवीन्द्रनाथ ने एक और श्रेणी के नाटको की रचना की, जिन्हे काव्य-नाट्य कहा जा सकता है। इन रचनाओ मे कवि की लेखनी और नाट्यकार की लेखनी एकत्र हो गई है, यद्यपि इन नाटको का वैशिष्ट्य यह है कि यहाँ कवि का दायित्व सोलहो आने स्वीकृत होने पर नाट्यकार के दायित्व को हल्का बना दिया गया है। इसीलिए वहुत-से लोग इसको नाट्य-काव्य कहना चाहते है, अर्थात् उन लोगों के मतानुसार इन नाटको का वास्तविक स्थान काव्य-क्षेत्र मे है। यह बात यथार्थ नही ज्ञात होती। इनमे काव्य के गुण अधिक होने पर भी इनका ठाट नाटक का है—और नाटकीय परिणति का अभाव भी इन नाटको मे नही है। 'गान्धारीर आवेदन', 'कर्णकुन्ती सवाद', 'नरकवास', 'विदाय अभिशाप' प्रभृति रचनाओ को अलिखित पंचांग ट्रैजेडी के आखिरी अक के रूप मे देखने की चेष्टा करने पर इनका यथार्थ रूप तथा रस का आवेदन स्पष्ट हो जाता है।

'सती' तथा 'मालिनी' मे नाटक रूप अपेक्षाकृत स्पष्ट है, यद्यपि इनकी भी प्रधान सम्पदा काव्य है।

'लक्ष्मीर परीक्षा' एक सार्थक परीक्षा है। 'क्षणिका' काव्य मे कथ्य भाषा के द्वारा कवि जो काम करवा लेना चाहते थे उसी काम को सार्थकतर ढग से उन्होने इस नाटक मे करवा लिया है।

३

इसी समय रवीन्द्रनाथ के अध्यात्म-जीवन में एक महत् परिवर्तन प्रारम्भ हो गया था—और स्वाभाविक था कि इसकी छाप उनकी सब प्रकार की रचनाओ पर पडती, यहाँ तक कि नाटको मे भी। मानव-जीवन मे ऋतु-क्रम का प्रभाव तथा प्रतिक्रिया इस बार उनके नाटको का उपादान बन बैठी और 'शारदोत्सव', 'राजा', 'अचलायतन', 'फाल्गुनी' प्रभृति नाटको को जन्म मिला। घर के उत्सव आदि की माँग पूरी करने के लिए वे जैसे नाटक लिखते थे इस बार वैसी माँग शान्तिनिकेतन विद्यालय की ओर से आई। इसीलिए हम देखेंगे कि इस समय के वहुत-से नाटक—जैसे 'शारदोत्सव', 'अचलायतन', 'फाल्गुनी'—

भूमिकाहीन है। उन दिनो शान्तिनिकेतन मे छात्राओं का दाखिला नही होता था—और देश का वातावरण भी मिश्र अभिनय के अनुकूल नही था। इसके अतिरिक्त इस समय इन्होने 'प्रायश्चित्त' तथा 'डाकघर' की भी रचना की।

'प्रायश्चित्त' पूर्वलिखित 'बौठाकुराणीर हाट' का नाट्य-रूप है। धनजय वैरागी का चरित्र इसकी प्रधान सम्पदा है। हिंस्र-प्रतिरोध की वाणी लेकर वह उपस्थित हुआ। गाधी के आविर्भाव से पहले धनजय वैरागी का आविर्भाव मानो प्रभात से पूर्व प्रभात-पक्षी का आगमन था।

'डाकघर' रवीन्द्रनाथ का सर्वोत्तम नाटक है। नाटक की रचना बहुत-कुछ परियो की कहानी के ढाँचे में ढली हुई है। इसकी विस्तृत आलोचना यथासमय करेंगे।

'राजा' नाटक को 'सिम्बोलिक' नाटक कहा जाता है। 'राजा' तथा 'अचलायतन' में भारतीय साधना के दो प्रधान तत्त्वो का योग है। दास्य, सख्य तथा मधुर रस की साधना मे मधुर रस की साधना सबसे कठिन है—इसीका निदर्शन है सुरगमा, ठाकुरदा तथा सुदर्शना के चरित्र मे, विशेष रूप से सुदर्शना के मानसिक द्वन्द्व मे। 'अचलायतन' मे ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग तथा भक्तिमार्ग के चित्र प्रदर्शित किये गए है—वहाँ कहा गया है कि इनका समन्वय ही जीवन की यथार्थ सिद्धि है। 'फाल्गुनी' नाटक मे कवि ने दिखाया है कि विश्व-प्रकृति मे जो लीला चल रही है वही लीला रूपान्तरित होकर मानव-प्रकृति मे भी प्रसरित हो रही है। वसन्त और यौवन ही सत्य है, शीत और जरा दृष्टि का भ्रम-मात्र है। 'शारदोत्सव' मे कवि का वक्तव्य है कि यह जो जगत् अनन्त सौन्दर्य तथा सुधा के द्वारा मानव को ऋणी बनाए हुए है—मानव उस ऋण का प्रतिशोध दुःख को पाकर ही कर सकता है। दुःख की पूजी से सौन्दर्य का ऋण-शोध करने पर ही आनन्दलाभ सम्भव हो सकता है।

इसके उपरान्त 'मुक्तधारा' तथा 'रक्तकरवी' कवि के उल्लेखयोग्य नाटक है। 'शारदोत्सव' से लेकर 'फाल्गुनी' तक नाटक का विषय है मानव के साथ ईश्वर का सबध और मानव के साथ प्रकृति का सबंध। 'मुक्तधारा' और 'रक्तकरवी' मे जो व्यक्ति दिखाई पड़ता है वह है सामाजिक मानव। यहाँ संघर्ष है व्यक्ति के साथ सामाजिक व्यवस्था का। अभिजित् और रजन उस व्यक्ति के प्रतिनिधि है जिनका क्रमश रुद्ध धारा तथा यन्त्र-दानव से द्वन्द्व छिड़ गया है। कवि का वक्तव्य है कि यन्त्र की सहायता द्वारा यन्त्र को पराभूत करने से यन्त्र की ही जय

घोपित होती है। अपने प्राणो द्वारा यन्त्र को आघात पहुँचाना होगा—उससे प्रारम्भ में प्राणो की हानि होने पर भी आखिरकार यन्त्र का प्रभाव शिथिल हो जाता है। अभिजित् मर गया, परन्तु 'मुक्तधारा' का वाँध भी टूट गया। रंजन भी मरा है, परन्तु यन्त्र-नगरी की भित्ति भी हिल उठी है। इन दोनो नाटकों मे कवि ने एक आधुनिक जटिल समस्या पर विचार किया है।

४

'नटीर पूजा' नाटक १९२६ मे प्रकाशित हुआ। कहानी का चयन एक बौद्ध जातक से किया गया है। नाटक का शिल्प-मूल्य काफी ऊँचे स्तर का है—किन्तु इस नाटक की देन कुछ और भी है। मेरा ऐसा विश्वास है कि 'नटीर पूजा' नृत्य-नाट्य मे परवर्ती युग में लिखित नृत्य-नाट्यो की धारणा बीजाकार मे निहित है। इस धारणा के अनुकूल क्षेत्र तथा दृष्टान्त का समर्थन कवि के जावा द्वीप के भ्रमण-काल मे दृष्ट नृत्य-नाट्य-कला से प्राप्त किया है। नृत्य-नाट्य की धारणा कवि के मस्तिष्क मे थी—यदि अभाव था तो केवल सजीव नृत्य के नाट्य-कला के उदाहरण का। जावा द्वीप ने उस उदाहरण को ला उपस्थित किया। रवीन्द्रनाथ के जीवन के अन्तिम दिनो की सार्थकतम नाटक-रचना की धारा नृत्य-नाट्य के इस जल-प्रवाह पथ मे प्रवाहित हुई है। 'चित्रागदा','चण्डालिका','श्यामा' तथा 'तासेर देश' नृत्य-नाट्य रवीन्द्र-नाट्य-प्रतिभा की अतिम तथा सार्थकतम सृष्टि है। नाट्य-प्रतिभा शब्द मे शायद यह नूतन शिल्प-कला का सर्वागीण रूप प्रकाशित नही हो पाया। क्योकि इसमे आकर सम्मिलित हुआ है काव्य, स्वर, नाट्य तथा नृत्य का चतुरग प्रवाह। आशा करता हूँ, यह कहना अत्युक्ति नही होगी कि इन नृत्य-नाटको मे रवीन्द्र-शिल्प-कला का तथा रवीन्द्र की बहुमुखी प्रतिभा का प्रकाश हुआ है।

५

यथासंभव सक्षेप मे रवीन्द्र-नाट्य-प्रवाह का एक परिचय प्रस्तुत किया जा चुका है। अव फलोपलब्धि के संबंध मे प्रासगिक मन्तव्य भी सक्षेप मे पूरा कर लें।

रवीन्द्रनाथ के नाटक बीच-बीच मे पेशेवर रगमंच पर खेले गए है, किसी-

किसी नाटक ने, जैसे 'चिरकुमार सभा' और 'शेष रक्षा', सामयिक रूप से लोकप्रियता भी प्राप्त की है। फिर भी कहना पड़ेगा कि पेशेवर रंगमच की गति-प्रकृति के साथ रवीन्द्र-नाट्य-प्रवाह का कभी भी मेल नही हो पाया है। क्यों? शायद दर्शक उस स्तर तक पहुँचने मे समर्थ नही हुए है। फिर पेशेवर रंगमच पर जो नाटक प्रसिद्धि प्राप्त करते है उनकी सृष्टि पेशेवर अभिनेता तथा रंगमंच के समुद्र-मथन मे होती है यानी वह सारी वस्तु एक प्रकार से समवेत शिल्प की सृष्टि-रचना होती है। रवीन्द्रनाथ के नाटको का जन्म निभृत मे हुआ, नही तो पारिवारिक परिवेश मे;—यह चीज़ उनकी अपनी प्रचेष्टा की सृष्टि है। इसलिए इसकी वास्तविक सम्पदा काव्य-रस है।

बहुत-से समालोचक ऐसे होते है जो नाटक के साहित्यिक मूल्य को नितान्त गौण समझते है, उनके मत मे दर्शकों को आनन्द का परिवेशन करना ही नाटक का एक-मात्र उद्देश्य है। यह मत हम ग्रहण नही कर सकते। नाटक मुख्यतया साहित्य है और उसी रूप मे इसकी आलोचना होनी चाहिए।

इस दृष्टि से विचार करने पर हम देखेगे कि रवीन्द्र के नाटको का मूल्य असीम है। रवीन्द्रनाथ से पहले भी गीति-नाट्यो की रचना हुई है तथापि उनके प्रारम्भिक युग मे लिखित 'वाल्मीकि-प्रतिभा' और 'मायार खेला' अब तक उपभोग्य है, मनोरजन के क्षेत्र मे भी उनके मूल्यो की हानि नही हुई।

'राजा ओ रानी' और 'विसर्जन' बँगला-साहित्य के श्रेष्ठ त्रासदी नाटक हैं। बंगला-नाट्य-साहित्य मे प्रहसन की सख्या की कमी नही है। किन्तु 'चिरकुमार सभा' के समान मार्जित, सूक्ष्म, सर्वजन-उपभोग्य प्रहसन और दूसरा नही है—इसकी प्रतिष्ठा जैसी व्यापक है, वैसी ही सहज है इसकी ग्रहणीयता।

उनके द्वारा रचित काव्य-नाटक—जैसे 'चित्रागदा', 'गान्धारीर आवेदन', 'कर्ण-कुन्ती सवाद', 'नरकवास' प्रभृति रवीन्द्र-साहित्य की श्रेष्ठ सम्पदा है। इस क्षेत्र मे उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नही है।

'शारदोत्सव', 'फाल्गुनी' प्रभृति ऋतु-नाट्य-क्रम मे और 'डाकघर', 'राजा', 'मुक्तधारा', 'रक्तकरबी' प्रभृति सिम्बॉलिक नाट्य-क्रम मे उन्होने नवीन धारा का प्रवर्त्तन किया है, केवल बँगला साहित्य मे ही नही, संभवत भारतीय साहित्य मे भी।

और जीवन की अन्तिम अवस्था मे लिखित नृत्य-नाटक उनकी अपनी मौलिक सृष्टि हैं—इस क्षेत्र मे वे नव मार्ग का निर्माण कर गए हैं।

काव्य और कहानी के अतिरिक्त नाट्य-रस मे रवीन्द्र-प्रतिभा का सुष्ठुतम प्रकाश प्राप्त होता है, और नाटक के श्रेणी-वैचित्र्य तथा नव्य-नूतन धारा-प्रवर्त्तन मे उनकी वहुमुखी प्रतिभा का परिचय मिलता है।

'राजा' (१९१०)

'राजा' नाटक की कहानी कुशजातक नामक बौद्ध जातक से ग्रहण की गई है। मूल कहानी यह है कि वाराणसी के राजा कुश ने सिंहासनारोहण के उपरान्त कान्यकुब्ज राजा की कन्या सुदर्शना से विवाह किया। जब सुदर्शना ने देखा कि उनके पति अतिशय कुरूप है तब आधिव्यथिता वे पित्रालय वापस चली गईं। इस ओर कुश कान्यकुब्ज मे जाकर नानाविध नृत्य-कला के द्वारा अपनी पत्नी के मनोरंजन की चेष्टा मे तल्लीन हुए। ऐसे समय अपने श्वसुर के परामर्श से यतीश्वर नामक रत्न धारण करके कुश ने दिव्य रूप-लाभ किया। तब पति-पत्नी का मिलन हुआ।

थोड़े-से शब्दो की शिल्प-सौन्दर्य से विहीन तथा सभी प्रकार के आध्यात्मिक इंगित से रहित इस कहानी को रवीन्द्रनाथ ने शिल्प-सौन्दर्य तथा आध्यात्मिक इंगित से पूर्ण नाटक मे रूपान्तरित किया है।

रवीन्द्रनाथ 'राजा' नाटक मे यह कहना चाहते हैं कि विश्व का राजा जैसे इन्द्रियग्राह्य नही है वैसे ही इन्द्रियो से नितान्त परे भी नही है। विश्व के सभी प्रकार के सौन्दर्य मे उसकी विभूति प्रसारित है। मन के भीतर जो एक है बाहर वे ही असंख्य रूप मे फैले हुए हैं। इस रूप की उपलब्धि जिसने अपने मन से की वही राजा के स्वरूप को समझने मे समर्थ हुआ। केवल-मात्र चर्मचक्षुओ से उन्हे देखने से विडम्बना तथा विभ्रान्ति का ही प्रसार होता है। चक्षु से जो पीड़ा देखी नहीं जाती, रानी सुदर्शना ने अपनी आँखो से उसे ही देखना चाहा था; परिणामत उसे देखने के हेतु जिस विपत्ति की सृष्टि उसने की वही 'राजा' नाटक का कथानक है।

गीत-बहुल, उत्सव-मुखरित, नाटकीय संघात से पूर्ण इस नाटक का परिचय इन नीरस तत्त्वो मे नही है। उसे पाने का भार पाठको पर छोडकर मैं रवीन्द्रनाथ की परिपक्व लेखनी के नाटको की रचना-विधि के संबध मे दो-एक बाते कह लेना चाहता हूँ।

'शारदोत्सव' से प्रारम्भ करके उनके जीवन की अन्तिम अवस्था तक के प्रायः समस्त नाटको मे हम एक प्रतिमान (Pattern) की क्रमिक परिणति एव क्रमशः प्रकाशमान रूप पाते है। एक पथ और एक मेला—इस प्रतिमान का यही प्रकाशमान रूप है। यदि कभी वह पथ किसी गाँव का है तो कभी किसी काल्पनिक नगर का, यदि कभी वह गाँव का मेला है तो कभी राजा के घर का वसन्तोत्सव का मेला है। 'शारदोत्सव', 'राजा', 'फाल्गुनी', 'मुक्तधारा' मे इस प्रतिमान का स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट है। 'अचलायतन', 'डाकघर', 'रक्तकरबी' मे यह प्रतिमान आशिक रूप मे प्रकट हुआ है तथा वह अस्पष्ट भी है; शायद पथ तो है, पर मेले का पता नही। और इन सब मेलो तथा पथो में साधारणत जो नर-नारी दिखाई पड़ते है इन नाटको में भी उनके दर्शन मिलते है। बाउल, गीत-मण्डली, संन्यासी, दही वाला, लडको का जमघट, अन्धा गायक, गाँव का मुखिया तथा कृपण व्यवसायी इत्यादि। पथ, मेला तथा पूर्वोक्त नर-नारी—बगदेश का यह एक अपना विशिष्ट रूप है। उस रूप को नाटक के प्रतिमान स्वरूप ग्रहण करके उन्होने अपनी कला को बग देश की वास्तविकता पर आधारित किया है।

The king of the Dark Chamber नाम से अनूदित होकर 'राजा' नाटक ने विदेश मे सम्मान प्राप्त किया था।

'डाकघर' (१९२२)

मुक्ति के लिए जो असीम व्याकुलता मानवात्मा अनुभव करती है—उसी मुक्ति-व्याकुल मानवात्मा का प्रतीक है 'डाकघर' नाटक का रुग्ण नायक बालक अमल। मुक्ति के सबध मे लोगो की धारणा बड़ी विचित्र है। विषयासक्त व्यक्ति इसे विडम्बना समझते है—इसीलिए गाँव का मुखिया, माधवदत्त, कविराज प्रभृति अमल को घर मे रोके रखना चाहते है, उसके मनोभाव को उत्कट व्याधि समझकर उसके इलाज द्वारा उसको रोगमुक्त करना चाहते है। दूसरी ओर ठाकुरदत्त तथा राजवैद्य जानते है कि यह मानव का स्वभाव है। वे लोग उसे प्रश्रय देते है, अमल को उत्साह देते है, कहते हैं 'राजा' अवश्य ही उसे पत्र लिखेगे, नही तो इतने समारोह के साथ डाकघर खोलने का क्या उद्देश्य हो सकता है। मेरी तो यह धारण है कि विश्व का सम्पूर्ण सौन्दर्य राजा का डाकघर है। निरन्तर मन के पास डाक चली आ रही है। अमल की तरह हम लोगो मे

से बहुत-से उसकी भाषा नही पढ़ पाते। तब भी अमल का यह विश्वास है कि ये सारी चिट्ठियाँ राजा की लिखी हुई है, परन्तु हमारे पास वह विश्वास भी नही है। अमल विश्वासी है। हम लोग अविश्वासी माधवदत्त की मण्डली के है, जिन्हे ठाकुरदा ने 'चुप रहो अविश्वासियो' कहकर धमकाया था। ऐसे विषय को नाना भाँति के चरित्रो के समन्वय से नाटक का आकार दिया जा सकता है—इस बात पर 'डाकघर' नाटक को पढे बिना विश्वास करना कठिन है। अन्यत्र मैने कहा है कि 'डाकघर' एक निर्दोष नाटक है। 'डाकघर' स्वल्प परिसर मे रचा गया नाटक है। रचना का आयतन जितना छोटा होता है रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा उतनी ही उज्ज्वल हो उठती है। इसी कारण क्षुद्रतम परिसर मे गठित नाटको मे ही उनकी प्रतिभा उज्ज्वलतम रूप मे प्रतिभासित हुई है।

'मुक्तधारा' (१९२२) 'रक्त करबी' (१९२६)

'मुक्तधारा' नाटक के साथ पूर्वतम नाटक 'प्रायश्चित्त' की थोड़ी बहुत समता है—कहानी अश मे, और एक पात्र दोनो ही नाटको मे है धनजय वैरागी। यह धनजय वैरागी रवीन्द्रनाथ द्वारा परिकल्पित चरित्र-समूह मे अन्यतम श्रेष्ठ चरित्र है। १९०९ मे 'प्रायश्चित्त' जब सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ—तब धनजय वैरागी के मुख से हिंसा प्रतिरोध की वाणी देववाणी के समान प्रतीत हुई थी, और बहुतो को दैववाणी के समान ही अवास्तव लगी थी। किन्तु १९२२ मे जब 'मुक्तधारा' प्रकाशित हुआ तब धनजय वैरागी की वाणी को एक वास्तविक भित्ति का सहारा प्राप्त हो गया था, क्योकि इसी बीच गाधी जी का प्रादुर्भाव हो गया था। 'प्रायश्चित्त' और 'मुक्तधारा' मे इनके अतिरिक्त और कोई समानता नही है, तो भी दोनो नाटक दो विभिन्न प्रवृत्तियो की रचनाएँ है। पहले उल्लेख किया गया है कि 'बलाका' काव्य की रचना के समय से, चाहे काव्य हो या नाटक या अन्यान्य अनेक रचनाएँ—अर्थात् रवीन्द्र-साहित्य मे एक नव दृष्टि या चेतना का स्वरूप प्रकट होने लगा था। व्यक्ति की व्यक्ति के साथ अथवा व्यक्ति की प्रकृति के साथ लीला—खेल दिखाकर कवि अब तृप्त नही होते, अब तो वे व्यक्ति के साथ समाज का सबध और सघर्ष दिखाना चाहते है। चिरकाल का लीला-मय मनुष्य अब आधुनिक युग के सघर्षशील मानव-रूप में रवीन्द्र-साहित्य में दिखाई पड़ने लगा। 'मुक्तधारा' और 'रक्तकरबी' इसी भाव-धारा के श्रेष्ठ उदाहरण है।

व्यक्ति और समाज के भीतर यन्त्र नाम की एक नूतन सत्ता के आगमन के कारण व्यक्ति और समाज का सबंध जटिलतर हो उठा है। समाज अर्थात् संघबद्ध मानव-यन्त्र देवता का समर्थक है—और व्यक्ति है यन्त्र-विरोधी। और इस सूत्र से व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध जटिलतर हो उठा है। समाज अर्थात् संघबद्ध मानव-यन्त्र देवता का समर्थक है—और व्यक्ति है यन्त्र-विरोधी और इस सूत्र से व्यक्ति और समाज मे संघर्ष अनिवार्य हो उठा है। अभिजित् के साथ उत्तरकूट के लोगो का सग्राम छिड गया है—कारण बीच मे 'मुक्तधारा' के बाँध के समान यन्त्र का आगमन हुआ है। रजन के साथ 'रक्तकरवी' के राजा का विरोध है—क्योकि यक्षपुरी की यान्त्रिक व्यवस्था बीच में आ गई। इस प्रकार की अवस्था मे क्या करना चाहिए। रवीन्द्रनाथ कहते है कि विरोध से बचे रहने से समस्या का समाधान नही हो सकता, यन्त्र पर आघात करना होगा, परन्तु यन्त्र द्वारा नहीं, प्राणो द्वारा। उससे प्राणो की हानि होगी, अभिजित् और रजन दोनो को ही मरना पड़ा है। किन्तु इसके अतिरिक्त और कोई उपाय भी तो नही है। वृहत्तर यन्त्र के द्वारा यन्त्र को पराजित करने से यन्त्र की ही जय घोषित होती है। प्राणो से आघात करके प्राणों की जय घोषित करनी होगी, यही कवि की वाणी है। प्रसगत. उसीसे प्रमाणित होगी व्यक्ति की विजय।

'मुक्तधारा' और 'रक्तकरवी' दोनो की यही मर्मकथा है।

किन्तु इन दोनो रचनाओ का साहित्य-रस का बोध इतनी सरलता से नही हो सकता। कवि के जीवन की अन्तिम अवस्था के तत्त्व से मुक्त इन नाटको में नाटक की दृष्टि से 'मुक्तधारा' मुझे श्रेष्ठ लगता है। तुलना मे 'रक्तकरवी' की नाटकीय गति मन्थर है। 'रक्तकरवी' नाना शाखा-प्रशाखाओ मे अपने-आपको विस्तृत कर लेने पर मन्थर हो गया है। हाथो द्वारा निक्षिप्त अव्यर्थ-सन्धान तीर की भाति 'मुक्तधारा' की गति ऋजु तथा एकाग्र है।

अग्रेजी मे जिसे Myth making क्षमता कहते है, एक नूतन जगत् के निर्माण की वह क्षमता रवीन्द्रनाथ में प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। 'रक्तकरवी' मे इस दुर्लभ वस्तु का सुष्ठु प्रकाश मिलता है। यक्षपुरी नामक एक किवदन्ती के जगत् को लोक तथा रूपकी भित्ति पर निर्मित करके कवि ने उसे विश्वास-योग्य बनाया है। इन सब रचनाओं में शिल्पी के साथ चिन्तक का सार्थक समन्वय घटित

हुआ है—आर इसने उन्मुक्त कर दिया है भारतीय साहित्य के सम्मुख एक नूतन सम्भावना का प्रशस्त द्वार।

—प्रमथनाथ बिशी

राजा

अनुवादक :
स० ही० वात्स्यायन

१

अँधेरा कक्ष

[रानी सुदर्शना और
उनकी दासी सुरंगमा]

सुदर्शना : प्रकाश—कहाँ है प्रकाश ? इस कक्ष मे क्या कभी भी प्रकाश नही होगा ।

सुरंगमा : रानी माँ, आपके प्रत्येक कक्ष में तो प्रकाश रहता है—उससे बच निकल आने के लिए क्या एक भी अँधेरा कक्ष नही रहेगा ।

सुदर्शना : कही भी अँधेरा क्यों रहेगा ?

सुरंगमा : तब तो न प्रकाश पहचाना जा सकेगा, न अंधकार ।

सुदर्शना : जैसी तू इस अँधेरे कक्ष की दासी है वैसी ही तेरी अन्धकार-जैसी बातें हैं, कोई अर्थ ही समझ में नही आता । पर यह तो बता कि कक्ष है कहाँ ? किधर से यहाँ आती हूँ और किधर से बाहर निकलती हूँ, प्रतिदिन भूल-भुलैयाँ-सा लगता है ।

सुरंगमा : मिट्टी का आवरण भेदकर पृथ्वी के हृदय मे यह कक्ष बनाया गया है । राजा ने इसे विशेष रूप से आपके लिए बनवाया है ।

सुदर्शना : उन्हे कमरों की ऐसी क्या कमी थी कि यह अँधेरा कक्ष विशेष रूप से बनवाया गया ।

सुरंगमा : प्रकाशित कमरो मे तो सभी का आना-जाना रहता है—इस अंधकार मे अकेले आपसे ही मिलन हो सकता है ।

सुदर्शना : नही-नही, मुझे प्रकाश चाहिए—प्रकाश के लिए मै छटपटा रही हूँ । तू यहाँ एक दिन अपना प्रकाश ला सके तो मैं तुझे अपना कंठ-हार दूँगी ।

सुरंगमा : मेरे क्या वश है देवी । जहाँ वे ही अंधकार रखते है वहाँ मै प्रकाश कर सकूँगी !

सुदर्शना : इतनी भक्ति है तेरी ? पर मैने तो सुना है कि तेरे पिता को राजा ने दण्ड दिया था। यह क्या सच है ?

सुरंगमा . सच है। पिता जुआ खेलते थे। राज्य के सब युवक हमारे घर इकट्ठे होते थे, और मद पीते थे और जुआ खेलते थे।

सुदर्शना : तू क्या करती थी ?

सुरगमा : मैया री, तब तो आप सब सुन चुकी है ? मै विनाश के पथ पर जा रही थी। पिता ने जान-बूझकर मुझे उस पथ पर डाला। मेरी माँ नही थी।

सुदर्शना : राजा के तेरे पिता को निर्वासित कर देने पर तुझे बुरा नही लगा ?

सुरगमा : बहुत बुरा लगा था। मन हुआ था कि कोई यदि राजा को मार डाले तो बहुत अच्छा हो।

सुदर्शना : बाप से तुझे छुडाकर राजा ने तुझे कहाँ लाकर रखा।

सुरगमा क्या जानूँ कहाँ रखा था। किन्तु कितना कष्ट हुआ था। मानो कोई मुझे सुइयाँ चुभा रहा हो, आग मे जला रहा हो।

सुदर्शना : क्यों, तुझे किस बात का इतना कष्ट था ?

सुरंगमा : मैं विनाश के पथ पर जा रही थी—वह पथ बन्द होते ही ऐसा लगा मानो मेरा कोई आसरा ही नही रहा। मैं पिंजरे मे बन्द जगली जानवर की तरह गरजती हुई चक्कर काटती, मन होता कि चाहे जिसको नोच लूँ, काट खाऊँ या चीथड़े करके फेक दूँ।

सुदर्शना . उस समय राजा को तू क्या समझती थी।

सुरगमा : ओ, कितने निठुर—कितने निठुर ! कैसी अविचल निष्ठुरता थी।

सुदर्शना : फिर उन्ही राजा के प्रति तेरी इतनी भक्ति कैसी हो गई ?

सुरंगमा . क्या जानूँ देवी। वह इतने अटल, इतने कठोर थे इसलिए उन पर इतना निर्भर कर सकी। इतना भरोसा कर सकी। नहीं तो मुझ-सी पतिता को कौन आसरा हो सकता।

सुदर्शना : तेरा मन कब बदला ?

सुरंगमा : क्या जानूँ कब बदल गया। सारा विद्रोह एक दिन हार मानकर धरती पर लोट गया। देखा, जितने भयानक हैं, उतने ही सुन्दर है। मै बच गई, बच गई, जीवन-भर के लिए बच गई।

सुदर्शना : अच्छा सुरंगमा, तुझे कसम है, सच-सच बता, हमारे राजा देखने में

कैसे हैं ? मैंने उन्हे कभी भी आँखों से नही देखा। अंधकार मे ही वह मेरे पास आते है और अंधकार मे ही चले जाते है। कितने लोगो से मैंने पूछा है, कोई स्पष्ट जवाव नही देता—सभी कुछ छिपा रखते हैं।

सुरंगमा : मैं सच कहती हूँ रानी, ठीक-ठीक वता नही सकूँगी कितने सुन्दर है वह। नही, लोग जिसको सुन्दर कहते हैं वह वैसे नही है।

सुदर्शना : क्या कहती है तू। सुन्दर नही हैं ?

सुरंगमा : नही देवी, उन्हे सुन्दर कहना उन्हे छोटा करना होगा।

सुदर्शना : तेरी सब बाते ऐसी ही होती है, कुछ समझ मे नही आती।

सुरंगमा : क्या करूँ देवी ? सब बाते तो समझाई नही जा सकती। वाप के घर छोटी उम्र मे ही अनेक पुरुष देखे थे, उन्हे सुन्दर कहती। उन्होने मेरे दिन-रात को, मेरे सुख-दु ख को क्या-क्या नाच नचाए वह मै आज तक नही भूल सकी। हमारे राजा क्या उनकी तरह है ? सुन्दर ? कभी नही।

सुदर्शना : सुन्दर नही है।

सुरगमा : हाँ, यही कहना होगा—सुन्दर नही है। सुन्दर नही है इसलिए ऐसे अद्भुत, ऐसे अचरज-भरे है। जव बाप के घर से छीनकर मुझे उनके सामने ले गए थे तव वह भयानक दीखे थे। मेरा सारा मन ऐसा विमुख था कि उन्हे कानी आँख भी नही देखना चाहती थी। तव से अव ऐसा हो गया है कि जब मवेरे उन्हे प्रणाम करती हूँ तव केवल उनके पैरो-तले की मिट्टी की ओर ही देखती रहती हूँ—और जान पड़ता है कि इतना ही मेरे लिए वहुत है कि मेरे नयन सार्थक हो गए हैं।

सुदर्शना : तेरी सभी वात समझ मे नही आती। पर उन्हे सुनना अच्छा लगता है। किन्तु तू जो कह, मै उन्हे देखकर रहूँगी। मेरा कव विवाह हुआ था मुझे याद भी नही है—तव इतना वोध भी नही था। माँ से सुना था कि उन्हे दैवज्ञ ने वताया था कि उनकी लड़की ऐसा स्वामी पायगी जैसा पुरुष पृथ्वी पर दूसरा नही होगा। माँ से कितनी वार पूछा कि स्वामी देखने मे कैसे है—वह ठीक-ठीक वताना ही नही चाहती। कहती है, मैंने देखा कहाँ है ? घूँघट के भीतर से मैं अच्छी

तरह देख ही नही सकी। जो सुपुरुषो मे श्रेष्ठ है उन्हे देखने का लोभ मैं कैसे छोड़ सकती हूँ ?

सुरगमा : वह देखिए रानी, हल्की-सी बयार आ रही है !

सुदर्शना : बयार ? कहाँ है बयार ?

सुरगमा · यही जो सुगन्ध—क्या आप तक नही पहुँची ?

सुदर्शना : नही, कैसी सुगन्ध ? मुझे तो नही आती।

सुरंगमा . वड़ा फाटक खुला है—वह आ रहे हैं, भीतर आ रहे है।

सुदर्शना : तू कैसे आहट पा जाती है ?

सुरगमा . क्या जानूं रानी। जान पडता है मानो छाती के भीतर पैरो की चाप सुन पाती हूँ। मैं उनके अँधेरे कक्ष की सेविका हूँ न ? तभी मुझमे एक वोध जाग गया है—समझने के लिए मुझे कुछ भी देखने की जरूरत नही होती।

सुदर्शना : तेरी तरह मेरा भी होता तो मैं तर जाती।

सुरगमा होगा, रानी, होगा। आप जो 'देखूंगी-देखूंगी' सोचती हुई इतनी अधीर हो रही है इसीसे आपका सारा मन देखने की ओर ही लगा हुआ है। यह एक टेक जव छोड देगी तव अपने-आप सव सहज हो जायगा।

सुदर्शना . मुझे रानी होकर भी जो सहज नही होता वह तुझे दासी होकर कैसे हो गया ?

सुरगमा . मै दासी जो हूँ। इसीलिए इतना सहज हो गया। जिस दिन मुझे इस अँधेरे कक्ष का भार सौपकर उन्होने कहा—'सुरगमा इस कक्ष को प्रतिदिन तुम ठीक-ठीक करके रखना, यही तुम्हारा काम है,' मैने उनकी आज्ञा को सिर-आंखो पर लिया—मैंने मन-ही-मन भी यह नही कहा कि मुझे उनका काम दीजिए जो आपके प्रकाश वाले कक्ष मे दिये जलाते है। तभी जो काम मैने लिया उसकी शक्ति अपने-आप भीतर जाग उठी। उसे कोई वाधा नही हुई। पर वह आ रहे है—कक्ष के वाहर खडे है। प्रभु······

गान—१

खोलो खोलो द्वार, मुझे और बाहर खड़ा न रखो,
इशारा दो, इधर देखो, आओ दोनों वाहु वढ़ाकर,

काज सब हो चुका है, सन्ध्या तारा उग आया है,
आलोक की नाव पहुँच चुकी है अस्तसागर के पार।
द्वारे आया हूँ, मुझे और बाहर खड़ा न रखो!
झारी भरकर पानी क्या ले आईं, शुचि दुकूल क्या ओढ़ लिया?
केश क्या बाँध लिये, फूल क्या चुन लिये,
मुकुलों की माला क्या गूँथ ली?
गाएँ गोठ में लौट आई हैं, पाखी नीड़ों में आ गए हैं।
जगत् में जितने मार्ग थे, अन्धकार में मिलकर एक हो गए हैं।
तुम्हारे द्वारे आया हूँ, मुझे और बाहर खड़ा न रखो!

सुरंगमा : राजा, आपका द्वार कौन बन्द रख सकता है! द्वार बन्द नहीं है, किवाड़ केवल उड़काये हुए है, छूते ही अपने-आप खुल जायँगे। क्या उतना भी आप नहीं करेंगे? जब तक स्वयं उठकर द्वार न खोला जायगा आप भीतर नहीं आयँगे?

गान—२

यह जो मेरा आवरण है, इसे दूर करते और कितनी देर!
निश्वास-वायु से भी वह उड़ जायगा—यदि तुम वैसा चाहो।
मैं यदि भूमि पर पड़ी रहूँ धूल चूमती हुई,
तो तुम द्वार पर ही खड़े रहोगे, यह कैसा है तुम्हारा प्रण?
रथ-चक्रों के रव से जगाओ, जगाओ, सबको—
अपने ही घर में आओ बल से भरकर, आओ गौरव के साथ!
मेरी नींद टूट जाये, मै प्रभु को पहचान लूँ—
दौड़कर जाऊँ द्वार पर, चरणों में कर दूँ अपने को समर्पण!

रानी, तो जाइए द्वार खोल दीजिए, नहीं तो राजा नहीं आयँगे।

सुदर्शना : मैं इस कक्ष के अन्धकार मे कुछ भी अच्छी तरह नहीं देख सकती—द्वार कहाँ है मै क्या जानूँ? तू यहाँ का सब जानती है तो मेरी ओर से खोल दे।

(सुरंगमा द्वार खोलकर प्रणाम करती है। प्रस्थान।)

तुम मुझे प्रकाश मे दर्शन क्यों नहीं देते।

राजा : प्रकाश में हजारो और चीजों के साथ मिलाकर मुझे देखना चाहती हो ? क्यो न इस गम्भीर अन्धकार मे तुम्हारा एक-मात्र होकर मैं रहूँ !

सुदर्शना : सभी तुमको देख पाते है, मैं रानी होकर भी नही देख पाऊँगी !

राजा : कौन कहता है देख पाते हैं ? जो मूढ है वे समझ लेते है कि वे देख पा रहे हैं।

सुदर्शना : जो हो, तुम्हे मुझे दर्शन देना होगा।

राजा : सहा नही जायगा—कष्ट होगा।

सुदर्शना : सहा नही जायगा—यह भी कोई वात है ? तुम कितने सुन्दर हो, कितने आश्चर्य-भरे, यह तो इस अन्धकार मे भी समझ सकती हूँ—फिर प्रकाश मे क्या नही समझ सकूँगी ? वाहर जव तुम्हारी वीणा वजती है तव मुझे न जाने क्या हो जाता है कि मैं समझने लगती हूँ, मैं ही उस वीणा का गान हूँ, तुम्हारा यह सुवासित उत्तरीय जव मेरे गात्र से छू जाता है तव मुझे जान पडता है, मेरा सर्वांग सघन आनन्द से वातास के साथ मिल गया। फिर तुम्हें देखकर मैं सह नही सकूँगी, यह कैसे हो सकता है ?

राजा : मेरा क्या कोई रूप तुम्हारे मन मे नही जाता है !

सुदर्शना : एक तरह से तो जाता ही है। नही तो मैं जीती कैसे रह सकती !

राजा : किस रूप मे देखा है।

सुदर्शना : वह कोई एक रूप तो नही है। नई वर्षा के दिन जव जल-भरे मेघों से भरे आकाश के छोर पर वन की रेखा और घनी हो उठती है, तव वैठी-वैठी सोचती हूँ कि मेरे राजा का रूप भी ऐसा ही होगा—इसी प्रकार झुका हुआ, ऐसे ही ढक देने वाला, ऐसा ही आँखे सहलाने वाला, ऐसा ही हृदय भर देने वाला, नयन-पल्लव ऐसे ही छायामडित, मुस्कान ऐसी ही गम्भीरता मे डूबी हुई। फिर शरत्काल मे, जव आकाश का पर्दा दूर उड़ जाता है, तव जान पडता है कि तुम स्नान करके अपने शेफाली-वन के पथ पर चल रहे हो; तुम्हारे गले में कुंद-फूलो की माला है, तुम्हारे वक्ष पर श्वेत चन्दन की छाप, तुम्हारे मस्तक पर हल्के उज्ज्वल वस्त्र का

उष्णीष, तुम्हारी आँखो की दृष्टि दिगंत के पार खोई हुई—तब लगता है कि तुम मेरे पथिक बन्धु हो ; यदि तुम्हारे साथ चल सकूँ तो दिग्दिगंत मे सोने के सिंह-द्वार खुल जायँगे और मैं शुभ्रता के अन्त पुर मे प्रवेश कर सकूँगी। और यदि न कर सकूँगी तब इसी झरोखे मे बैठकर किसी एक अतिदूर के लिए दीर्घ निश्वास छोड़ती रहूँगी, दिन के बाद दिन और रात के बाद रात मेरा अन्तःस्थल किसी अज्ञात वन-वीथी—किसी अनाघ्रात फूल की गन्ध के लिए—बिलख-बिलखकर रोता रहेगा, और मर जायगा, और वसन्त-काल में जब यह सारा वन रग से रगीन हो उठता है, तब मै तुम्हें देख पाती हूँ कानो मे कुण्डल धारे, हाथो में अंगद, गात पर वसन्ती रग का उत्तरीय, हाथ मे अशोक की मंजरी। तुम्हारी वीणा के सभी सुनहले तार एक-एक तान मे मानो उतावले हो रहे है।

राजा : इतना विचित्र रूप देखती हो ! तब क्यो सब छोडकर केवल एक विशेष मूर्ति देखना चाहती हो ? वह यदि तुम्हारे मन की न हुई तब तो मन चौपट हो जायगा !

सुदर्शना : किन्तु मै निश्चयपूर्वक जानती हूँ कि मन की होगी।

राजा : मन यदि उसका हो तभी वह मन की हो सकेगी। पहले वह तो हो।

सुदर्शना : मै सच कहती हूँ, इस अन्धकार मे जब तुम्हे देख नही पाती, यद्यपि जानती हूँ कि तुम वही हो, तब कभी-कभी न जाने कैसे एक डर से भीतर-ही-भीतर काँप उठती हूँ।

राजा . उस भय में बुराई क्या है ? प्रेम मे भय न होने से उसका रस फीका हो जाता है।

सुदर्शना . अच्छा मै भी पूछूँ, इस अन्धकार में तुम क्या मुझे देख पाते हो ?

राजा : ज़रूर देख पाता हूँ।

सुदर्शना : कैसे देख पाते हो ? अच्छा, क्या देख पाते हो—

राजा · देख पाता हूँ मानो अनन्त आकाश का अन्धकार मेरे आनन्द से खिचकर चक्कर काटता हुआ कितने नक्षत्रो का आलोक समेटकर, एक जगह स्थापित होकर खडा है। उसमे कितने युगो का

व्यान है, कितने आकाशो का आवेश, कितनी ऋतुओ का उपहार !

सुदर्शना : मेरा ऐसा रूप ! तुमसे सुनकर हृदय उमड आता है। किन्तु पूरा-पूरा विश्वास नही होता—अपने मे तो यह सब देख नही पाती हूँ।

राजा : अपने दर्पण मे अपना-आपा नही दीखता—छोटा हो जाता है। मेरे चित्त मे यदि उसे देख पाओ तो देखोगी यह कितना बड़ा है। क्योकि मेरे हृदय मे तुम केवल तुम नही हो, तुम मेरा प्रतिरूप हो जाती हो।

सुदर्शना . कहो-कहो, ऐसा फिर कहो—मुझे तुम्हारी बातें गान-सी प्रतीत होती हैं—अनादि काल के गान-सी, जिसे मैं मानो जन्म-जन्मातर से सुनती आई हूँ। वह गान क्या तुम्ही सुनाते रहे हो, और मुझे ही सुनाते रहे हो ? नही-नही जिसे सुनाते रहे हो वह मुझसे बहुत बडी, बहुत सुन्दर है—तुम्हारे गान मे उस अलोक-सुन्दरी को मैं देख पाती हूँ—वह क्या मुझमे है या कि तुममे ? तुम जिस रूप मे मुझे देखते हो, एक बार एक निमिष-भर के लिए मुझे वह दिखा दो न ! तुम्हारे लिए क्या अन्धकार नाम का कुछ है ही नही ? इसीलिए तो मुझे तुममे से न जाने कैसा एक डर लगता है। यह जो कठिन काला लोहे-जैसा अन्धकार है, जो मेरे ऊपर नींद-सा, मूर्छा-सा, मृत्यु-सा छाया है, तुम्हारे निकट क्या वह कुछ है ही नही ? तब ऐसे स्थल पर तुम्हारे साथ मेरा मिलन कैसे हो सकता है ? नही-नही, हो नही सकता मिलन, हो नही सकता, यहाँ नही, यहाँ नही। जहाँ मै पेड-पौधे, पशु-पक्षी, मिट्टी-पत्थर सब देख सकती हूँ वही तुम्हे भी देखूँगी।

राजा . अच्छा देखो। किन्तु तुम्हे स्वयं ही पहचान लेना होगा, कोई तुम्हे बतायगा नही—और बताये भी तो विश्वास क्या ?

सुदर्शना मै पहचान लूंगी, पहचान लूंगी। लाखो-लाखो लोगो के बीच भी पहचान लूंगी। भूल नही होगी !

राजा · आज वसन्त-पूर्णिमा के उत्सव मे तुम अपने प्रासाद के शिखर पर खडी होना—वही से देखना—मेरे उद्यान में हज़ारो लोगो

के बीच मुझे देखने की चेष्टा करना।

सुदर्शना : उनके बीच दिखाई तो दोगे ?

राजा : बार-बार सब दिशाओं से दिखाई दूंगा। सुरंगमा !

(सुरंगमा का प्रवेश)

सुरंगमा : आज्ञा प्रभु—

राजा : आज वसन्त-पूर्णिमा का उत्सव है।

सुरंगमा : मुझे क्या काम करना होगा !

राजा : आज तुम्हारा साज का दिन है, काज का दिन नही। आज मेरे पुष्प-वन के आनन्द में तुम्हे योग देना होगा।

सुरंगमा : वैसा ही होगा, प्रभु !

राजा : रानी आज मुझे अपनी आँखों से देखना चाहती हैं।

सुरंगमा : कहाँ देखेगी ?

राजा : जहाँ वंशी पंचम स्वर मे बजेगी, फूलों के केशर का फाग उड़ेगा, ज्योत्स्ना और छाया गले मिलेगे, उसी हमारे दक्षिण कुंजवन मे।

सुरंगमा : उस लुक-छिपौवल मे क्या देखा जा सकेगा ? वहाँ तो हवा भी उतावली हो उठती है, सभी कुछ चंचल होता है। आँखो को उलझन न होगी ?

राजा : रानी का कौतूहल है।

सुरंगमा : कौतूहल की चीज़े हज़ारो हैं—आप क्या उनके साथ मिलकर कौतूहल मिटायँगे ? आप ऐसे राजा नही हैं। रानी, आपके कौतूहल को अन्त मे रोकर लौट आना होगा।

गान—३

कहाँ बाहर-दूर वन को उड़ जाती हैं,
तुम्हारी चपल-चपल आँखें वन-पाखी-सी ?
आज हृदय में यदि बज उठे प्रेम की वंशी,
तो वे अपने-आप ही पाश में बँध जायँगी !
दूर होगी इनकी यह त्वरा, यह इधर-उधर भटकना—
आहा, आज जो आँखें वन-पाखी-सी वन को दौड़ जाती हैं !

तुम देखते नहीं हो, हृदय-द्वार पर कौन आता-जाता है !
सुनते नहीं हो दखिनी पवन कानों में क्या कहता है ?
आज फूलों की सुवास में, सुख की हँसी में, आकुल गान में
चिर-वसन्त तुम्हारी ही खोज में प्राणों मे आया है।
उसे पागल-सी बाहर खोजती हुई भटक रही है वन में-
तुम्हारी चपल आँखें वन-पाखी-सी !

२

पथ

पहला पथिक : ओ महाशय !

प्रहरी : कहिए ?

दूसरा पथिक : रास्ता किधर है ? हम विदेशी हैं, हमे रास्ता बताइए !

प्रहरी : कहाँ का रास्ता ?

तीसरा पथिक : वही का, जहाँ सुना है आज उत्सव होने वाला है। वहाँ किधर से जाना होगा ?

प्रहरी : यहाँ सभी रास्ते रास्ते है। जिधर से भी जाओगे, ठीक पहुँचोगे। सामने चले जाओ !

(प्रस्थान)

पहला : सुनो जरा इसकी बात। कहता है ये सब रास्ते एक है। ऐसा ही है तो फिर इतने रास्तो की ज़रूरत क्या थी ?

दूसरा : अरे भई इसमे नाराज़ होने की क्या बात है। जिस देश मे जैसी व्यवस्था हो। हमारे देश मे तो यही कहा जा सकता है कि रास्ता है ही नही—बाँकी-टेढी गलियाँ, मानो गोरखधंधा हो। हमारा राजा कहता है कि खुला रास्ता न होना ही अच्छा है। क्योंकि रास्ता मिलते ही प्रजा सब बाहर को चल देगी। इस देश मे उल्टा है, जाते हुए भी कोई नही टोकता, आने से भी कोई

नही रोकता—फिर भी यहां इतने लोग है—ऐसी खुली छूट होने से हमारा राज्य तो उजाड़ हो गया होता।

पहला : भई जनार्दन, तुममे यही एक बड़ी बुराई है।

जनार्दन : वह क्या ?

पहला : अपने देश की बड़ी निन्दा करते हो। खुला रास्ता ही क्या अच्छा होता है ? तुम्ही बताओ भाई कौण्डिल्य, यह कह रहा है कि खुला रास्ता अच्छा होता है।

कौण्डिल्य : भाई भवदत्त, तुम तो बराबर देखते आ रहे हो कि जनार्दन की ऐसी ही टेढ़ी बुद्धि है। किसी दिन मुसीबत मे पड़ेगे। कही राजा के कानों तक बात पहुँची तो मरने पर इन्हे श्मशान तक ले जाने वाला ढूँढना मुश्किल हो जायगा।

भवदत्त : भई, हमें तो जब से इस खुली राह के देश मे आए है उठने-बैठने का भी सुख नही मिला। कौन आता है, कौन जाता है, किसी का भी कुछ ठीक ठिकाना नही है—दिन-रात अपना शरीर घिन-घिनाता रहता है—राम-राम।

कौण्डिल्य : यहाँ भी तो उसी जनार्दन की राय मानकर ही आये। हमारी गोष्ठी में ऐसे कभी नही हुआ। मेरे पिता को तो जानते हो—कितने बड़े महात्मा थे। शास्त्र के अनुसार ठीक ४९ हाथ नापकर मंडल बनाकर उसीके भीतर सारा जीवन काट दिया—एक दिन के लिए भी उसके बाहर पैर नही रखा। मृत्यु के बाद प्रश्न उठा कि दाह भी तो उसी ४९ हाथ घेरे के भीतर ही करना होगा, बड़ी विकट समस्या थी—अन्त मे शास्त्री ने विधान दिया कि ४९ के जो दो अंक हैं उनके बाहर तो नही जाया जा सकता इसलिए ४९ (उनचास) को उलटकर ९४ (नौ-चार) कर दिया जाय—तभी उन्हें घर से बाहर लाया जा सकेगा। नही तो घर के भीतर ही दाह-कर्म करना होगा। बाप रे बाप, कैसा कड़ा आचार-विचार ! हमारा देश कोई ऐसा-वैसा थोड़े ही है।

भवदत्त : ठीक कहते हो। मरने चलने पर भी सोचना होगा, यह क्या कम बात है।

कौण्डिल्य : अब यह जनार्दन भी उसी देश की मिट्टी का बना है फिर भी कहता है कि खुला रास्ता अच्छा है !

(प्रस्थान । बालकगण के साथ बुढऊ दादा का प्रवेश ।)

दादा : लड़को, दखिनी हवा के साथ होड़ करनी होगी। हार मानने से काम नही चलेगा। आज सब रास्तों को गान में डुबा देना होगा।

गान—४

आज दक्षिण द्वार खुला है, आओ हे मेरे वसन्त, आओ !
तुम्हें हृदय के झूले में झुलाऊँगा, आओ !
नये श्यामल शोभन रथ पर वकुल-विछे पथ में आओ !
व्याकुल वंशी बजाते हुए, प्रियंगु फूलों के पराग से सने,
आओ हे मेरे वसन्त आओ !
आओ पल्लवों के घन पुंज में, आओ वन-मल्लिका के कुंज में,
आओ !
मृदु मधुर मदिर हँसी हँसते हुए आओ पागल हवा के देश में।
अपना उतावला उत्तरीय आकाश में उड़ा दो !
आओ हे मेरे वसन्त, आओ !

(प्रस्थान । नागरिकों के दल का प्रवेश ।)

पहला नागरिक : जो कहो भाई, आज के दिन तो हमारे राजा को दर्शन देना उचित था। जिसके राज्य में रहते हैं उसे कभी देखा ही नही; यह क्या कम दुःख की बात है।

दूसरा नागरिक : इसके भीतर का रहस्य तुम कोई नही जानते। किसी को कहो नही तो मैं तुम्हे बताऊँगा।

पहला : एक ही मुहल्ले मे रहते हैं हम-तुम, कभी किसी की बात मैंने किसी से कही ? हाँ, वह जो तुम्हारे राहक दादा को कुआँ खोदते-खोदते गुप्त धन मिला था वह बात मैंने जान-बूझकर थोड़े ही बनाई थी। तुम तो सब जानते हो।

दूसरा : हाँ-हाँ जानता हूँ तभी तो कहता हूँ—भेद यदि छिपाकर रख सको तो बताऊँ, नही तो आफत आ सकती है।

तीसरा : तुम भी अच्छे आदमी हो विरूपाक्ष ! आफ़त ही अगर आ

सकती है तो उसे लाने के लिए इतने उतावले क्यों हो ? कौन तुम्हारी भेद की बात लिये दिन-रात सँभालता फिरेगा।

विरूपाक्ष : बात जो उठ खड़ी हुई इसीलिए—ख़ैर जाने दो, नही कहता। मै व्यर्थ बात कहने वाला आदमी ही नही हूँ। राजा दर्शन नही देते यह बात तुम्ही लोगो ने उठाई थी—तभी मैंने कह दिया कि जान-बूझकर नही दिखाई देते।

पहला : अरे विरूपाक्ष, कह ही डालो !

विरूपाक्ष : तुम लोगो से कहने मे कोई दोप नही है—तुम सब अपने ही आदमी हो। (धीमे स्वर से) राजा देखने मे बड़ा विकट है, इसीलिए उसने प्रण किया है कि कभी किसी के सामने नही आया करूँगा।

पहला : जरूर यही बात है। हम भी सोचते थे—भला, सभी देशो के राजा को देखते ही देश के लोगो की आत्मा तक बाँस के पत्ते की तरह थर-थर काँप उठती है, तो हमारा ही राजा कभी दिखाई क्यो नही देता ? और कुछ न हो तो अगर एक बार आँखे दिखाकर इतना ही कहे कि 'सब बेटो के सिर उड़ा दो !' तो भी हम लोग जाने कि हाँ, राजा नाम का कुछ है ! विरूपाक्ष की बात मन को छूती है।

तीसरा : कुछ नही छूती-छूती ! मुझे तो रत्ती-भर विश्वास नही होता।

विरूपाक्ष : क्या कहा रे विसी ! तू कहना चाहता है कि मैं झूठ बोलता हूँ।

विश्ववसु : यह कहना तो नही चाहता था किन्तु तुम्हारी बात इसीलिए मान लूँगा ऐसा नही है उस पर चाहे गुस्सा करो चाहे जो करो !

विरूपाक्ष : तुम क्यो मानने लगे ! तुम अपने बाप-दादा को ही नही मानते—ऐसी ही बुद्धि है तुम्हारी। इस राज्य मे राजा यदि छिपकर न रहते तो यहाँ तुम्हारे लिए ठौर होता, तुम तो निरे नास्तिक हो।

विश्ववसु : अच्छा आस्तिक जी, किसी दूसरे राजा का देश होता तो तुम्हारी जीभ काटकर कुत्ते को खिला दी जाती। तुम कहते हो कि हमारा राजा देखने मे विकट है।

विरूपाक्ष : देखो विसु, मुँह सँभालकर बात करो !

विश्ववसु : मुँह सँभालने की जरूरत किसको है यह भी क्या बताना पड़ेगा।

पहला : चुप-चुप यह अच्छा नही हो रहा है। आप लोग तो जान पड़ता है मुझे ही आफत मे डालेंगे। मै इस सबमे नही पड़ता।

(प्रस्थान। कई व्यक्तियों का बुढऊ दादा को खींचकर लाते हुए प्रवेश)

दद्दा, तुम्हे आज ऐसे सजाया कितने ? यह माला किस निपुण हाथ की गूँथी हुई है।

दादा : अरे बुद्धुओ, सब बात क्या खुलासा करके कहनी होगी ? कुछ भी छिपा नही रहेगा।

दूसरा : रहने दीजिए दद्दा ! आपका तो सब पहले ही उघड़ा हुआ है ! हमारे कवि-केशरी ने आप पर जो गाना लिखा है, जान पड़ता है आपने सुना नही, वही; जिसकी घर-घर चर्चा है।

दादा : एक घर में ही काफी है, घर-घर सुनते फिरने की किसे फुरसत है।

तीसरा : यह तो तुम फिजूल की ही हाँक रहे हो दद्दा ! दादी जैसे तुम्हे आँचल मे बाँधकर रखती है। मुहल्ले मे जहाँ जाओ वही तुम मौजूद हो—घर रहते ही कब हो।

दादा : अरे तुम्हारी दादी का आँचल बहुत लम्बा है मुहल्ले मे जहाँ भी जाऊँ उस आँचल से छूटकर जाने की जगह ही नही है। फिर भी कवि क्या कहते हैं, सुनूं तो !

तीसरा : वह कहते है :

गान—५

जहाँ रूप की प्रभा आंखों को लुभाती है,
वहाँ तुम-सा भूला हुआ कौन है ? (बुढ़ऊ दादा)
जहाँ रसिकों की सभा परम शोभित है
वहाँ ऐसा रस में डूबा हुआ कौन है ? (बुढ़ऊ दादा)

दादा : अरे चुप-चुप, ऐसे वसन्त के दिन तुमने यह क्या गाना शुरू किया।

पहला : क्यो शुरू किया जानते हो ?

गान—६

जहाँ गले मिलना है, कौली भरना है;
जहाँ बेच खरीद की उस हाट की
धूल भी नही पड़ती,
जिसमें झगड़ालू झगड़ते है;
जहाँ भूला-भलापन है, खरा-खुलापन है,
वहाँ तुम-सा खुला और कौन है ? (बुढऊ दादा !)

दादा : अगर तुम लोगो ने अपने उसी कवि से पूछा होता तो जानते कि फागुन के इस मास दिन दद्दा-जैसी पुरानी चीजे सब बिलकुल वर्जनीय होती है। अपना गाना मेरे साथ बाँधकर राग-रागिनी का अपव्यय मत करो, इससे सरस्वती की वीणा के तारों मे मोर्चा लग जायगा।

दूसरा : दद्दा तुमने तो रास्ते में ही सभा लगा दी, उत्सव मे कब चलोगे ? चलो हमारे दखिनी कुज मे।

दादा : भई मेरी तो ऐसी ही दशा है। मैं तो रास्ते से ही चखता हुआ चलता हूँ, अन्त मे भोज तो होगा ही। 'आदावन्ते च मध्ये च—'

दूसरा देखो दद्दा आज के दिन एक बात मन को बहुत खटक रही है।

दादा . क्या बात, सुनूं ?

दूसरा . इस बार देश-विदेश से लोग आये है, सभी कहते है, सभी कुछ सुन्दर दीखता है किन्तु राजा क्यों नही दीखते। हम किसी को जवाब नही दे पाते। हमारे देश मे यही बड़ी कमी रह गई है।

दादा : कमी। हमारे देश मे राजा एक जगह नही दिखाई देते इसीलिए तो सारा राज्य एकबारगी राजा से ठसाठस भरा है—और तुम कहते हो कमी। उसने तो हम सबको राजा कर दिया है। ये जो दूसरे राजा है इन्होने तो उत्सव को कुचल-मसलकर धूल कर दिया है। उनके हाथी-घोडो और लाव-लश्कर के भार से दखिनी हवा मे और दाक्षिण्य नही रहा, वसन्त का मानो दम घुटने की नौबत आ गई है। किन्तु हमारे राजा स्वयं जगह नही घेरते। सबके लिए जगह छोड़ देते हैं। कवि केशरी का वह गाना तो तुम जानते हो .

गान—७

इस राजा के राजत्व में हम सभी राजा हैं, नही तो राजा से हमारी भेंट किस अधिकार से होगी ?
हम जो चाहते हैं, वही करते हैं, फिर भी उसीकी इच्छा के अधीन रहते हैं, हम बँधे नहीं हैं, दासराजा के त्रास में, नही तो राजा से हमारी भेंट किस अधिकार से होगी ?
राजा सबको मान देते हैं, और वही मान फिर स्वयं पाते हैं, हमे किसी ने किसी झूठ में उलझाकर हीन करके नही रखा है, नही तो राजा से हमारी भेंट किस अधिकार से होगी ?
हम चलेंगे अपने मन से, पर अन्त में मिलेंगें उसीके पथ पर,
हम कोई भी विफलता के आवर्त्त में नहीं मरेंगे,
नहीं तो राजा से हमारी भेंट किस अधिकार से होगी।
हम सभी राजा हैं।

तीसरा : किन्तु दद्दा, तुम जो कहो, राजा को देख न पाने से लोग अना-यास उनके बारे में जो कह देते हैं, यह सहा नही जाता।

पहला : अब देखो न मुझे कोई गाली दे तो उसकी सजा है, किन्तु राजा को गाली देने पर कोई उसका मुँह बन्द करने वाला नही है।

दादा : उसका कारण है। राजा का जितना अंश प्रजा के अन्दर है उसी-को चोट पहुँच सकती है, उसके बाहर वह जितने है उन्हे कुछ छू ही नही सकता। सूर्य का जो तेज प्रदीप मे है वह एक फूंक भी नही सह सकता, किन्तु सूर्य की ओर हजार-हजार लोग मिलकर भी फूंकें तो वह अम्लान ही रहेगा।

(विश्ववसु और विरूपाक्ष का प्रवेश)

विश्ववसु : अब यही देखिये दद्दा, यही इस आदमी ने रट लगा रखी है कि हमारे राजा कुरूप है तभी सामने नही आते।

दादा . तो इतने बिगड़ते क्यो हो विसु ? उसके राजा कुरूप ही होंगे, नही तो उनके राज्य मे विरूपाक्ष के जैसा चेहरा क्यों दीखता ? स्वय उसके माँ-बाप ने भी उसका कार्तिक नाम नही दिया। वह

शीशे मे जैसा अपना मुँह देखता है राजा के चेहरे का वैसा ही ध्यान करता है।

विरूपाक्ष : दद्दा, मैं नाम नही लूँगा, किन्तु यह खबर मैने ऐसे आदमी से सुनी है कि विश्वास न करने की गुंजाइश नही है।

दादा : अपने से अधिक किसी पर विश्वास किया जा सकता है, बताओ तो ?

विरूपाक्ष : नही। मैं तुम्हे प्रमाण दे सकता हूँ।

पहला : इस आदमी को शर्म भी नही आती। एक तो अनकहनी कहता है, दूसरे उसका प्रमाण देना चाहता है।

दूसरा : दो उसको मिट्टी मे मिलाकर उसके मिट्टी होने का प्रमाण !

दादा : अरे भाई, गुस्सा मत करो ! उसके राजा कुरूप हैं यह कहते फिरने के लिए ही वह बेचारा आज उत्सव मनाने निकला है। जाओ भाई विरूपाक्ष, ऐसे ढेरो मिलेंगे जो तुम्हारी बात का विश्वास कर लेंगे, उनको लेकर दल बनाकर जाओ मौज करो !

(प्रस्थान। विदेशी दल का प्रवेश।)

कौण्डिल्य : भई सच कहता हूँ कि हम लोगों को ऐसी आदत पड गई है कि यहाँ कही भी राजा न देखकर ऐसा लगता है कि खड़े तो है, लेकिन पैरो के तले धरती ही नही है।

भवदत्त : देखो भई कौण्डिल्य, असल बात यह है कि इन लोगो के राजा हैं ही नही। सभी लोगो ने मिलकर एक अफवाह फैला रखी है।

कौण्डिल्य : मुझे भी ऐसा ही लगता है। हम लोग तो जानते है कि देश मे सबसे ज्यादा दीखता है तो राजा—अपने को खूब अच्छी तरह दिखाये बिना वह तो छोड़ता नही।

जनार्दन : किन्तु इस राज्य मे इस छोर से उस छोर तक जैसा नियम दीखता है राजा के रहे बिना तो वैसा होता नही।

भवदत्त : इतने दिन राजा के देश में रहकर बस इतना ही तुम्हारी समझ मे आया ? नियम ही अगर रहेगे तो फिर राजा के रहने की और ज़रूरत क्या है ?

जनार्दन : अब यही देखो न ! आज इतने लोग मिलकर आनन्द कर रहे है।

राजा न होते तो ये लोग ऐसे मिल ही नही सकते थे ।

भवदत्त वाह् जनार्दन ! असल बात तो तुम टाले ही दे रहे हो । एक नियम है वह तो दीखता है, उत्सव हो रहा है यह भी स्पष्ट दीखता है, इसमे तो कोई शका नही कर रहा है ? किन्तु राजा कहॉ है, उसको कहॉ देखा, यह तो बताओ !

जनार्दन : मै यही तो कह रहा हूँ कि तुम लोग तो ऐसा ही राज्य जानते हो जिसमे राजा केवल आँखो से दीखता है, राज्य मे कही उसका कोई परिचय नही मिलता वहाँ केवल भूत डोलते है । किन्तु यहॉ देखो—

कौण्डिल्य : फिर घुमा-फिराकर वही एक बात ! तुम भवदत्त के असली सवाल का जवाब क्यो नही देते—हॉ या ना ? राजा को देखा है कि नही देखा ?

भवदत्त हटाओ यार कौण्डिल्य । उसके साथ फिजूल बक-झक कर रहे हो । उसका तो न्याय शास्त्र तक इस देश के ढग का हो गया है । उसने जो बिना ऑखो के देखना शुरू कर दिया तब फिर और क्या । अब तो यही हो सकता है उसको कुछ दिन बिना अन्न के आहार करने दिया जाय, तब शायद उसकी बुद्धि फिर साधारण लोगों की तरह ठिकाने आ जायगी ।

(प्रस्थान । बाउल गायकों की टोली का गाते हुए प्रवेश ।)

गान—८

मेरे प्राणों का मनुष्य प्राणों मे है,
तभी उसे सब जगह देख पाता हूँ ।
वह आँखों की पुतलियो मे है, आलोक की धारा में,
तभी खोता नही ।
तभी उसे देखता हूँ जहाँ-जहाँ चाहे जिधर देखूँ ।
उसके मुँह की बात सुनने मै कहाँ-कहाँ गया, पर सुनाई न दी
आज अपने देश लौटकर सुनता हूँ उसकी वाणी अपने ही गान में ।
कौन तुम उसे खोजते हो कंगाल-से द्वार-द्वार पर,

वहाँ वह नहीं दिखाई देगा—
दौड़कर जाओ, उसे मेरे हृदय में देखो, मेरी दो आँखों में देखो !

(प्रस्थान । प्यादों के एक दल का प्रवेश)

पहला प्यादा : हटो, हटो, रास्ता छोड़ो !

प पथिक ओ, हो । बहुत बड़े आदमी है न—पैर पसारकर चलते है। क्यों जनाब, क्यो रास्ता छोडे ? हम सब राह के कुत्ते है क्या ?

दूसरा प्यादा : हमारे राजा आ रहे है।

प. पथिक : राजा ? कहाँ के राजा ?

प. प्यादा : हमारे इसी देश के राजा ?

प. पथिक : यह पागल है क्या ? हमारे देश का राजा जैसे प्यादे छोडकर रास्ता खाली करवाता हुआ चलता है।

दू. प्यादा : महाराज अब और छिपे नही रहेगे, आज स्वय आकर उत्सव करेगे।

दू पथिक : अरे क्या सचमुच !

दू. प्यादा · वह देखो न—निशान उड रहा है।

दू. पथिक अरे हाँ सच तो, वह तो सचमुच राजा का झण्डा है।

दू प्यादा पलाश के फूल से अकित ध्वजा है, नही देखते ?

दू पथिक : हाँ, पलाश के फूल तो है—झूठ तो नही कह रहा है एकदम लाल लहक रहा है !

प. प्यादा · तो फिर ? मेरी बात का विश्वास ही नही कर रहे थे।

दू. पथिक · नही दादा, मैंने तो अविश्वास नहीं किया। वह कुम्भ ही गोल-माल कर रहा था। मैने तो एक बात भी नही कही।

प प्यादा · कुम्भ बेटा खाली कुम्भ होगा न, तभी इतना बजता है !

दू प्यादा · यह आदमी कौन है जी ? तुम लोगो का कोई है।

दू. पथिक : हमारा कोई नही। हमारे गाँव के जो पटवारी है न, यह उनका चचिया ससुर है—दूसरे मुहल्ले मे रहता है।

दू. प्यादा हाँ, हाँ, चेहरा बिलकुल चचिया ससुर जैसा है, अक्ल भी बिलकुल ससुर के ढग की है।

कुम्भ . बहुत दुख भोगकर ही अक्ल ऐसी हो गई है। अभी उस दिन क्या जाने कहाँ से एक राजा निकला, नाम के आगे ३४५ श्री

लगाकर नगाड़ा पिटवाते हुए सारा शहर घूमा—मैंने उसके पीछे-पीछे क्या कम खाक छानी ! कितना भोग लगाया, कितनी सेवा की, घर-वार विकने की नौवत आ गई और अन्त मे उसकी राजा-गिरी रही कहाँ ? लोग जव उससे ताल्लुका माँगते या मुल्क माँगते तव पोथी-पत्रा खोलकर वाँचने पर उसे शुभ दिन ही ढूँढे न मिलता ! किन्तु हम लोगो से खजाना वसूलने के समय मघा-आश्लेषा, अस्पर्श कुछ भी वाधा न देता ।

दू प्यादा : क्यो रे कुम्भ, हमारे राजा को तुम वैसे नकली राजा वता रहे हो।

प प्यादा : अरे चचिया ससुर, जरा चचिया सास से विदा लेते आओ—तुम्हारा समय आ गया दीखता है।

कुम्भ : अरे वावा नाराज मत हो। मैं कान पकड़ता हूँ, नाक रगड़ता हूँ—जितनी दूर हटने को कहोगे उतनी दूर हटकर खड़ा होने को तैयार हूँ।

दूसरा प्यादा ˙ अच्छा, खैर। यहाँ पर कतार वाँधकर खड़े हो। राजा आये ही समझो—हम आगे वढ़कर रास्ता ठीक कर रखे।

(प्यादों का प्रस्थान)

दूसरा पथिक : कुम्भ, तुम्हारी यह जवान ही एक दिन ले डूवेगी।

कुम्भ . नही माधव, यह जवान का नही, मेरे कपाल का दोष है। जव नकली राजा प्रकट हुए थे तब मैंने कुछ नही कहा था—विलकुल भलेमानुस की तरह अपना सर्वनाश कर लिया था। और अब की वार जव क्या जाने असली राजा आ रहे है तव कैसी यह गलत वाते मेरे मुँह से निकल गई। यह सव कपाल का दोष है।

माधव . मैं तो यह गलत समझता हूँ कि राजा असली हो या नकली ; उसको मानकर ही चलना होगा। हम लोग क्या राजा को पहचानते हैं जो इसका फैसला करेंगे ? यह तो अँधेरे मे ढेला फेंकना है। वहुत-से फेंकेंगे तो एक-न-एक लग जायगा। मैं तो भाई एक सिरे से सबको मानकर चलता हूँ—असली होगा तो लाभ है ही, असली भी नही होगा तो नुकसान क्या है।

कुम्भ . ढेले अगर निरे ढेले ही होते तव तो कोई सोचने की वात न होती। लेकिन यहाँ तो वह दामी चीज है—फ़िज़ूल खर्च करने

से फ़ितूर खडा होता है।

माधव : वह आ रहे है राजा। आहा, सचमुच राजा-जैसे राजा है। क्या चेहरा है—जैसे मक्खन का पुतला हो। क्यों जी कुम्भ, अब क्या राय है ?

कुम्भ : देखने मे तो बड़ा सुन्दर है—क्या जाने भाई, हो भी सकता है।

माधव : ठीक जैसे राजा का पुतला गढ़कर रखा गया है। डर होता है कही धूप लगने से पिघल न जाय !

(राजवेशधारी का प्रवेश)

माधव : महाराज की जय। दर्शन के लिए सवेरे से खड़े है। दया बनी रहे।

कुम्भ : बड़ी उलझन मालूम हो रही है। दद्दा को बुला लायँ।

(प्रस्थान। यात्रियों के एक और दल का प्रवेश)

पहला प. : अबे राजा है राजा, देखेगा तो आ !

दूसरा प. : राजा, मै कुशलीवस्तु के उदयदत्त का नाती हूँ, मेरा नाम विराजदत्त, स्मरण रखिएगा। राजा आ रहे है, यह सुनकर ही मैं दौड़ा। लोगो की, कोई किसी की बात मैंने नहीं सुनी—सबके ऊपर मै आपको मानता हूँ।

तीसरा प : सुनो जरा इसकी बात। और मैं जो भोर से यहाँ खड़ा हूँ—जब कभी कागा भी नही बोला था—तब से—अब तक तुम कहाँ थे ? राजा, मैं विक्रमस्थली का भद्रसेन हूँ—भक्त को स्मरण रखिए।

विराजदत्त : महाराज, हम लोगो के बहुत अभाव है। इतने दिन तक आपके दर्शन भी नही पाये तो बताते किसको ?

राजवेशी : तुम्हारे सब अभाव दूर कर दूँगा।

(प्रस्थान)

पहला प. : अरे पिछड़ जाने से नही चलेगा। भीड मे खो जाने से राजा की नजर नही पड़ेगी।

दूसरा प. : देख, देख, एक बार जरा नरोत्तम की करतूतें देख। हम लोग इतने जने है, सबको ठेल-ठालकर कहाँ से एक ताड़पत्र का पंखा लेकर राजा को हवा करने लग गया।

माधव : हाँ तो ! इसका हौसला तो कम नहीं है।

दूसरा प. : उसको पकडकर वलपूर्वक हटाया जा रहा है। वह क्या राजा के पास खड़ा होने योग्य है।

माधव : अरे राजा क्या इतना भी नही समझेंगे। यह तो अति-भक्ति है।

पहला प. : नही जी—राजा लोग कुछ नही समझते ! ताड के पखे की हवा खाकर उसीमे भूल सकते है।

(सभी का प्रस्थान। बुढऊ दादा को लेकर कुम्भ का प्रवेश)

कुम्भ . अभी-अभी इसी रास्ते से गये है।

दादा : रास्ते से जाने से ही क्या राजा हो जाता है !

कुम्भ : नही दद्दा, बिलकुल स्पष्ट आँखो से देखा गया—और एक दो नहीं, रास्ते के दोनो ओर के सभी लोगो ने उसे देख लिया।

दादा : इसीलिए तो सन्देह होता है। हमारे राजा कब राह चलते लोगों की आँखें चौंधियाते घूमने आते हैं ! ऐसा उत्पात तो राजा ने कभी नही किया।

कुम्भ : तो आज राजा की ऐसी मर्जी हो तो क्या कहा जा सकता है।

दादा : जरूर कहा जा सकता है ! हमारे राजा की मर्जी बराबर ठीक रहती है—घड़ी-घडी वदलती नही।

कुम्भ : लेकिन दद्दा कैसे बताऊँ तुम्हे—एकदम माखन का पुतला ! मन होता था कि सर्वांग से उसपर छाया किये रहूँ।

दादा : वाह रे तेरी अकल ? हमारे राजा माखन के पुतले है, और उन पर छाया किये रहेगा तू !

कुम्भ : तुम जो कहो दद्दा, बड़े सुन्दर दीखते थे।आज इतने लोग इकट्ठे हुए हैं, किन्तु वैसा और कोई नही देखा।

दादा : हमारे राजा यदि दिखाई भी देते तो तुम लोगो की नजर न पड़ते। दस के बीच मे उन्हे अलग पहचाना ही नही जा सकता—वह सबमे ऐसे घुल-मिल जो जाते है।

कुम्भ : लेकिन हमने झण्डा जो देखा।

दादा : झण्डे पर क्या देखा ?

कुम्भ . पलाश का फूल अकित था। आँखे मानो चौधिया जाती थी।

दादा : हमारे राजा के झण्डे पर तो कमल के फूल के मध्य मे वज्र अंकित है।

कम्भ : लोग कहते हैं, इस उत्सव में राजा वाहर आए है।

दादा : ज़रूर बाहर आए हैं। किन्तु उनके साथ प्यादे नही हैं, वाजा-गाजा नहीं है, रोशनी नही है। कुछ नही है।

कुम्भ : तव तो कोई पहचान ही न सकेगा।

दादा · कोई-कोई शायद पहचान सके।

कुम्भ . जो पहचान सकेगा वह शायद जो चाहेगा पायगा।

दादा . नही, वह कुछ चाहेगा ही नही। राजा का पहचानना भिखमगो के वस का नही है। छोटा भिखमंगा वड़े भिखमगे को ही राजा समझ वैठता है। आज जो आदमी गहनो से लदा हुआ रास्ते के दोनो ओर जुटे हुए लोगो की आँखो से भिक्षा माँगता हुआ घूम रहा है, तुम लोभी लोग उसे ही राजा समझकर अचकचाए वैठे हुए हो। वह मेरा पागल आ रहा है। आ—भाई आ—और तो फिजूल वकवास कर नही सके—थोडी मस्ती कर ली जाय !

(पागल का प्रवेश)

गान—९

तुम जो कहो, मुझे वह सोने का हिरन चाहिए—
वही मन-हरन, चपल-चरण !
वह चमककर छिप जाता है, उसे बाँधा नहीं जाता,
आहट मिलते ही वह चकमा देकर भाग जाता है,
फिर भी उसके पीछे दौड़ूँगा खेत और जंगल में,
वह मिले या न मिले।
तुम पाने की चीजें बाजार में खरीदते हो, घर मे भरकर रखते हो—
जो पाया नहीं जाता, उसकी छूत मुझे क्यो लगी ?
मेरा जो था उसे मैने दे दिया, जो नही था उसकी झोंक में,
मेरी पूँजी चुक गई—पर क्यों सोचते हो मै उसके शोक में मरता हूँ ?

मैं सुखी हूँ, हँसता हूँ, दुःख मुझे नहीं है।
मैं मनमाने खेतों-जंगलो में उन्मुक्त घूमता फिरता हूँ !

३

कुञ्ज वन के द्वार पर

(वृद्धक दादा और उत्सव करते हुए बालकगण)

दादा हम द्वार तक पहुँच गए हैं। अब खूब जोर से दरवाजे को धक्का दो।

गान—१०

आज कमल-मुकुल-दल खिला है, हिला है,
मानस-सर मे रस-पुलक की लहर उठी है,
गगन गन्ध में मगन है, समीर आनन्द से मूर्छित हो रहा है,
मधुकर गुञ्जार करते हुए वन्दना कर रहे हैं,
निखिल भुवन मुग्ध हो रहा है।

(प्रस्थान। अवन्ती, कौशल, काची आदि के राजाओं का प्रवेश)

अवन्ती : यहाँ के राजा क्या हमे भी दर्शन न देंगे।

काची : इसकी राज करने की प्रणाली भी कैसी है। राजा के कुंज वन में उत्सव है वहाँ भी जनसाधारण पर किसी तरह की कोई रोक-टोक नही है ?

कौशल : हम लोगो के लिए तो बिलकुल अलग स्थान तैयार करके रखना उचित था ?

कांची : हम लोग बल से अपना स्थान बना लेंगे।

कौशल : यहाँ सब देखकर सदेह होता है कि यहाँ राजा है ही नही। एक धोखा चला आ रहा है।

अवन्ती . हाँ, ऐसा हो तो सकता है, किन्तु यहाँ की रानी सुदर्शना निरी धोखा नही है।

कोशल : इसी लोभ से तो आये हैं। जो दिखाई नही देता उनके लिए हमारी विशेष उत्सुकता नहीं है, किन्तु जो देखने के योग्य है, उसे देखे बिना लौट जायँ तो ठगे जाना होगा।

काची : तो कोई फदा डाला ही जाय न !

अवन्ती : फदा चीज तो बहुत अच्छी है, मगर खुद ही उसमे न फँस जायँ तो।

काची : यह क्या मामला है—झण्डा फहराता हुआ इधर कौन आ रहा है। यह कहाँ का राजा है ?

(प्यादों का प्रवेश)

कांची : तुम्हारा राजा कहाँ का है ?

पहला प्यादा : इसी देश के। वह आज उत्सव करने आये है।

(प्रस्थान)

कौशल यह क्या बात है ? यहाँ के राजा बाहर आये हैं।

अवन्ती : यही तो। तब तो इसको देखकर ही लौटना होगा। दूसरी दर्शनीय चीज तो रह गई।

काची : लेकिन हम क्यों सुने ? जहाँ राजा नही है। इसीलिए उसका जी चाहता है बेधड़क अपने को राजा कहकर अपना परिचय देता है। देखते नही, जैसे रूप सजाकर आया हो। जरूरत से ज्यादा सजा है।

अवन्ती : किन्तु देखने में अच्छा है। चेहरे-मोहरे से आँखे धोखा खा सकती है।

काचा : एक बार धोखा हो सकता है, लेकिन अच्छी तरह देखते ही पोल खुल जायगी। मैं तुम्हारे सामने ही उसका भण्डा-फोड़ किये देता हूँ।

(राजवेशी का प्रवेश)

राजवेशी : स्वागत राजगण ! यहाँ आपकी अभ्यर्थना मे कोई चूक तो नही हुई।

राजगण . (कपट-विनय से नमस्कार करते हुए) कोई नही।

काची : जो अभाव था वह महाराज के दर्शन से ही पूरा हो गया।

राजवेशी : जन-साधारण हमे नही देख सकते; किन्तु आप लोग हमारे अनुगत है इसलिए एक वार भेंट करने आ गए।

कांची : इतना अधिक अनुग्रह सहन करना कठिन है !

राजवेशी मै अधिक नही ठहरूँगा।

काची · यह तो पहले ही समझ रहा था। अधिक देर तक टिकने के लक्षण तो नही दीखते।

राजवेशी : इस बीच यदि आपकी कुछ प्रार्थना हो तो—

काची : है तो। किन्तु अनुचरो के सामने कहते सकोच होता है।

राजवेशी · (अनुवर्तियो के प्रति) थोडी देर के लिए तुम लोग हट जाओ ! अव आप लोग नि सकोच अपनी वात कह सकते है।

काची निसकोच ही कहेगे—ऐसे कि तुम्हे भी लेश-मात्र संकोच न हो।

राजवेशी : नही, इसकी आशका न करे।

काची . तो आओ—भूमि पर माथा टेककर हममे से प्रत्येक को प्रणाम करो !

राजवेशी . जान पडता है मेरे भृत्यो ने राजशिविर मे वारुणी कुछ खुले हाथ से वॉटी है !

काची अरे भडराज, मद जिसे कहते है वह तुम्हारे ही भाग मे अतिमात्रा मे पडा है। इसीलिए अव यहाँ धूल में लोटने की अवस्था सामने आई है !

राजवेशी . राजगण, यह परिहास राजोचित नही है।

काची परिहास का अधिकार जिनको है वे भी पास ही मौजूद है। सेनापति !

राजवेशी : और प्रयोजन नही है। स्पष्ट ही दीखता है कि आप लोग मेरे प्रणम्य है। सिर अपने-आप झुका जा रहा है, किसी तीक्ष्ण उपाय से उसे मिट्टी तक झुकाने की जरूरत नही होगी। आप लोगो ने जव मुझे पहचान लिया तो मैने भी आपको पहचान लिया। इसलिए यह मेरा प्रणाम ग्रहण करे। और यदि दया करके आप मुझे भाग जाने दे तो मै उसमे विलम्ब नही करूँगा।

काची . भागोगे क्यो ? हम लोग तुम्हे यहाँ का राजा वनाये देते हैं।

परिहास को पूरा ही कर दिया जाय ! दल-बल कुछ है ?

राजवेशी : है। राह चलते जो भी मुझे देखता है मेरे पीछे दौड़ा आता है। आरम्भ में जब मेरा दल अधिक नही था तब सभी सन्देह करते थे —लेकिन जैसे-जैसे लोग बढते गए सन्देह दूर होता गया। अब तो भीड के लोग अपनी भीड़ देखकर ही मुग्ध हुए जा रहे है—मुझे तो कुछ भी कष्ट नही करना पड़ता !

काची : अच्छी बात है। अब से हम तुम्हारी सहायता करेगे। किन्तु हमारा भी एक काम तुम्हे कर देना होगा।

राजवेशी : आपका दिया हुआ आदेश और मुकुट मैं सिर माथे पर लूँगा।

कांची : अभी तो और कुछ नही चाहिए, रानी सुदर्शना को देखना चाहते हैं—यह काम तुम्हे कर देना होगा।

राजवेशी . सकत भर प्रयत्न करूँगा—इसमे त्रुटि नही होगी।

काची : तुम्हारी सकत-भर का भरोसा नही है। जैसा हम सुझायँगे वैसे चलना होगा। अच्छा, अब तुम कुज में जाकर राजा के आडम्बर के साथ उत्सव करो चलकर।

(राजगण और राजवेशी का प्रस्थान। बुढऊ दादा और कुम्भ का प्रवेश)

कुम्भ : दादा तुम्हारी बात तो नही समझी। लेकिन तुम्हे समझता हूँ। तो अब मुझे राजा की जरूरत नही है, अब मै तुम्हारे पीछे ही हो लिया। लेकिन इसमे ठगा तो नही गया ?

दादा : मेरे साथ से ही तुम्हारा काम पूरा चल जाय, तब तो नही ठगे गए। लेकिन अगर मुझसे अधिक कुछ भी ज़रूरत तुम्हे हो तब तो ज़रूर ठगे गए !

कुम्भ · दद्दा उत्सव शुरू हो गया है, अब भीतर चलो !

दादा : नही रे, पहले द्वार का काम समेट लूँ। फिर भीतर। यहाँ सब आने वालो से एक बार मिल लेना होगा। वह हमारे अकिंचनों की टोली आ रही है।

अकिंचनों की टोली दद्दा, तुम्हे ढूँढते-ढूँढते हम लोगो को देरी हो गई।

दादा : आज तो मैं द्वार पर खड़ा हूँ। आज और कही खोजने पर कैसे मिलूँगा।

पहला अकिचन : तुम हमारे उत्सव के सूत्रधार जो हो।

दादा : तभी तो द्वार पर खड़ा हूँ।

दूसरा : आज क्या तुम इन कुम्भ, सघन, मूसल, तोसल वगैरा के साथ ही रहोगे ? देश-विदेश के कितने राजा आये है, उनके साथ परिचय नही कर लोगे ?

दादा : भाई, यह सब सीधे सरल लोग है—उनके साथ चुपचाप खड़े रहने-भर से ये लोग समझते है कि न जाने इनकी कितनी सेवा की। और बड़े आदमियों के सामने मूँड कटाकर भी हाजिर किया जाय तो वे समझते है कि उन्हे झूठ-मूठ कुछ देकर ठग लिया गया !

प. अकिंचन : अब चलो दद्दा !

दादा : नही भाई, आज तो मेरा चलना यही खड़े-खडे ही है। लोगो की चला-चली मे ही मेरा मन दौड़ रहा है ! और क्या अब—तो फिर शुरू किया जाय !

(समवेत गान)

गान—११

हमारा कुछ भी नहीं है, हम घर-बाहर गाते-फिरते हैं—
ताना ना ना ना।
जितने दिन जाते हैं हम सुख से गाते है, ताना ना ना ना।
जो लोग सोने की खिसकती बालू पर पक्के घर की भीत गढ़ते है,
हम उनके सामने से गान गाते जाते है . ताना ना ना ना ।
जब रह-रहकर गाँठ की ताक में गाँठकटे झाँकते हैं,
हम सूनी झोली दिखाकर गाते है—ताना ना ना ना ।
जब मौत बुढ़िया द्वार पर आती है, हम उसे अँगूठा दिखाते हैं—
तान खींचकर गाते है, ताना ना ना ना।
यह जो वसन्त आया है, बाहर से उज्ज्वल सजा है,
पर उसके भीतर से वैरागी गाता है—ताना ना ना ना।
उत्सव का दिन चुकाकर, झराकर सुखाकर,
रीते हाथो से ताली देता हुआ गाता है, ताना ना ना ना।

(प्रस्थान। स्त्रियों की एक टोली का प्रवेश)

पहली स्त्री · दद्दा !

दादा : क्या है भाई।

पहली : आज वसन्त-पूर्णिमा के चाँद के साथ माला वदल करूँगी यह प्रण करके घर से निकली हूँ।

दादा . इस प्रण की रक्षा करना तो कठिन दीखता है।

तीसरी : क्यो, जरा सुने तो।

दादा : क्योकि तुम्हारी दादी ने केवल एक ही माला मेरे गले मे पहनाई है।

तीसरी : देखा, देखा ? दद्दा की विनय तो जरा देखो !

दूसरी : हाय रे हाय, आकाश का चाँद कहाँ आकर गिरा है !

दादा · तुम लोगो ने जो जाल विछाया है उससे वचकर कैसे निकला जा सकता है !

पहली · तव हमारे जाल का गुण ही वताओ !

दादा . चाँद भी गुणी है, अपने लायक जाल देखकर वह स्वय पकडाई दे देता है।

तीसरी · अच्छा, दादी का हिसाब भी कैसा है ! आज उत्सव के दिन न होता तो दो मालाएँ ज्यादा ही डाल दी होती !

दादा : जितनी भी देती, पूरी थोड़े ही होती ! इसलिए आज एक ही माला दी। एक मे तो कोई झंझट ही नही है।

दूसरी : दद्दा तुम द्वार छोडकर हटोगे नही।

दादा : हाँ भाई, सवको आगे वढ़ाकर तव सवके पीछे मैं जाऊँगा।

(स्त्रियों की टोली का प्रस्थान। नाचने वालों के दल का प्रवेश)

दादा : अरे, आओ, आओ !

प नर्तक : हमारे नटराज तो तुम हो। तुम्हे हम खोजते फिर रहे थे।

दादा : मैं तो द्वार के पास खड़ा हूँ। जानता हूँ कि सबको यही से जाना होगा। तुम्हें देखते ही दोनो पैर छटपटाने लगे। एक वार नचा तो जाओ !

(नृत्य और गान)

गान—१२

मेरे चित्त में कौन नित्य नाचता है,–
ता-ता थेइ-थेइ ता-ता थेइ-थेइ थैया ?
उसके साथ मृदंग पर सदा क्या बजता है ?
ता-ता थेइ-थेइ, ता-ता थेइ-थेइ ।
हँसी और क्रन्दन, हीरे-पन्ने से भाल पर दोलते हैं,
अच्छा और बुरा छन्द-ताल पर काँपते हैं,
जन्म और मरण पीछे-पीछे नाचते हैं—ता-ता थेइ-थेइ ता-ता थेइ-थेइ ।
कैसा आनन्द, कैसा आनन्द !
दिन-रात नाचते हैं मुक्ति और बंधन
रंग-शाला में उसीकी तरंग पर, ता-ता थेइ-थेइ ता-ता थेइ-थेइ !

दादा : जाओ भाई, तुम लोग नाचते-नाचते हुए जाओ घूमो !

(नाचने वालो के दल का प्रस्थान। नागरिकों के दल का प्रवेश।)

पहला नागरिक : दद्दा, हमारे राजा नही है यह बात दो सौ बार कहूँगा !

दादा : केवल दो सौ बार ! इतने बड़े संयम की क्या जरूरत है। पाँच सौ बार कहो न !

दूसरा नागरिक : धोखा देकर कब तक तुम लोग किसी को भरमाए रखोगे।

दादा : भाई, अपने को भी तो भरमा रखा है हमने !

तीसरा ना० हम लोग चारो ओर प्रचार करेगे कि हमारा कोई राजा नही है।

दादा : यह झगड़ा किसके साथ करोगे, बताओ। तुम्हारा राजा तो किसी का कान पकड़कर कहता नही है कि मैं हूँ। वह तो यही कहता है कि तुम्ही लोग हो। उसका सब-कुछ तुम्हारे ही लिए तो है।

पहला ना० : यह लो—हम लोग बीच सड़क में चिल्लाते जायँगे कि राजा नही है। अगर राजा है तो क्या कर लेगा, देखे !

दादा : कुछ नही करेगा।

दूसरा ना० : मेरा २५ वर्ष का लड़का सात दिन के ज्वर मे मर गया। देश मे यदि धर्म का राजा रहता तो क्या ऐसी अकाल मृत्यु हो सकती।

दादा : अरे, फिर भी तो तेरे दो बेटे अब भी है—मेरे तो एक-एक करके पाँच लड़के मर गए। एक भी बाकी न रहा !

तीसरा : तो फिर ?

दादा : तो फिर क्या ? लड़का तो गया ही, इसीलिए क्या झगड़ा करके राजा को भी गँवाऊँ। ऐसा ही मूर्ख हूँ ?

पहला : जिन्हे घर मे अन्न नही जुटता उनका राजा कैसा ?

दादा : ठीक कहता है तू। तब फिर उसी अन्न-राजा को खोजकर निकाल। घर बैठकर चिल्लाने से तो वह दर्शन देने से रहा।

दूसरा : हमारे राजा का कैसा न्याय है, जरा सोचो तो। हमारा भद्रसेन जो है 'राजा-राजा' रटते मरा जा रहा है; पर उसके घर का वह हाल है कि चमगादड़ों को भी वहाँ रहते तकलीफ होती है।

दादा : मेरी ही दशा देख न ? सारा दिन तो राजा के द्वारे खटता हूँ और आज तक दो पैसे पुरस्कार के नही मिले।

तीसरा : तब ?

दादा . तब क्या। इसी बात को लेकर तो गर्व करता हूँ। बन्धु को कोई कभी पुरस्कार देता है। खैर तुम लोग जाओ, मजे से चिल्लाते फिरो कि राजा नही है। आज हमारा सभी तरह के सुरो का उत्सव है—सब सुर एक तान मे ठीक-ठीक मिल जायँगे।

गान—१३

वसन्त क्या केवल खिले फूलो का मेला है ?
क्या तुम सूखे पत्तों और झरे फूलों का खेल नही देखते ?
क्या उठती लहर के सुर मे ही सागर का गान बजता है !
गिरती लहर का सुर भी तो हर समय जागता रहता है !
मेरे प्रभु के चरणों तले क्या केवल मानिक जलते हैं ?
लाखो मट्टी के ढेले भी उनके चरणों में लोटकर रोते हैं !
मेरे गुरु के आसन के पास सुबोध बालक हैं ही कितने ?
अबोध को वह गोद बिठाते हैं, इसीसे मै उनका चेला हूँ।
उत्सव के राजा झरे फूलों का खेल देख रहे हैं !

४

प्रासाद-शिखर

(सुदर्शना और सखी रोहिणी)

सुदर्शना : अरे रोहिणी, तूने हमारे राजा को क्या कभी नही देखा ।

रोहिणी : सुना है सभी प्रजा ने देखा है, किन्तु पहचाना है बहुत कम लोगो ने। इसीलिए जब भी किसी को देखकर मन चौक उठता है तभी सोचती हूँ कि शायद यही राजा होगे। फिर दो-एक दिन बाद भूल मालूम हो जाती है।

सुदर्शना : भूल तुम लोग कर सकती हो, इनसे तो भूल नही हो सकती। मैं रानी जो ठहरी। वही है—मेरे राजा ही तो है !

रोहिणी : आपको वह कितना मान देते है। आपसे पहचाने जाने मे वह देर थोड़े ही कर सकते है !

सुदर्शना : उस मूर्ति को देखते ही चित्त अपने-आप पिजरे के पक्षी की भांति चचल हो उठता है। उनके बारे मे अच्छी तरह पूछ तो आई है न ?

रोहिणी : निश्चय ही पूछ आई हूँ। जिस किसी से पूछा उसीने तो कहा कि राजा हैं।

सुदर्शना : कहाँ के राजा।

रोहिणी : हमारे ही राजा।

सुदर्शना : वही जिनके मस्तक पर फूलो का छत्र है, उन्हीकी बात कह रही है न ?

रोहिणी : हाँ वही जिनकी पताका पर पलाश का फूल अकित है।

सुदर्शना . मैंने तो देखते ही पहचान लिया था। तुम्हे ही सदेह हुआ था।

रोहिणी : हम लोगो का साहस बहुत कम है। तभी डर लगता है—क्या जाने कही भूल हो गई तो अपराध होगा।

सुदर्शना : आह, अगर सुरगमा होती तब कोई सदेह न रहता।

रोहिणी : सुरगमा ही जैसे हम सबमे सयानी है।

सुदर्शना : वह तू जो कहे, वह उनको ठीक पहचानती है।

रोहिणी . यह बात मैं कभी नही मान सकती। उसको वैसा भान होगा। 'पह-

चानती हूँ' कह देने मे क्या है; कोई परीक्षा तो कर नही सकता। हम लोग भी उनकी तरह निर्लज्ज होती तो हमे भी बात कहते अटक न होती।

सुदर्शना : नही-नही वह तो कुछ कहती नही।

रोहिणी वैसा भाव जो दिखाती है, वह तो कहने से भी अधिक हुआ। कितने छल-छन्द जानती है वह! तभी तो हममें से कोई उसे देख नही सकती।

सुदर्शना : जो हो, वह होती तो एक वार उसे पूछ देखती।

रोहिणी : वह तो कभी कही वाहर नही जाती—आज देखती हूँ वह वन-ठनकर उत्सव मनाने निकली है। उसके रग-ढग देखकर तो हँसते-हँसते दम निकल गया।

सुदर्शना : आज प्रभु की आज्ञा जो है, तभी वह सज-धज कर निकली है।

रोहिणी : तब तो ठीक है महारानी, तब हमे क्या कहना है। आपकी इच्छा हो तो हम उसीको बुला लाती है, उसीकी बात से आपका सन्देह मिटे। उसकी किस्मत अच्छी है, रानी से राजा का परिचय वही करवायगी।

सुदर्शना : नही, नही, परिचय किसी को नही कराना होगा—फिर भी उनकी बात तो हर किसी के मुख से सुनने की इच्छा होती है।

रोहिणी : सभी तो कह रहे है—देखिए न उनकी जयध्वनि यहाँ तक सुनाई दे रही है।

सुदर्शना : तब तू एक काम कर! कमल-पत्र से ढककर ये फूल उन्हें दे आ।

रोहिणी : अगर पूछे कि किसने दिए है ?

सुदर्शना : उन्हे कुछ वताना न होगा। वह स्वय समझ लेगे। उनका विचार था, मैं पहचान ही नही सकूँगी—वह पकड़े गए यह जताए बिना मैं छोड़ने वाली नही हूँ। (फूल लेकर रोहिणी का प्रस्थान) मेरा मन आज इतना चचल हो रहा है—ऐसे तो कभी नही होता था। पूर्णिमा की यह चाँदनी मद के फेन की तरह चारो ओर छलकी पडती है, मुझे मानो मदमत्त किये दे रही है। अरे ओ वसन्त, जो सब भीरु लजीले फूल गम्भीर रात में पत्तो की ओट में फूटते है, तुम जैसे उनकी गन्ध उडा ले जाते हो, वैसे ही मेरे मन को तुम

कैसे हठात् उदास कर गए, उसे भूमि पर पैर टेकने नही दिये···
प्रतिहारी !

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी : आज्ञा महारानी !

सुदर्शना : अमराई की पगडण्डी से होते हुए वे जा रहे है—जा उन्हें बुला ला—ज़रा उनका गाना सुनूंगी।

(प्रतिहारी का प्रस्थान)

ओ भगवान् चन्द्रमा, आज मेरी इस चचलता पर तुम मानो केवल कटाक्ष करते जा रहे हो। तुम्हारी कौतुक-भरी मुसकराहट से मानो सारा आकाश भर गया है। मेरे लिए छिपने की मानो और कोई जगह नही रही—मै मानो अपनी ओर देखकर स्वयं लजा रही हूँ। भय, लज्जा, सुख, दुःख, सभी मानो मिलकर मेरे हृदय मे नृत्य कर रहे है···देह का रक्त नाच रहा है, चारो ओर जगत् नाच रहा है, सब धुँधला हुआ जा रहा है···

(बालकों का प्रवेश)

आओ आओ, तुम सब मूर्तिमान किशोर वसन्त हो ! आरम्भ करो अपना गान। मेरा देह मन सब गान गा रहा है फिर भी मेरे कण्ठ से सुर नही फूटता। तुम लोग मेरी ओर से गान गाते चलो।

(बालकों का गान)

गान—१४

आज मधु-रात मे विरह मधुर हो गया है।
वेदना में गम्भीर रागिनी बज उठती है।
अदर्शन की मेरी प्यास पूर्णिमा की रात में छाकर
पलकों मे कैसी करुण मरीचिका भर देती है।
सुदूर की गन्ध-धारा वायु को भरती हुई
मेरे प्राणों में भटक-भटककर खो जाती है।
किसकी वाणी किस सुरताल में पल्लवो मे मर्मरित है—
जिनके साथ-साथ मेरे मंजीर भी बज उठे हैं।

सुदर्शना : बस बस, बहुत हुआ। तुम्हारा यह गाना सुनकर आँखें भर आती है। ऐसा लगता है कि जो पाने की चीज है उसे अपने हाथ मे पाने का कोई उपाय नही है, बल्कि उसे पकड़ पाने की जरूरत ही नही है। मानो ऐसे खोजने मे ही सब पाना सुधामय हो गया है। माधुर्य का कौन सन्यासी तुम लोगो को यह गान सिखा गया है। इच्छा होती है कि आँखो से देखना, कानो से सुनना सब मिटा दूँ—हृदय के भीतर जो अँधियारा कुजवन है, उदास उसीकी छाया मे चलती जाऊँ। तापस कुमारो, तुम लोगो को मैं क्या दे सकती हूँ, कहो? मेरे गले मे यह केवल रत्नो की माला है—यह कठिन हार तुम लोगो के कण्ठ को पीड़ा ही देगा। तुम लोग जिन फूलो की माला पहने हो वैसा कुछ भी मेरे पास नही है!

(प्रणाम करके बालकों का प्रस्थान। रोहिणी का प्रवेश)

सुदर्शना : मैंने अच्छा नही किया, रोहिणी, अच्छा नही किया! तुमसे पूरा व्यौरा सुनते भी अब मुझे लाज लग रही है। अभी-अभी हठात् समझ गई हूँ कि जो सबसे बडा पाना है वह छूकर पाना नही है। वैसे ही जो सबसे बड़ा देना है वह हाथो मे देना नहीं है। फिर भी तू कह क्या हुआ? बता!

रोहिणी : मैंने तो स्वय राजा के हाथो फूल दिये। किन्तु उन्होने कुछ समझा ऐसा तो नही जान पडा।

सुदर्शना : क्या कह रही है तू! उन्होने समझा नही?

रोहिणी : नही, अवाक् ताकते हुए पुतले की तरह बैठे रहे। कुछ समझे नही यह पता न लग जाय, इसीलिए कुछ बोले नही।

सुदर्शना : छि छि छि! मैंने जैसी प्रगलभता दिखाई वैसा ही मुझे दण्ड मिला। तू मेरे फूल लौटा क्यो नही लाई?

रोहिणी : लौटा कैसे लाती? उनके पास थे काची के राजा, वह बडे चतुर है—देखते ही सब समझ गए। मुडकर मुस्कराकर बोले—'महाराज, महिषी सुदर्शना आज वसन्त सखा के पूजा-पुष्पो से महाराज की अभ्यर्थना कर रही है।' सुनकर वह हठात् सचेत होकर उठ बैठे। बोले, 'मेरा राज-सम्मान परिपूर्ण हुआ।' मै

लज्जित होकर लौट रही थी कि इतने मे काञ्ची के राजा अपने हाथो महाराज के गले से यह मुक्ता-माला उतारकर मुझसे बोले—'सखी, तुम जो सौभाग्य वहन करके लाई हो उसके सम्मुख हार मानकर महारानी की कण्ठमाला तुम्हारे हाथो मे आत्म-समर्पण करती है।'

सुदर्शना बात काची के राजा को समझकर कहनी पड़ी ? आज की पूर्णिमा के उत्सव ने मेरा अपमान बिलकुल उघाड़कर रख दिया ! अच्छा, जो हुआ सो हुआ ; तू जा, मैं जरा एकान्त चाहती हूँ। (रोहिणी का प्रस्थान) आज मेरा दर्प इस बुरी तरह चूर्ण हुआ है फिर भी उस मोहन रूप से अपने मन को नही फिरा पाती। मेरा अभिमान टूट गया—हार, सर्वत्र मेरी हार—मुँह फेर लूं इतनी भी शक्ति नही रही। केवल इच्छा होती है कि वह माला रोहिणी से माँग लूं। किन्तु वह क्या समझेगी ! रोहिणी !

रोहिणी : (प्रवेश करके) क्या है, महारानी !

सुदर्शना : आज के काम से तू क्या पुरस्कार पाने योग्य थी ?

रोहिणी : आपके निकट न हूं, लेकिन जिन्होने दिया है उनसे तो पा सकती थी।

सुदर्शना : नही नही, इसको देना नही कहते, यह जबरदस्ती लेना है।

रोहिणी : फिर भी राजकण्ठ से अनादृत माला का भी अनादर कर सकूं इतनी मेरी हिम्मत नही है !

सुदर्शना अवज्ञा की यह माला तेरे गले में देखते मुझे अच्छा नही लगता। ला, वह उतारकर मुझे दे दे। उसके बदले मे अपने हाथ का कंगन तुम्हे देती हूँ—यह तू ले जा !

(रोहिणी का प्रस्थान)

हार हुई, मेरी हार हुई। यह माला तोड़कर फेक देना उचित था, लेकिन मैं वैसा नहीं कर सकी। यह काँटो की माला की तरह मुझे बीध रही है फिर भी इसे त्याग नही सकी। उत्सव देवता के हाथो यही क्या मैंने पाया—यही अगौरव की माला !

५

कुंज द्वार

(दादा और कुछ लोग)

दादा : क्यो भई, हुआ कुछ ?

पहला आदमी . खूब हुआ दद्दा ! देखो न, मुझे एकदम लाल रँग दिया। कोई वाकी नही बचा ! !

दादा : सच ? राजाओ को भी रँग दिया क्या !

दूसरा . अरे नहीं, वहाँ घुसने ही किसने दिया। सब घेरा डालकर खड़े हुए थे।

दादा : हाय-हाय, तव तो बुरी हुई तुम्हारे साथ। थोड़ा-सा रंग भी उन पर न डाल सके ? जबरदस्ती घुस जाते।

तीसरा : दद्दा, उनको रँगने के लिए दूसरा रग चाहिए ! वह रंग उनको आँखो मे होता है, उनके प्यादो की पगड़ियो पर होता है। तिस पर उनकी नगी तलवारों की जो भगिमा देखी—लगा कि हम लोगों ने ज़रा और अन्दर घुसने की कोशिश की कि वे एकदम चरम लाल रग से रँगी जायँगी।

दादा : तब तो अच्छा किया कि अन्दर नही घुसे। उन सबको पृथ्वी पर निर्वासन का दण्ड मिला हुआ है और उनसे दूरी बनाये रखकर ही चलना होगा। अव तुम लोग घर जा रहे हो ?

तीसरा . हाँ दद्दा, रात तो ढाई पहर जा चुकी। तुम तो भीतर ही नहीं गये।

दादा . अभी भी मेरी पुकार नही हुई—अभी भी द्वार पर ही हूँ।

दूसरा : तुम्हारे यह शम्भू सुँघन वगैरा सब कहाँ गये !

दादा : उन्हे नीद आ रही थी—सोने गये है।

पहला : हाँ वह क्या तुम्हारी तरह ऐसे जागते खड़े रह सकते हैं ?

(प्रस्थान। बाउलों के दल का प्रवेश)

गान—१५

जो काला था, जो धौला था,

सब तुम्हारे रंग मे रँगकर लाल हो गया—

जैसे तुम्हारे चरणों का वर्ण है—
उनसे और भेद न रहा।
वसन-भूषण लाल हुए, शयन-स्वप्न लाल हुए
देखो कैसा हो गया सब—
जैसे झूमता हुआ लाल कमल !

दादा : वाह भाई खूब खेल जमा।

बाउल : बहुत अच्छा ! सब लाल-ही-लाल। केवल आकाश का चाँद ही फाँकी दे गया—सफेद ही रह गया।

दादा : बाहर से तो ऐसा दीखता है जैसे बड़ा भलामानस है। अगर उसकी सफेद चादर उतारकर देख सकते तो उसकी चालाकी पकड़ पाते। आज चुपके-चुपके वह जो रंग बरसाता रहा है, मैं यहाँ खड़े-खड़े ही सब देखता रहा हूँ। फिर भी अपने-आप अब भी कैसा उजला बना हुआ है !

गान—१६

ओ मेरे प्रिय, तुम्हारे साथ मेरा प्राणों का खेल है।
मेरे प्राण उतावले हैं आज, खेल में क्या हार मान जायेंगे ?
केवल तुम्हीं क्या मुझे ऐसे रँगकर भाग जाओगे ?
तुम जान-बूझकर पकड़ाई देकर मेरा रंग अपने वक्ष पर लेना—
मेरे हृदय-कमल के लाल रेणु से तुम्हारा उत्तरीय लाल हो जाये !

(प्रस्थान। स्त्रियों के दल का प्रवेश)

पहली स्त्री : मैया री, जहाँ देख गई थी अभी तक वहीं खड़ा है !

दूसरी स्त्री : हमारी वसन्त पूर्णिमा का चाँद, इतनी रात हो गई तब भी जरा-सा भी पश्चिम की ओर नही सरका !

पहली : क्यों री, हमारा अचचल चाँद किसकी राह देखता हुआ खड़ा है ?

दादा : जो उसे राह पर चलायगी उसीके लिए।

तीसरी : घर छोड़कर अब बाहर की कोई खोजी जायगी क्या ?

दादा : हाँ भाई, मन सत्यानाश के लिए ही छटपटा रहा है !

गान—१७

मै अपना सब-कुछ लेकर बैठा हूँ सर्वनाश की आशा में।
मैं उनकी राह देख रहा हूँ जो राह चलते को मँझधार में डुवा देता है।

दूसरी : रास्ते पर लगा देने की शक्ति तो हम लोगो मे नही है, रास्ता छोडकर चलना ही अच्छा है। जो खुद पकड़ मे नही आता उसे पकड़ाई देने से क्या लाभ !

दादा · उसे पकड़ाई देने पर पकडे जाना और छुटकारा पाना सब एक ही है।
जो दिखाई नहीं देता पर देख जाता है, ओट से प्यार करता है।
उसी गम्भीर के गोपन प्रेम में मेरा मन डूबा हुआ है।

(स्त्रियों के दल का प्रस्थान। नर्तक दल का प्रवेश)

दादा : हे भाई, रात तो आधी से अधिक पार हो गई, लेकिन मन का नशा तो अभी कम होता नही दीखता ! तुम लोग तो घर जा रहे हो—अपना अन्तिम नाच नाचते जाओ !

गान—१८

मुझे चक्कर आ गया है तुम्हारे पीछे-पीछे नाचते-नाचते, ता धिन ता धिन !
तुम्हारे ताल पर मेरे चरण हैं, कौन क्या कहता है मै सुन नहीं पाता,
तुम्हारे गान से मेरे प्राणों में कोई जो पागल था वह जग उठा है, ता धिन-ता धिन !
मेरे लाज के और साज के बन्धन खुल गए, भजन-साधन रह गए।
नाच के तीव्र वेग के झोंके से सब चिन्ता उड़ गई, ता धिन ता-धिन !

(नर्तक दल का प्रस्थान । सुरगमा का प्रवेश)

सुरंगमा : अब तक क्या कर रहे थे, दद्दा ?

दादा : द्वार पर अपने काम पर था ।

सुरगमा · वह काम तो समाप्त हुआ । अब तो कोई भी नही है सब चले गए ।

दादा . तो मै भीतर चलूँ ।

सुरगमा · वहाँ बाँसुरी बज रही है, अब कान लगाने से पता लग सकेगा ।

दादा हाँ, जब सब लोग ताड के पत्ते के अपने-अपने भोपू बजा रहे थे तब तो बडा हल्ला था ।

सुरगमा · उत्सव मे भोपू की व्यवस्था भी तो उन्होंने कर रखी थी ।

दादा · उनकी बाँसुरी किसी दूसरे के बाजे को दबाती नही । नही तो लज्जा के मारे और सबकी तान बन्द हो जाती !

सुरगमा : सुनो दद्दा, आज इस उत्सव मे भीतर-ही-भीतर बराबर मुझे लगता रहा है कि अब राजा मुझे दु ख देगे ।

दादा . दु ख देंगे ?

सुरगमा हाँ दद्दा अब मुझे दूर भेज देंगे । बहुत दिन से मै पास हूँ यह उन्हे सहन नही होता है ।

दादा . तो अब काँटो-भरे बीहड़ वन के पार से तेरे हाथो पारिजात मंगवायँगे । उस दुर्गम पथ की खबर हमे कही से मिल जाय बस ?

सुरंगमा : तुम्हे अभी कही की खबर पाना बाकी है क्या ? राजा के काम से कौन से पथ से तुम नही चले ? हठात् कोई नई आज्ञा होने पर पथ खोजते हुए तो हमे भटकना होता है ।

गान—१९

किस कुंज मे फूल फूटे, किस गहन निभृत में,
सुरभि-चंचल दक्षिण वायु मतवाला हो गया—किस गहन निभृत में
क्लान्त वसन्त-निशा संगियों के साथ बाहर के आँगन में ढुकट गई
जहाँ उत्सवराज है उस भवन के भीतर कौन ले जायगा—
किस गहन निभृत में !

(सुरगमा का प्रस्थान । राजवेशी और काचीराज का प्रवेश)

काची : तुम्हें जैसे समझाया है ठीक वैसे ही करो। कोई भूल न हो।

राजवेशी : हाँ महाराज, यह मैंने देख लिया है। भूल नही होगी। रानी का प्रासाद करभोद्यान के वीच मे ही है।

काची : उसी उद्यान मे आग लगानी होगी। फिर अग्नि-काण्ड की गड़बडी के वीच काम सिद्ध करना होगा।

राजवेशी : कोई चूक नही होगी।

कांची : देखो जी भण्डराज, मुझे बार-वार यह लगता है कि हम व्यर्थ ही डरते-डरते चल रहे है। इस देश मे राजा तो है ही नही।

राजवेशी : इसी अराजकता को दूर करने की तो मेरी कोशिश है। साधारण लोगो के लिए असली या नकली एक राजा तो होना ही चाहिए। नही तो वडा अनिष्ट होता है।

काची : हे साधु महाशय, लोक-हित के लिए आपका यह आश्चर्यमय त्याग हम सवके लिए एक दृष्टात है। मै तो सोच रहा हूँ कि यह हित-कार्य मै ही करूँ। (सहसा बुढऊ दादा को देखकर) क्यो जी कौन हो तुम ? कहाँ छिपे हुए थे ?

दादा : छिपा हुआ नहीं था। वहुत क्षुद्र हूँ इसीलिए आपकी नज़र-तले नही पड़ा।

राजवेशी : यह अपना परिचय यह कहकर देते है कि यह राजा इनके वन्धु है। भोले लोग इनका विश्वास कर लेते है।

दादा : वुद्धिमानो का सन्देह तो किसी तरह मिटता ही नही, इसलिए हमारा काम तो भोले लोगो के साथ ही रहता है।

काची : तुमने हम लोगो की वात सुन ली है ?

दादा : आप लोग आग लगाने की सलाह कर रहे थे।

काची : तुम हमारे बन्दी हो, चलो शिविर मे।

दादा : तो आज जान पड़ता है कि इस रूप मे मेरी पुकार हुई !

काची : क्या वड़वडा रहे हो !

दादा : मैंने कहा, देश की ममता से किसी तरह छूट नही पा रहा था इसी-लिए शायद खीचकर अन्त:पुर मे ले जाने के लिए मुनीम का प्यादा आया !

काची यह आदमी क्या पागल है ?

राजवेशी : इसकी बात बिलकुल बेसिर-पैर की होती है—कुछ समझ में नही आती।

काची : जिसकी बात जितनी कम समझ मे आती है; भोले लोग उस पर उतनी ही अधिक भक्ति करते है। लेकिन हमारे सामने यह चालाकी नही चलेगी। हम सिर्फ़ साफ़ बात से मतलब रखते है।

दादा : जो आज्ञा महाराज ! मैं चुप होता हूँ।

६

करभोद्यान

रोहिणी : यह मामला क्या है, कुछ समझ मे नही आता।
(मालियों से) तुम लोग इतनी जल्दी में कहाँ चले जा रहे हो ?

पहला माली : हम लोग बाहर जा रहे हैं।

रोहिणी : बाहर कहाँ जा रहे हो ?

दूसरा माली : यह नही जानते। हमे राजा ने बुलाया है।

रोहिणी : राजा तो उद्यान मे ही है। कौन से राजा ?

पहला माली : यह तो नही कह सकते।

दूसरा माली : सदा से जिस राजा का काम करते आ रहे है वही राजा।

रोहिणी : तुम सब चले जाओगे ?

पहला माली : हाँ सब जायँगे। अभी जाना होगा। नही तो विपदा मे पडेगे।

(प्रस्थान)

रोहिणी : ये क्या कह रहे है, कुछ समझ नही पाई। मुझे डर लग रहा है। जैसे नदी का कगार टूटकर गिरने से पहले वन-जन्तु उसे छोड़कर भागते है वैसे ही सब भागे जा रहे है।

(कौशलराज का प्रवेश)

कौशल : तुम्हारे राजा और काचीराजा किधर गये हैं, जानती हो ?

रोहिणी : वे इसी उद्यान मे हैं, किन्तु कहाँ है यह कुछ नही जानती।

कौशल . उनकी मन्त्रणा ठीक समझ नही पा रहा हूँ। कांचीराज पर विश्वास करके अच्छा नही किया मैंने।

(प्रस्थान)

रोहिणी : राजाओ के वीच मे यह क्या मामला चल रहा है ? शीघ्र ही कुछ वुरा होने वाला है। मै उसमे तो नही फँस जाऊँगी !

अवन्तिराज : (प्रवेश करके) रोहिणी, राजा लोग सव कहाँ गये है जानती हो ?

रोहिणी · वे सव कौन कहाँ हैं यह बताना कठिन है। कौशलराज अभी-अभी इधर से गये है।

अवन्ती · कौशलराज की चिन्ता नही है। तुम्हारे राजा और काचीराज कहाँ है ?

रोहिणी : उन्हे तो वहुत देर से नही देखा।

अवन्ती .· काचीराज वराबर हम लोगो से कतराता रहा है। निश्चय ही धोखा देगा। इसमें पड़कर मैंने अच्छा नही किया। सखी, इस उद्यान से निकलने का मार्ग किधर है, जानती हो ?

रोहिणी : मैं तो नही जानती।

अवन्ती : ऐसा कोई नही है क्या जो रास्ता दिखा सके ?

रोहिणी : माली तो सव उद्यान छोडकर चले गए।

अवन्ती : क्यों चले गए ?

रोहिणी : उनकी वात अच्छी तरह समझ तो नही पाई। किन्तु उन्होने कहा कि राजा ने उन्हे तुरन्त उद्यान से चले जाने को कहा है।

अवन्ती : राजा ! कौन राजा !

रोहिणी : वे लोग ठीक-ठीक वता नही सके।

अवन्ती : यह तो अच्छी वात नही है। जैसे भी हो, यहाँ से निकलने का पथ ढूँढना ही होगा। और एक क्षण-भर भी यहाँ नही !

(प्रस्थान)

रोहिणी : सदा से इसी उद्यान में रहती आई हूँ, पर आज ऐसा लग रहा है जैसे यहाँ वँधी हुई हूँ और वाहर निकले विना निस्तार नही। राजा को देख पाती तो भी तसल्ली होती। परन्तु जव उन्हे रानी के फूल दिये थे तव वे तो मानो एक प्रकार से आत्म-विस्मृत थे और तव से वह मुझे केवल पुरस्कार ही दे रहे है।

इन अकारण पुरस्कारों से मेरा डर और भी बढ रहा है। इतनी रात मे पक्षी सब कहाँ उड़े जा रहे है ? यह सब हठात् इतने डर क्यो गये है ? अभी तो इनके उडने का समय नही हुआ है। रानी की पालतू हिरनी उधर कहाँ भागी जा रही है। चपला, चपला! मेरी पुकार उसने सुनी ही नही। ऐसा तो कभी नही होता। चारो दिशाएँ हठात् मतवाले की आंखो की तरह लाल हो उठी है। मानो चारो ओर असमय सूर्यास्त हो रहा हो। विधाता को आज यह क्या हो गया है। मुझे बडा डर लग रहा है। राजा कहाँ मिलेगे ?

७

रानी के प्रासाद का द्वार

राजवेशी : कांचीराज, यह आपने क्या किया ?

कांची : मैंने तो केवल इस प्रासाद के पास के हिस्से मे ही आग लगानी चाही थी, वह आग इतनी जल्दी ऐसे चारो ओर फैल जायगी यह तो मैंने सोचा भी नही था। इस उद्यान से निकलने का रास्ता किधर है, जल्दी बताओ !

राजवेशी : रास्ता किधर है यह तो मैं जानता ही नही। जो हमें यहाँ लाये थे उनमे से तो कोई दिखाई नही देता।

कांची : तुम तो इसी देश के रहने वाले हो—निश्चय ही रास्ता जानते होगे ?

राजवेशी : अन्त पुर के उद्यानो मे मैंने कभी प्रवेश नही किया।

काची : वह सब मै नही जानता। तुम्हे रास्ता बतलाना ही होगा। नही तो तुम्हे दो टुकड़े करके फेंक दूँगा।

राजवेशी : उससे प्राण तो निकल जायँगे; रास्ता निकलने का उपाय तो वह नही होगा।

काची : तब तू क्यो कहता फिर रहा था कि तू ही यहाँ का राजा है।

राजवेशी : मैं राजा नही हूँ, राजा नही हूँ (धरती पर लेटकर हाथ जोडता हुआ) कहाँ हो हमारे राजा, रक्षा करो ! मै पापी हूँ, मेरी रक्षा करो ! मै विद्रोही हूँ, मुझे दण्ड दो, लेकिन मुझे बचाओ !

काची : यों ही शून्य के सामने चिल्लाने से क्या लाभ ? तब तक रास्ता खोज निकालने का ही यत्न किया जाय।

राजवेशी : मैं तो यही पडा रहूँगा—मेरा जो होना होगा, वही होगा।

काची : वह नही होगा। अगर जलकर ही मरना होगा तो अकेला नही मरूँगा, तुमको साथ लूँगा।

(नेपथ्य से पुकार : 'बचाओ राजा, बचाओ ! चारो ओर आग लग गई !')

काची : अरे मूढ, उठ, और देर न कर !

सुदर्शना : (प्रवेश करती हुई) रक्षा कीजिए, राजा ! आग चारों ओर घेर रही है !

राजवेशी : राजा कहाँ है, मैं राजा नही हूँ।

सुदर्शना : तुम राजा नही हो !

राजवेशी : मैं भण्ड हूँ, पाखण्डी हूँ। (मुकुट धूल में फेककर) मेरा धोखा धूल मे मिल जाय।

(काचीराज के साथ प्रस्थान)

सुदर्शना : राजा नही है ? यह राजा नही है ? तब हे भगवान् हुताशन, मुझे भस्म कर दो ! मै तुम्हारे ही हाथ आत्म-समर्पण करूँगी। हे पावन, मेरी लज्जा, मेरी वासना, जलाकर राख कर दो !

रोहिणी : (प्रवेश करती हुई) रानी, उधर कहाँ जा रही है ! अन्त.पुर के चारो ओर आग धधक रही है, उसके भीतर न जाइए !

सुदर्शना : मैं उसीके भीतर प्रवेश करूँगी। वह मेरी ही मृत्यु की आग है।

(प्रासाद में प्रवेश)

८

अँधेरा कक्ष

राजा : कोई भय नही है। आग इस कक्ष तक नही पहुँचेगी।

सुदर्शना : भय तो मुझे नही है—लेकिन लज्जा ! लज्जा तो आग की भाँति मेरे साथ-साथ आ जाती है। मेरा सुख, मेरी आँखे, मेरा सारा हृदय उसमे झुलस रहा है !

राजा : वह दाह मिटने मे कुछ समय लगेगा !

सुदर्शना . वह कभी नही मिटेगा, कभी नही मिटेगा !

राजा : हताश मत हो, रानी !

सुदर्शना : तुमसे झूठ नही बोलूँगी, राजा—मैंने और किसी की माला गले मे डाल ली है।

राजा : वह माला भी तो मेरी है—नही तो वह माला कहाँ से ? वह मेरे ही कमरे से चुराकर ले आया।

सुदर्शना · किन्तु यह उसीके हाथ की दी हुई तो है। फिर भी तो मैं इसे फेंक नही सकी। जब चारो ओर आग मुझे घेरती हुई बढी आ रही थी तब एक बार सोचा था कि इस माला को आग मे फेंक दूँ। किन्तु फेंकी नही। मेरे पापी मन ने कहा, 'यही हार गले पहने जल मर !' तुम्हे बाहर खुले प्रकाश मे देखूँगी, यह सोचकर मै पतग-सी यह किस आग मे कूद पड़ी। मै मरती भी नही हूँ और वह आग भी नही है—कैसी ज्वाला है यह !

राजा : तुम्हारी साध तो पूरी हुई—मुझे तो आज देख लिया !

सुदर्शना : मैंने क्या तुम्हे ऐसे सर्वनाश के बीच देखना चाहा था ? क्या देखा यह भी नही जानती, पर हृदय अब भी थर-थर काँप रहा है।

राजा . कैसा देखा, रानी !

सुदर्शना . भयानक, वह भयानक है। वह स्मरण करते ही मुझे डर लगता है। काले, काले, काले हो तुम। मैंने केवल मुहूर्त-भर के लिए ताका था। तुम्हारे मुख पर आग की आभा पड़ रही थी—मुझे लगा जिस आकाश मे धूमकेतु उठता है उसी आकाश की तरह तुम काले हो ! तभी मैंने आँखें बन्द कर ली—और देख नही सकी। तूफान के बादल की तरह काले—कूलहीन समुद्र की तरह काले—जिसके तूफान पर सन्ध्या की लाली छा रही है !

राजा : मैंने तो तुम्हे पहले ही कहा था। जो पहले से ही इसके लिए

तैयार नही हुआ है वह हठात् मुझे देखकर सह नही सकता—मुझे विपत्ति समझता है और दम साधकर मेरे पास से भाग जाना चाहता है। ऐसा मैने कितनी बार देखा है। इसीलिए उस दु:ख से तुम्हें बचाकर धीरे-धीरे तुम्हे अपना परिचय देना चाहता था।

सुदर्शना : किन्तु पाप ने आकर सब भंग कर दिया। अब और तुमसे वैसे परिचय हो सकेगा यह मै सोच भी नही सकती।

राजा : होगा, रानी होगा। जिस कालेपन को देखकर आज तुम्हारा हृदय कॉप गया है उसी कालेपन से तुम्हारा हृदय स्निग्ध हो जायगा। नही तो मेरा प्रेम किस काम का !

गान—२०

मै रूप में तुम्हें नहीं भुलाऊँगा, प्यार मे भुलाऊँगा।
मै हाथ से द्वार नहीं खोलूँगा, गान से द्वार खुलवाऊँगा।
भूषणों से भरूँगा नहीं, फूलों से सजाऊँगा नहीं,
अपनी सुहाग की माला ही तुम्हारे गले पहनाऊँगा।
कोई नही जानेगा कि किस तूफ़ान का तरंग-दल नाच उठा है—
चॉद की तरह अलक्ष्य आकर्षण से प्राणो में ज्वार उठाऊँगा।

सुदर्शना : नही होगा वह, नही होगा केवल तुम्हारे प्यार से क्या होगा। मेरे प्यार ने जो मुँह फेर लिया है। मुझे रूप का नशा जो लग गया है—वह नशा मुझे नही छोडेगा—उसने मानो मेरी दोनो आँखों में आग लगा दी है, मेरे स्वप्नो तक को चौंधिया दिया है। अब मैंने सब बात तुमसे कह दी। अब मुझे दण्ड दो।

राजा : दण्ड तो आरम्भ हो चुका।

सुदर्शना : किन्तु तुम मेरा त्याग नही करोगे तो मै तुम्हारा त्याग कर दूंगी।

राजा : जहाँ तक चेष्टा करके देख लो !

सुदर्शना : कुछ चेष्टा नही करनी होगी—तुम्हें मै सह नही सकती। भीतर-ही-भीतर तुम्हारे ऊपर क्रोध आ रहा है। क्यों तुमने मुझे—पर नही जानती मुझे तुमने क्या किया है। किन्तु तुम ऐसे क्यो हो ?

क्यो मुझे लोगो ने कहा था कि तुम सुन्दर हो। तुम तो काले, इतने काले हो—मुझे तुम कभी अच्छे नही लगोगे। जिसे मैं प्यार करती हूँ उसे मैने देखा है—नवनीत-सा कोमल, सिरस के फूल-सा सुकुमार, तितली-जैसा सुन्दर !

राजा . वह मरीचिका-सा मिथ्या है और बुलबुले-सा शून्य।

सुदर्शना · हो, लेकिन मैं नही जानती, तुम्हारे पास खड़ी भी नही हो सकती। मुझे यहाँ से जाना ही होगा। तुमसे मिलना—मेरे लिए नितान्त असम्भव है। यह मिलन मिथ्या होगा—मेरा मन दूसरी ओर जायगा।

राजा . थोड़ी-सी भी चेष्टा नही करोगी ?

सुदर्शना : कल से चेष्टा कर रही हूँ—किन्तु जितनी भी चेष्टा करती हूँ उतना ही मन और विद्रोही हो उठता है। तुम्हारे पास रहने से इसकी घृणा निरन्तर मुझे चोट पहुँचाती रहेगी कि मैं अशुच हूँ, मै असती हूँ। इसीलिए मैं दूर चली जाना चाहती हूँ। इतनी दूरी, जहाँ मुझे फिर तुम्हे याद ही न करना पडे।

राजा : अच्छा तुम जितनी दूर हो सके उतनी ही दूर चली जाओ !

सुदर्शना . तुम हाथ बढ़ाकर रास्ता नही रोकते इसीलिए तुम्हारे पास से भाग जाने मे भी इतनी दुविधा होती है। तुम झोटा पकड़कर खीचकर जबरदस्ती क्यो नही मुझे रोकते। तुम मुझे मारते क्यों नही ? मारो, मारो, मुझे मारो ! तुम मुझे कुछ कहते नही, यह मुझे और भी असह्य लगता है।

राजा . मैं कुछ नही कह सकता, यह तुमसे किसने कहा।

सुदर्शना : ऐसे नही, ऐसे नही, चिल्लाकर कहो, वज्र की तरह गरजकर कहो। मेरे कानो मे पड़ने वाली और सब बाते डुबाकर कहो—मुझे इतनी आसानी से छोड मत दो ! जाने मत दो !

राजा : छोड़ तो दूँगा, किन्तु जाने न दूँगा।

सुदर्शना : जाने नही दोगे, मैं जाऊँगी ही।

राजा . अच्छा, जाओ !

सुदर्शना : देखो, तब मुझे दोप मत देना ! तुम मुझे जबरदस्ती पकड़कर रख सकते थे। किन्तु तुमने नही रखा। तुमने मुझे बाँधा नही—

मैं चली। अपने प्रहरियो को आज्ञा दो मुझे रोके।

राजा : कोई नही रोकेगा। आँधी के सामने छिन्न मेघ-जैसे बिना बाधा के चले जाते है वैसे तुम भी अबोध चली जाओगी।

सुदर्शना : वेग धीरे-धीरे ही बढ रहा है—अब लंगर टूटा। शायद डूब जाऊँगी, किन्तु फिर लौटकर नही आऊँगी।

(तेजी से प्रस्थान। सुरंगमा का प्रवेश और गान)

गान २१

मेरे भय पर आघात करो, हे भीषण !
कठोर होकर मेरे मन को अपने चरणों पर नत करो !
मै दीवार से घिरे नित्य कर्म की बंधी हुई हूँ,
साज के आभरण मुझे नित्य बाँध लेते है,
आओ, हे आकस्मिक, चारों ओर से घेरकर,
निमिष-भर में इस जीवन को मुक्ति पथ पर उड़ा दो !
उसके बाद प्रकाशित हो जायँ तेरी उदार सहास आँखें—
तेरा अभय शांतिमय सनातन स्वरूप।

सुदर्शना : (पुनः प्रवेश करके) राजा, राजा !

सुरंगमा . वे चले गए है।

सुदर्शना . चले गए है। अच्छी बात है। तब तो उन्होने मुझे बिलकुल छोड़ दिया। मैं लौटकर आई, किन्तु उन्होने प्रतीक्षा नही की। चलो अच्छा ही हुआ—तो अब मैं मुक्त हूँ। सुरगमा, मुझे रोकने के लिए क्या उन्होने तुम्हे कहा था।

सुरंगमा · नही, उन्होने कुछ नही कहा।

सुदर्शना . कहते भी क्यो। कहने की तो बात नही है, तो मैं मुक्त हूँ। अच्छा सुरगमा, मैंने सोचा था कि एक बात राजा से पूछूँगी, किन्तु बात मुँह मे अटक गई। बता, बन्दियों को क्या उन्होने प्राण-दण्ड दिया है।

सुरगमा : प्राण-दण्ड ? हमारे राजा तो कभी विनाश के द्वारा शान्ति नही देते।

सुदर्शना : तो फिर उनका क्या हुआ !

सुरगमा उनको उन्होने छोड दिया है। काचीराज हार मानकर देश लौट गए है।

सुदर्शना : सुनकर जान मे जान आई।

सुरंगमा : रानी, आपके निकट मेरी प्रार्थना है।

सुदर्शना . तू क्या समझती है कि प्रार्थना मुँह से कहकर बतानी होगी। राजा से आज तक जो भी आभरण मैने पाये हैं सब तुझे ही दे जाऊँगी। ये अलकार अब मुझ पर नही सोहते।

सुरगमा · रानी-माँ, मै जिनकी दासी हूँ उन्होने मुझे निराभरण रखकर ही सजाया है। वही मेरा अलकार है। लोगो के सामने जिस पर गर्व कर सकूँ ऐसा कुछ उन्होने नही दिया।

सुदर्शना तब तू क्या चाहती है ?

सुरंगमा मै आपके साथ जाऊँगी।

सुदर्शना . क्या कहती है तू ? अपने प्रभु को छोडकर दूर जायगी यह कैसी प्रार्थना है।

सुरगमा . दूर नही रानी-माँ, आप विपद् की ओर जा रही है तब वह भी पास ही रहेगे।

सुदर्शना . पागलो की तरह बकवास मत कर ! मैने रोहिणी को साथ ले जाना चाहा था पर वह नही मानी। तू किस साहस से जाना चाहती है।

सुरंगमा : साहस मुझमे नही है, शक्ति भी मुझमे नही है। किन्तु मै चलूँगी— साहस अपने-आप आयगा—शक्ति भी हो जायगी।

सुदर्शना नहीं, तुझे मैं नही ले जा सकती—तेरे पास रहने से मुझे बड़ी ग्लानि होगी—वह मै नही सह सकूँगी।

सुरंगमा : रानी-माँ, आपका भला-बुरा सब मैंने अपने ऊपर ओढ लिया है। मुझे पराई बनाकर आप नही रख सकेंगी—मैं जाऊँगी ही।

गान—२२

तुम्हारे प्रेम में मै सभी की कलकभागी होऊँगी।
सभी दागों से दागी होऊँगी।

तुम्हारे पथ के काँटे चुनूँगी, तुम्हारी धूल की सेज पर
अपना आँचल बिछाऊँगी, तुम्हारे अनुराग में पगकर।
मैं विधान मानती हुई शुचि आसन लिये-लिये न फिरूँगी;
जिस पंक में तुम्हारे चरण पड़ेंगे, उसीकी छाप वक्ष पर लूँगी !

९

सुदर्शना के पिता कान्यकुब्ज-राज और मन्त्री

कान्यकुब्ज : उसके आने से पहले ही मुझे सब खबर मिल गई।

मन्त्री : राज-कन्या नगर के बाहर नदी-तट पर खड़ी हैं। उन्हे अभ्यर्थना-पूर्वक लाने के लिए लोक-जन भेज दूँ।

कान्यकुब्ज : हतभागिनी स्वामी का त्याग करके आ रही है, अभ्यर्थना करके उसकी इस लज्जा की घोषणा करूँगा ? अन्धकार होने दो। पथ पर जब कोई न रहेगा तब वह छिपकर आ जायगी।

मन्त्री : महल में उसके रहने की व्यवस्था कर दी जाय।

कान्यकुब्ज : कुछ भी नही करना होगा। वह अपनी इच्छा से ही एकेश्वरी रानी का अपना पद छोड़कर आई है—यहाँ राजमहल मे उसे दासी के काम पर नियुक्त होकर रहना होगा।

मन्त्री : उसके मन को बहुत क्लेश होगा।

कान्यकुब्ज : उस कष्ट से उसे बचाने की चेष्टा करूँ तो पिता नाम के योग्य न रहूँगा।

मन्त्री : जैसा आपका आदेश होगा वैसा ही किया जायगा।

कान्यकुब्ज : वह मेरी कन्या है यह बात किसी तरह प्रकट न होने पाये—नही तो बडा भारी अनर्थ होगा।

मन्त्री : महाराज, अनर्थ की आशका क्यो करते है।

कान्यकुब्ज : नारी जब अपनी प्रतिष्ठा से भ्रष्ट होती है तब संसार मे वह भयकर विपदा बनकर दिखाई देती है। तुम जानते नही आज अपनी इसी कन्या से मुझे कितना डर लग रहा है—वह अपने साथ शनि को लेकर मेरे घर आ रही है।

१०

अन्तःपुर

सुदर्शना : जा, जा सुरंगमा तू जा। मेरे भीतर गुस्से की एक आग जल रही है। मै किसी की नही सह सकती—तू ऐसी शान्त वनी रहती है। इससे मुझे और गुस्सा आता है।

सुरंगमा : किस पर गुस्सा करती हो, देवी !

सुदर्शना : यह मैं नही जानती—किन्तु मेरी इच्छा होती है, सव-कुछ जलकर राख हो जाय। इतनी वडी रानी का पद क्षण-भर मे ठुकराकर जो चली आई सो क्या ऐसे कोने में छिपकर झाड़ू-वुहारी करने के लिए। कही आग नही लग जायगी ? धरती नही काँप उठेगी ? मेरा पतन क्या हरसिंगार के फूल की तरह झर जाना भर है ? वह क्या नक्षत्र के पतन की तरह अग्निमय होकर दिग्दिगंत को चीर नही देगा !

सुरंगमा : दावानल जल उठने से पहले घुमड़-घुमड़कर धुँधुआता रहता है। अभी समय नही हुआ।

सुदर्शना : रानी की महिमा को धूल में मिलाकर मैं बाहर चली आई। और कोई नही है जो इसमे मेरी वरावरी कर सके। अकेली—मैं अकेली हूँ। मेरे इतने वड़े त्याग को ग्रहण कर लेने के लिए कोई क्या एक पाँव भी नही वढायगा ?

सुरंगमा : अकेली आप नही हैं—अकेली नही है।

सुदर्शना : सुरगमा, तुमसे मैं सच कहती हूँ, मुझे पाने के लिए उसने महल मे आग लगाई थी। इस पर भी मै क्रोध नही कर सकी—भीतर-ही-भीतर आनन्द से मेरा हृदय कॉप उठा था। इतना वड़ा अपराध, इतना वडा साहस। उसी साहस ने मुझमे भी साहस जगा दिया, उसी आनन्द में मैं अपना सव-कुछ ठुकराकर चली आ सकी। किन्तु यह सब क्या केवल मेरी कल्पना थी ? आज कही उसका कोई चिह्न क्यो नही दीखता ?

सुरंगमा : आप जिसकी वात मन-ही-मन सोचती है, आग उसने नही लगाई थी—आग लगाई थी काचीराज ने।

सुदर्शना : भीरु ! डरपोक ! ऐसा मनमोहक रूप—किन्तु उसके भीतर मनुष्य नही था। ऐसे अपदार्थ को लेकर अपने साथ कितना बड़ा धोखा किया मैने ! उफ कितनी लज्जा ! लेकिन सुरगमा, तेरे राजा को क्या यह उचित नही था कि अभी भी मुझे लौटा ले जाने के लिए आते ? (सुरगमा उत्तर नही देती) तू सोचती है कि मै लौट जाने के लिए अधीर हो उठती हूँ ? कभी नही ! राजा के आने पर भी मै लौटकर नही जाती। किन्तु उन्होने एक बार रोका तक नही—चले जाने के लिए द्वार सब खुले ही रहे। और बाहर का नंगा सूखा रास्ता—क्या मुझ रानी के लिए उसे भी कोई वेदना नही हुई ! वह भी तेरे राजा की तरह ही कठिन था—राह का दीनतम भिखारी उसके लिए जैसा था मै भी वैसी ही थी। तू चुप क्यो रह गई ? बोल न, तेरे राजा का यह कैसा व्यवहार है ?

सुरंगमा : यह तो सभी जानते है—हमारे राजा निष्ठुर है—कठिन है। उन्हे क्या कभी कोई विचलित कर सका है ?

सुदर्शना : तब तू उन्हे दिन-रात क्यों पुकारती रहती है !

सुरंगमा : वह सदैव ऐसे ही पर्वत की भाँति कठिन बने रहे—मेरे होने से मेरी प्रार्थनाओ से वह ज़रा भी डगमग न हो ! मेरा दु.ख मेरा ही रहे, उस कठिन की ही सदा जय हो !

सुदर्शना : सुरंगमा, देख तो, खेतो के पार पूर्व दिशा मे मानो धूल उड़ रही है।

सुरंगमा : हाँ, ऐसा ही दीखता है।

सुदर्शना : वह देख, रथ की ध्वजा-सी नही दीखती ?

सुरंगमा · हाँ, ध्वजा ही तो है।

सुदर्शना : तब तो आ रहे है। तब तो आए।

सुरंगमा : कौन आ रहे है ?

सुदर्शना . और कौन ? तेरे राजा। कैसे रह सकते थे ? इतने दिन चुप बैठे रहे यही अचरज है।

सुरगमा : नही, यह हमारे राजा नही है।

सुदर्शना : है कैसे नही ? तू जैसे सब जानती है। ऐसे ही बड़े कठोर है तेरे राजा, किसी तरह विचलित ही नही होते ! देखूँ कैसे नही विचलित

होते। मै जानती थी कि दौडे आयँगे। किन्तु याद रख सुरगमा, मैने उन्हे कभी नही बुलाया। तेरे राजा कैसे मेरे सामने हार मानते है, अब तू ही देख लेना। सुरगमा, जा एक बार बाहर जाकर देख आ जरा।

(सुरंगमा का प्रस्थान)

राजा के आकर मुझे बुलाने से ही क्या मैं जाऊँगी ? कभी नहीं। मै नही जाऊँगी, नही जाऊँगी।

(सुरंगमा का प्रवेश)

सुरंगमा : देवी, यह हमारे राजा नही है।

सुदर्शना नही हैं ? सच कह रही है तू ! अब भी मुझे लेने नही आये ?

सुरगमा : नही, हमारे राजा ऐसे धूल उड़ाते नही ,आते। वह कब आते हैं। इसकी किसी को आहट भी नही मिलती।

सुदर्शना · तब यह शायद—

सुरगमा : काचीराज के साथ वही आया है।

सुदर्शना : उसका नाम क्या है, जानती है ?

सुरंगमा . उसका नाम है सुवर्ण।

सुदर्शना . तब तो वही आ रहा है। मै सोचती थी मैं मानो कूड़े की तरह बाहर फेक दी गई हूँ और मुझे कोई नही लेगा—किन्तु मेरा वीर तो मेरा उद्धार करने आ रहा है ! तू क्या सुवर्ण को जानती थी ?

सुरंगमा : मैं जब बाप के घर थी तब जुआरियो के दल मे वह—

सुदर्शना . नही, नही, मैं उसकी कोई बात तेरे मुख से नही सुनना चाहती ! वह मेरा वीर है, वह मेरा बचाने वाला है, उसका परिचय मैं अपने-आप पाऊँगी। लेकिन सुरंगमा, तेरे राजा कैसे है, सोच तो ! इस हीनता से भी मेरा उद्धार करने नही आये। मुझे अब और दोष नहीं दे सकेगी। मै यहाँ दिन-रात दासीगिरी करती हुई चिरकाल तक उसकी प्रतीक्षा करती हुई न बैठ सकूँगी। तेरे-जैसी दीनता दिखाना मेरे बस का नही है। अच्छा सच बता, तू अपने राजा को बहुत प्यार करती है ?

(सुरंगमा का गाना)

गान—२३

मैं केवल तुम्हारी दासी हूँ।
यह बात कैसे जबान पर लाऊँ कि तुम्हें प्यार करती हूँ ?
गुण मुझमें होता तो (संसारमें) आदर भी मिलता—
मैं तो बिना दाम बिकी हुई श्रीचरणो की सेविका हूँ।

११

शिविर

कांची : (कान्यकुब्ज के दूत से) अपने राजा से जाकर कहो कि हम उनका आतिथ्य ग्रहण करने नही आये। हम राज्य को लौट जाने के लिए बिलकुल तैयार है। केवल यहाँ की दासीशाला से सुदर्शना का उद्धार करके उसे ले जाने के लिए रुके है।

दूत : महाराज, स्मरण रखिए कि राज-कन्या अपने पितृगृह में ही है।

कांची . कन्या जब तक कुमारी रहती है तभी तक पितृगृह मे उसका आसरा रहता है।

दूत · किन्तु पति-कुल के साथ भी तो उसका सम्बन्ध होता है।

कांची : वह सम्बन्ध छोड़कर ही वह आई है।

दूत · जीवन रहते वह सम्बन्ध तोड़ा नही जा सकता। बीच-बीच में झटके लगते रहते है, किन्तु टूट तो वह कभी सकता ही नही।

कांची : इसके लिए संकुचित होने की जरूरत नही है। क्योकि उनके स्वामी स्वयं उन्हे लौटा ले जाने के लिए आये है। राजन् !

सुवर्ण : क्या, महाराज !

कांची : आपकी रानी के पितृगृह में दासी नियुक्त किये जाने पर आप क्या स्थिर रह सकते है ?

सुवर्ण : ऐसा कापुरुष मै नही हूँ।

दूत · यह यदि आप लोगों की परिहास की बात न हो तो फिर राजभवन

मे आतिथ्य स्वीकार करने में दुविधा किस बात की।

कांची : राजन् !

सुवर्ण : क्या महाराज !

काचः : आप क्या अपनी रानी को भीख में मांगकर घर ले जायेंगे ?

सुवर्ण : ऐसा कभी हो सकता है ?

दूत : तब आपकी क्या इच्छा है ?

काची : यह भी क्या बताना होगा।

सुवर्ण : वही तो। वह तो आप समझ ही गाते हैं।

काची : महाराज अगर सहज ही अपनी कन्या को हम लोगो के हाथ समर्पित नही करेंगे तो क्षत्रिय-धर्म के अनुसार हम बलपूर्वक उन्हें ले जायेंगे, यही हमारी अन्तिम बात है।

दूत : महाराज, हमारे राजा को भी क्षत्रिय-धर्म का पालन करना होगा। वह तो स्पर्धा की बात सुनकर ही आपको कन्या नहीं सौंप सकेंगे।

काची : ऐसा उत्तर सुनने के लिए तैयार होकर ही हम आये हैं, यह जाकर अपने राजा से कह दो !

(दूत का प्रस्थान)

सुवर्ण : कांचीराज, यह तो दुःसाहस हो रहा है।

काची : वही अगर न करना हो तो ऐसे काम मे हाथ लगाने का सुख क्या ?

सुवर्ण : कान्यकुब्जराज से तो डर नही भी हो सकता है—किन्तु—

काची : किन्तु से डरने चले तो फिर दुनिया में निरापद जगह ढूंढे से भी न मिलेगी !

सुवर्ण : सच कहूँ, महाराज, यही किन्तु ही दिखाई नही देते; किन्तु उनसे बच भागने की जगह संसार मे नही है।

कांची : अपने मन मे डर हो तभी इस किन्तु का बल और बढ़ जाता है।

सुवर्ण : आप ही सोच देखिए उद्यान मे क्या काण्ड हुआ था। आपने पूरी नाकाबन्दी करके ही तो काम किया था, उसमें भी न जाने

कहाँ से आकर किन्तु घुस गया ! राजा तो वही हैं; मैने सोचा था उन्हें नही मानूंगा; किन्तु न मानने का कोई उपाय ही नही रहा।

कांची : भय से मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है। तब वह उल्टा-सीधा समझ लेता है। उस दिन जो घटित हुआ वह तो अकस्मात् हुआ।

सुवर्ण : आप जिसको अकस्मात् कहते है मै उसीको किन्तु कहता हूँ—किसी तरह उससे बचकर चल सकें तभी बचाव हो सकता है।

(सैनिक का प्रवेश)

सैनिक महाराज, कौशलराज, अवन्तिराज और कलिग के राजा सैन्य लेकर आ रहे है, ऐसा सवाद मिला है।

(प्रस्थान)

काची : जिसका भय था वही हुआ। सुदर्शना के पलायन का समाचार फैल गया है। अब सभी एक साथ जोड-तोड़ करने लगेंगे, जिससे सभी की चेष्टा व्यर्थ हो जायगी।

सुवर्ण : अब छोड़िए महाराज, ये सब अच्छे लक्षण नही है। मुझे तो निश्चय है कि यह भेद की बात हमारे राजा ने ही सर्वत्र फैला दी है।

काची : क्यो इससे उनको क्या लाभ ?

सुवर्ण · यही कि लालची लोग आपस में मार-काट नोच-खसोट करते रहेगे और बीच मे जिनका धन है वह स्वयं ले जायँगे।

काची : अब अच्छी तरह समझ रहा हूँ कि तुम्हारे राजा क्यो कभी किसी के सामने नही आते। डर के मारे सब लोग सर्वत्र उन्हे देखते रहेगे, यही उनकी चाल है। किन्तु मै अब भी कहता हूँ कि तुम्हारे राजा आदि से अन्त तक निरा धोखा है।

सुवर्ण . किन्तु महाराज, मुझे छोड़ दीजिए ?

काची : तुम्हे नही छोड़ सकता—इस काम में तो तुम्हारी विशेष जरूरत है।

(सैनिक का प्रवेश)

सैनिक : महाराज, विराट, पाचाल और विदर्भ के राजा भी आये है। उन्होंने नदी के उस पार शिविर डाला है।

(प्रस्थान)

काची . आरम्भ मे हम सबको मिलकर काम करना होगा। पहले कान्य-कुब्ज के साथ युद्ध हो जाय फिर कुछ-न-कुछ उपाय किया जायगा।

सुवर्ण : उस उपाय मे अगर मुझे न घसीटे तो मैं निश्चिन्त हो सकता हूँ। मैं बहुत हीन व्यक्ति हूँ—मेरे द्वारा—

काची : देखो जी भण्डराज, उपाय चीज ही हीन है। सीढ़ी हो या रास्ता हो, पैर के नीचे ही रहता है। उपाय अगर उच्च श्रेणी का हो तो उसे काम मे लाते भी बहुत सोचना पडता है। तुम्हारे-जैसे आदमी से काम निकालने मे सुविधा यही है कि किसी तरह का पाखण्ड करने की आवश्यकता नही होती। नहीं तो अपने मन्त्री तक के साथ परामर्श करने में चोरी को भी लोक-हित कहे बिना सुनने मे अच्छा नही मालूम होता।

सुवर्ण : किन्तु मैंने तो देखा है कि मन्त्री महोदय बात का असली अर्थ ही समझ लेते है।

काची . इतना-सा भाषा-तत्त्व भी वह जानता तो उसे मन्त्री न बनाकर गोशाला का भार सौंपता! किन्तु चलूं राजाओं को एक बार मोहरों की तरह चला आऊँ—सभी अगर राजा की चाल चले तो शतरंज का खेल नही चलता!

१२

अन्त पुर

सुदर्शना . क्या युद्ध चल रहा है?

सुरगमा . हाँ, अब भी चल रहा है।

सुदर्शना : युद्ध मे जाने से पूर्व पिता ने आकर मुझसे कहा, तू एक जने के हाथ से छूटकर आई और सात जनो को साथ खीचती लाई। मेरी इच्छा होती है कि तेरे सात टुकडे करके इन जनो के बीच बॉट दूं। सचमुच पिता वैसा कर देते तो अच्छा होता।

सुरंगमा : क्या रानी ?

सुदर्शना : तेरे राजा मे यदि रक्षा करने की शक्ति होती तो निश्चिन्त बैठे रह सकते।

सुरंगमा : रानी,मुझे क्या कहती हो। राजा की ओर से उत्तर देने की शक्ति क्या मुझमें है ? वह उत्तर यदि देगे तो स्वयं ऐसा उत्तर देगे कि किसी को कुछ समझने को बाकी नही रहेगा और अगर नही देगे तो सभी को चुप रह जाना होगा। मैं जानती हूँ कि मैं कुछ नहीं समझती, इसीलिए कभी उनकी बातों का विचार करने नही बैठती।

सुदर्शना : युद्ध में किसने योग दिया है, बताओ ?

सुरंगमा : सातों राजाओ ने योग दिया है।

सुदर्शना और किसी ने नही ?

सुरंगमा : सुवर्ण ने योग से पहले ही छिपकर भागने की कोशिश की थी—काचीराज ने उसे शिविर मे बन्दी करके रखा है।

सुदर्शना : इससे तो मैं मर जाती तो अच्छा था ! किन्तु राजा, ओ राजा, मेरे पिता की रक्षा के लिए यदि तुम आ ही जाते तो तुम्हारा यश बढता ही, घटता नही ! मेरे अपराध का दण्ड उन्हे क्यों मिले ?

सुरंगमा : संसार मे हम कोई अकेले नही हैं रानी ! अच्छा-बुरा सबको बाँट-कर लेना होता है। इसीलिए तो डर होता है, नहीं तो अकेले को किसका डर ?

सुदर्शना : देख, सुरंगमा; मैं जब से यहाँ आई हूँ कई बार हठात् ऐसा लगता है मानो मेरी खिड़की के नीचे वीणा बज रही है।

सुरंगमा . होगा। हो सकता है कोई बजाता हो।

सुदर्शना : वहाँ बड़ा घना वन है—मै बाहर उझककर कई बार देखने की चेष्टा करती हूँ, किन्तु ठीक से कुछ देख नही पाती।

सुरंगमा : हो सकता है कोई पथिक छाया मे बैठकर विश्राम करता हो और वीणा बजाता हो।

सुदर्शना : हो सकता है। किन्तु मुझे याद आता है अपना वही महल का वातायन। सन्ध्या समय में सज-धजकर वहाँ खड़ी होती

थी और हमारे उस दीप-विहीन वास-गृह के अन्धकार मे से गान के वाद गान, तान के वाद तान फुव्वारे की फुहार की तरह उच्छ्वसित होती हुई मेरे सामने नाना लीला करती हुई विखर-विखर जाती थी ! वह गान ही तो न जाने किस अन्धकार के भीतर से आकर किस अन्धकार की ओर मुझे खीच ले जाता था !

सुरंगमा : आह,रानी कैसा अन्धकार था वह ! उसी अन्धकार की मैं दासी हूँ।

सुदर्शना . मेरे साथ तू वहाँ से क्यो चली आई ?

सुरंगमा . इसी दुलार की आशा मे कि हमारे राजा आकर हमे हाथ पकडकर लौटा ले जायँगे।

सुदर्शना : नही,नही, वे नही आयँगे—उन्होने हमको बिलकुल छोड़ दिया है। और छोड़ते भी कैसे नही ? मैंने कुछ कम अपराध तो नही किया।

सुरंगमा अगर वे छोड ही सकें तो फिर उनकी और जरूरत नही। वल्कि तब वे है ही नहीं। तब हमारा वह अन्धकार बिलकुल सूना है—उसके भीतर से कोई वीणा नही बजी—किसी ने पुकारा नही—सब धोखा है !

(दरवान का प्रवेश)

सुदर्शना . कौन हो तुम ?

दरवान मै इसी प्रासाद का दरवान हूँ।

सुदर्शना · क्या समाचार है, जल्दी वताओ !

दरवान . हमारे महाराज वन्दी हो गए हैं।

सुदर्शना · वन्दी हो गए हैं। हाय माँ वसुन्धरा ! (मूर्च्छा)

१३

वन्दी कान्यकुब्जराज, दूसरे राजगण और सुवर्ण

काची · राजगण, रणक्षेत्र का काम समाप्त हुआ ?

कलिंग : कहाँ समाप्त हुआ। वीरत्व का पुरस्कार ग्रहण करने से पहले

और भी एक बार वीरत्व का परिचय देना होगा।

कांची : महाराज, यहाँ तो हम लोग जयमाला नही लेने आए है—वरमाला लेने आए हैं।

विदर्भ : वह माला क्या जयलक्ष्मी के हाथ से नही लेनी होगी ?

कांची : नही, महाराज, पुष्पधनु के अन्त पुर मे ही वह माला गूँथी जा रही है। रक्त से सने हुए हाथो से उसे छीनना चाहने पर उसके फूल धूल मे बिखर जायँगे।

कलिंग : किन्तु महाराज पंचशर हम सातो के बीच निर्णय कैसे करेगे।

काची : यो तो फिर सात जनो के बीच निपटारा रणचण्डी भी नही कर सकती।

कौशल : कांचीराज, आपका प्रस्ताव क्या है साफ-साफ कहिए !

कांची : मेरा प्रस्ताव यही है कि स्वयवर-सभा मे राजकन्या जिसके गले मे माला डाल दे इस वसन्त की सफलता उसीको मिले।

विदर्भ : यह प्रस्ताव उत्तम है। मेरी इसमें सहमति है।

सभी राजा : हमारी भी सहमति है।

कान्यकुब्ज : राजगण, या तो मेरा वध कीजिए, या मैं द्वन्द्व युद्ध के लिए आपको ललकारता हूँ। आप आकर मुझसे लडिए—मुझे यो जीवित मृत्यु के हाथ न सौंपिये !

काची : आपकी कन्या पति-कुल त्याग आई है। उससे अधिक दुःख तो हम आपको नही दे रहे है। अभी मैने जो प्रस्ताव किया है इससे तो उनको सम्मान ही प्राप्त होगा।

कौशल : कल ही शुभ लग्न मे स्वयवर का समय निश्चित किया जाय।

कांची : यही ठीक है।

विदर्भ : तो हम लोग आयोजन मे लगे।

कांची : कलिंगराज, वन्दी अभी आपके आश्रय मे ही रहे।

(कांचीराज को छोड़कर अन्य राजाओं का प्रस्थान)

काची : अरे, भण्डराज !

सुवर्ण : क्या आदेश है ?

कांची : अब महारथी हट जायँगे। अब शिखण्डी को आगे करके बढना होगा।

सुवर्ण : महाराज की बात ठीक-ठीक समझ नहीं सका ।

कांची : वहाँ तुम्हे मेरा छत्रधर होकर बैठना होगा ।

सुवर्ण . किंकर इसके लिए प्रस्तुत है, किन्तु इससे महाराज का क्या उपकार होगा ।

कांची : अरे सुवर्ण, देखता हूँ कि तुम्हारी बुद्धि कम है इसीलिए तुममे अहकार भी कम है। रानी सुदर्शना ने तुम्हे किन आँखो से देखा है यह बात अभी तक तुम्हारे मन मे नही बैठी है। जो हो, राज-सभा मे वह छत्रधर के गले मे तो माला डाल नही सकेंगी, और अधिक दूर जाने के लिए भी उनका मन नही करेगा, इसलिए जैसे भी होगा उनकी माला मेरे ही राज-छत्र की छाया मे आकर पड़ेगी।

सुवर्ण : महाराज, मेरे सम्बन्ध मे यह जो सब निर्मूल कल्पना आप कर रहे है यह बडी भयानक कल्पना है। दुहाई है आपकी, मुझे इस मिथ्या विपत्ति-जाल मे न फँसाये—मुझे मुक्ति दें।

काची . काम पूरा होते ही तुम्हे मुक्ति देने मे क्षण-भर भी विलम्ब नही करूँगा। उद्देश्य सिद्ध हो जाने पर उसके उपाय को चिरस्मरणीय बनाकर कोई नही रखता ।

१४

वातायन

(सुदर्शना और सुरंगमा)

सुदर्शना : तो स्वयवर-सभा मे मुझे जाना ही होगा ? नही तो पिता की प्राण-रक्षा न हो सकेगी !

सुरगमा . काचीराज ने तो ऐसा ही कहा है।

सुदर्शना : राजा की यह बात क्या उचित है ? उन्होने क्या अपने मुंह से ऐसा कहा है।

सुरंगमा : नही उनका दूत सुवर्ण आकर कह गया है।

सुदर्शना धिक्, धिक्कार है मुझे !

सुरंगमा : साथ-ही-साथ कुछ सूखे फूल देकर मुझसे बोला, अपनी रानी से जाकर कहना, वसन्त-उत्सव की यह यादगार बाहर से जितनी मुरझाती जा रही है अन्तर मे उतनी ही नई होकर खिल रही है।

सुदर्शना : चुप रह, मुझे और मत जला !

सुरंगमा : वह देखिए सभा मे सब राजा बैठे हुए है। वह जिनके शरीर पर कोई आभरण नही है लेकिन मुकुट पर फूल-माला चिपटी हुई है, वही हैं कांची के राजा, सुवर्ण उनके पीछे छत्र धारण किये खड़ा है।

सुदर्शना : वही सुवर्ण है ! तुम सच कहती हो ?

सुरंगमा हाँ रानी, मैं सच कह रही हूँ।

सुदर्शना : उसीको मैंने उस दिन देखा था ? नही, नही, वह तो मैंने प्रकाश और अंधकार, समीर और गन्ध मिला हुआ और ही कुछ देखा था, वह नही, वह नही !

सुरंगमा सभी तो कहते है कि वह देखने मे सुन्दर है।

सुदर्शना : ऐसे सुन्दर पर भी क्या मन जाता है ! मेरी इन पाप की आँखों को किस चीज से धोना होगा कि यह ग्लानि धुल जाय !

सुरंगमा . उन्हे उसी कालेपन मे डुबाकर धोना होगा। उसी हमारे राजा के सब रूप डुबा देने वाले रूप मे। रूप की जो कालिख आँखों मे लग गई है वह धुल जायगी।

सुदर्शना : लेकिन सुरंगमा, ऐसी भूल मे मनुष्य पडता कैसे है ?

सुरंगमा : जितना कि वह भूल से उबर सके।

प्रतिहारी : (प्रवेश करके) स्वयवर-सभा में राजा प्रतीक्षा कर रहे है।

(प्रस्थान)

सुदर्शना : सुरगमा, मेरे अवगुण्ठन की चादर तो ले आ। (सुरंगमा का प्रस्थान) राजा, मेरे राजा तुमने मुझे छोड़ दिया है, यह तुमने न्याय ही किया है। किन्तु मेरे अन्तर की कथा क्या तुम नही जानोगे (छाती में छिपी हुई कटार निकालकर) मेरी देह कलुषित हुई है—इस देह को आज मैं सबके समक्ष धूल में लिटा दूँगी—

किन्तु मेरे हृदय मे दाग नही लगा, यह क्या छाती चीरकर आज तुम्हे न बताती जा सकूंगी ? तुम्हारे मिलन का वही अँधेरा कक्ष मेरे हृदय के भीतर आज सूना पड़ा है—उसका द्वार और किसी ने नहीं खोला, ओ मेरे प्रभु ! वह खोलने क्या तुम अब नहीं आओगे ? द्वार के पास तुम्हारी वीणा क्या और न बजेगी ? तब आये, मृत्यु ही आये—वह तुम्हारे समान ही काली है, तुम्हारे समान ही सुन्दर—तुम्हारे समान ही वह मन हरना जानती है—वह तुम ही हो, तुम्ही !

गान—२४

इस अँधेरे को अपने अतल अन्धकार में डुबा दो,
ओ अन्धकार के स्वामी !
आओ निविड़, गम्भीर, जीवन के पार से
मेरे चित्त में उतर आओ !
यह देह-मन लय हो जाये, खो जाये,
मेरी वासना-विकृति, मेरी इच्छा-धारा इन चरणों
में आकर थम जाय—
निर्वासन मे बँधी हूँ मै दुर्वासना की डोर से,
ओ अधन्कार के स्वामी !
सब बन्धनों से मुझे अपने साथ बांध लो, मैं बन्धन-कामी हूँ !
मेरे प्रेय, मेरे श्रेय, मेरे परम,
सब झर जाये, सब भर जाये, वह परम आवे,
और यह 'मैं' मर जाये—
ओ अन्धकार के स्वामी !

१५

स्वयंवर-सभा

विदर्भ   काचीराज, आपने तो कोई आभरण ही नही पहने !

कांची   : कोई आशा नही है इसीलिए । आभरणो से हार की लज्जा दुगुनी

हो जायगी।

कलिंग : जितने आभरण है, देखता हूँ कि सब छत्रधर ने ही पहने है।

विराट · इसके द्वारा कांचीराज यह प्रचार करना चाहते हैं कि बाहर की शोभा घटिया होती है। उनके पौरुष के अभिमान ने उन्हे अपनी देह पर और कोई आभरण ही नही धारण करने दिया !

कौशल . मैं उनकी चालाकी समझता हूँ। इतने आभरणधारियो के बीच अपनी आभरण-हीनता के द्वारा ही वह अपनी महिमा प्रमाणित करना चाहते है।

पाचाल : यह क्या उन्होने ठीक किया है, सभी तो जानते है कि रमणी की आँखे पतंग की तरह होती हैं—आभरणों की दीप्ति पर सबसे पहले टूटती है।

कलिंग · और कितनी देर होगी !

कांची अधीर न हो कलिग-राज, देर का फल मीठा होता है !

कलिग . फल मिलना निश्चित होता तो देर सही जाती। भोग की आशा अनिश्चित है तभी तो दर्शन की आशा से उत्सुक हूँ।

काची . आपकी तो नई जवानी है, इस उम्र मे आशा को बारम्बार छोड देने पर भी वह प्रगल्भा नायिका की भाँति लौट-लौट जाती है। हमारे तो वे दिन नही रहे।

कलिग . किन्तु शुभ लग्न तो बीती जा रही है।

काची · कोई चिन्ता नही, दुर्लभ दर्शन के लिए शुभ ग्रह भी प्रतीक्षा करेंगे। और अगर उनको इतना बोध न भी हो तो प्रिय दर्शन से अशुभ ग्रहो की दृष्टि भी प्रसन्न हो उठेगी !

विदर्भ · विराट-राज, आपने यात्रा कब आरम्भ की थी !

विराट शुभ समय देखकर ही चला था। ज्योतिषी ने कहा था कि यात्रा सफल होगी ही।

पाचाल : हम सभी तो शुभ योग देखकर चले थे। किन्तु कंजूस विधाता ने फल तो एक से अधिक रखा नही।

कौशल . क्या जाने शुभ ग्रहों का काम इस फल का त्याग करवाना ही हो।

काची . यह क्या उदासीनो की-सी बात करते है कौशल-राज ? फल त्याग

करने के लिए इतने आयोजन की क्या जरूरत थी !

कौशल : ज़रूरत तो थी ही। कामना किये बिना तो त्याग नहीं किया जाता। कांचीराज हमारे आसन अभी-अभी मानो काँप गए—यह क्या भूकम्प हो रहा है !

कांची : भूकम्प ! हो सकता है।

विदर्भ : या कि और किसी राजा की सेना आ धमकी है !

कलिंग : वह भी हो सकता है। किन्तु तब तो दूत से हमें संवाद मिल गया होता।

विदर्भ : मुझे तो यह अपशकुन जान पड़ता है।

कांची : भय की आँखों से तो सभी शकुन अपशकुन दीखते हैं।

विदर्भ : अदृष्ट से तो भय होता ही है—वहाँ वीरत्व काम नहीं आता।

पांचाल : विदर्भ-राज, आज के शुभ कार्य के बारे में हमें दुविधा में न डालिए !

कांची : अदृष्ट जब दृष्ट होगा तभी उससे समझ लिया जायगा।

विदर्भ : तब क्या जाने समय हो या न हो। मुझे आशंका हो रही है मानो कोई—

कांची : इस मानो की कोई बात न कीजिए—वह हमारी ही सृष्टि होकर हमारा ही विनाश करता है।

कलिंग : बाहर क्या बाजा बज रहा है !

पांचाल : हाँ, हाँ, बाजा ही जान पड़ता है।

कांची : तब फिर क्या—निश्चय ही रानी सुदर्शना है। विधाता इतनी देर बाद हमारा भाग्य-फल लेकर आये हैं—यह उन्हीके पैरों का शब्द है। (मुड़कर) सुवर्ण, ऐसे संकुचित होकर अपने को मेरी ओट में छिपाकर मत रखो। तुम्हारे हाथ में मेरा राज-छत्र भी काँप रहा है।

(योद्धा के वेश में ठाकुर दादा का प्रवेश)

कलिंग : यह क्या है ? कौन है ?

पांचाल : बिना बुलाये आने वाला यह कौन है।

विराट : बड़ा हौसला है इसका। कलिंगराज, आप उसे वहीं रोक दीजिए।

कलिंगराज : आप लोग सब मुझसे बड़े है—आपके सम्मुख मेरा आगे बढना अशोभन होगा।

विदर्भ : सुन ही लें इसे क्या कहना है।

दादा : राजा आए है।

विदर्भ : (चौंककर) राजा ?

पांचाल : कौन राजा ?

कलिंग : कहाँ के राजा।

दादा : हमारे राजा।

विराट : तुम्हारे राजा।

कलिंग : कौन ?

कौशल : कौन है वह ?

दादा . आप तो सभी जानते है कि वह कौन है। वह आए है।

विदर्भ : आए हैं ?

कौशल : किसलिए आए है ?

दादा . उन्होने आप सबको बुलाया है।

कांची · ओ हो ! बुलाया है ! कैसे बुलाया है ?

दादा : उनके बुलावे को जो जैसे ग्रहण करना चाहे, उनकी ओर से कोई बाधा नही है—वह सभी तरह के स्वागत के लिए तैयार है।

विराट : तुम कौन हो ?

दादा : मैं उनके सेनापतियो मे से एक हूँ।

काची : सेनापति ? झूठ ! डर दिखाने आए हो ? तुम समझते हो कि छद्म-वेश मे तुम्हे हमने पहचाना नही ? मैं तुम्हे अच्छी तरह पहचानता हूँ—तुम, और सेनापति !

दादा आपने मुझे ठीक ही पहचाना है। मुझ-जैसा निकम्मा और कौन होगा ! फिर भी मुझे ही आज उन्होने सेनापति का वेश पहनाकर भेजा है—बडे-बड़े वीरो को घर बिठाकर।

काची . अच्छा, उपयुक्त समारोह मे उनके बुलावे की रक्षा के लिए हम जायेंगे। किन्तु अभी एक जरूरी काम है। उसके समाप्त होने तक तुम्हे प्रतीक्षा करनी होगी।

दादा : वह जब बुलावा भेजते है तब और प्रतीक्षा नही करते।

कोशल : मैं उनका आह्वान स्वीकार करता हूँ। मैं अभी जाऊँगा।

विदर्भ : काचीराज, अब प्रतीक्षा करने की बात ठीक नहीं जान पड़ती। मैं भी चला।

कलिंग : आप लोग प्रवीण है, मैं भी आपका अनुसरण करूँगा।

पांचाल : अरे काचीराज, पीछे मुड़कर देखिए आपका राज-छत्र धूल मे पड़ा है! आपका छत्रधर कब भाग गया, आपको पता भी नही लगा!

कांची : अच्छा राजदूत, मैं भी चलता हूँ—किन्तु सभा में नहीं, रण-क्षेत्र में।

दादा : तो रण-क्षेत्र में ही हमारे प्रभु के साथ आपका परिचय होगा। वह भी उत्तम प्रशस्त स्थान है।

विराट : सुनिये हम सब शायद एक काल्पनिक डर से भाग रहे है—जान पड़ता है अन्त में अकेले कांचीराज की जीत होगी।

पांचाल : वह हो सकता है। फल जब प्राय: हाथ मे आ गया तब डरकर उसे छोड जाना ठीक नही है।

कलिंग : काची के साथ योग देना ही अच्छा है। वह जो इतना साहस कर रहे है तो क्या कुछ सोचे-समझे बिना ही कर रहे हैं?

१६

सुदर्शना और सुरंगमा

सुदर्शना : युद्ध तो समाप्त हो गया। अब मेरे राजा कब आयेंगे?

सुरंगमा : यह तो नही कह सकती—बैठी बाट देख रही हूँ।

सुदर्शना : सुरंगमा हृदय के भीतर आनन्द ऐसे काँप रहा है कि वेदना होती है। लज्जा से भी मरी जा रही हूँ। मुँह कैसे दिखाऊँगी।

सुरंगमा : अब की बार बिलकुल हार मानकर उनके पास जाइए, तब और लाज नहीं होगी।

सुदर्शना : यह स्वीकार तो करना ही होगा कि सदा के लिए मेरी हार हो गई

है, किन्तु इतने दिन गर्व करके उनके निकट सबसे अधिक प्यार का दावा करती आई हूँ न, वह सहसा छोड़ नही पा रही हूँ। सभी कहते थे कि मुझमे अपार रूप है, अनेक गुण है। सभी कहते थे कि मुझ पर राजा के अनुग्रह का अन्त नही है—इसलिए सबके सामने नीचा होते हुए मुझे इतनी लज्जा का बोध हो रहा है।

सुरगमा : अभिमान मिटे बिना तो लज्जा भी नही मिटेगी।

सुदर्शना : उनसे प्यार पाने की इच्छा तो किसी तरह मन से मिटना नही चाहती !

सुरगमा · सब मिट जायगी, रानी ! केवल एक ही इच्छा रह जायगी—अपने को निवेदन करने की इच्छा।

सुदर्शना : वही अँधेरे कक्ष की इच्छा—जिसमे देखना नहीं है, सुनना नही है, चाहना नही है, केवल गहराई मे अपने को छोड़ देना है। सुरगमा, तू यही आशीर्वाद दे कि—

सुरगमा : क्या कह रही है रानी ! मैं क्या आशीर्वाद दूंगी !

सुदर्शना सभी के सामने झुककर मै आशीर्वाद लूंगी। सभी कहते थे कि राजा ने कभी किसी को इतना प्रसाद नही दिया। यही सुन-सुनकर मेरा हृदय इतना कठोर हो गया था कि मै राजा को भी आघात दे सकी ! इतना कठोर कि झुकने मे लाज लगती है। इस लज्जा को काटना ही होगा—समस्त पृथ्वी के आगे झुकने का मेरा समय आ गया है। किन्तु राजा क्यो अभी तक मुझे लेने नही आये ? और किसके लिए प्रतीक्षा कर रहे है।

सुरंगमा : मैंने तो कहा कि हमारे राजा निष्ठुर है—बडे निष्ठुर !

सुदर्शना : सुरगमा, तू जा एक बार उनकी खबर तो लेकर आ !

सुरंगमा . कहाँ उनकी खबर पाऊँगी सो तो कुछ जानती नही हूँ। दद्दा को बुला भेजा है—उनके आने पर शायद उनसे कुछ सवाद मिल सके।

(बुढऊ दादा का प्रवेश)

सुदर्शना · सुना है आप हमारे राजा के बन्धु है। मेरा प्रणाम ग्रहण कीजिए ! मुझे आशीर्वाद दीजिए !

दादा : क्या करती हो रानी ! मैं किसी का प्रणाम नहीं लेता। मेरे साथ सबका हँसी-ठट्ठे का सम्बन्ध है।

सुदर्शना : तो अपनी वही हँसी दिखा दीजिए—मुझे सुसंवाद दे जाइए ! बताइए मेरे राजा मुझे लेने कब आयँगे ?

दादा : यह तो बड़ा मुश्किल सवाल तुमने पूछ डाला ! अपने बन्धु की भाव-गति मैं ही समझ नहीं पाता तो उसके बारे मे बताऊँगा क्या ? युद्ध तो समाप्त हो गया, वह कहाँ है इसका कोई पता नहीं है।

सुदर्शना : चले गए है ?

दादा : कहीं कोई आहट तो मिलती नहीं।

सुदर्शना : चले गए है ? तुम्हारे बन्धु ऐसे बन्धु है ?

दादा : इसीलिए लोग उनकी निन्दा भी करते है, उन पर सन्देह भी करते है। किन्तु हमारे राजा उसकी परवाह नहीं करते।

सुदर्शना : चले गए ! हाय, कितने कठोर, कितने कठोर—एकदम पत्थर, एकदम वज्र ! मैंने पूरे हृदय के जोर से उन्हे हिलाना चाहा—हृदय फट गया, किन्तु वह नहीं हिले। दद्दा, ऐसे बन्धु के साथ तुम्हारी कैसे निभती है ?

दादा : मैंने उन्हे पहचान जो लिया है—सुख-दुःख दोनों मे उन्हे पहचान लिया है—अब वह मुझे और रुला नहीं सकते।

सुदर्शना : मुझे भी क्या वह नहीं पहचानने देंगे ?

दादा : क्यो नहीं—नहीं तो इतना दुःख क्यो दे रहे हैं ? वह अच्छी तरह पहचान कराकर ही छोड़ेंगे, वह आसानी से छोड़ने वाले नहीं हैं।

सुदर्शना : अच्छा, अच्छा, देखूंगी उनमे और कितनी निष्ठुरता है ! इसी खिड़की के पास मैं चुपचाप पड़ी रहूँगी—एक डग भी नहीं हिलूंगी—देखूंगी वह कैसे नहीं आते !

दादा : बहन, तुम्हारी उम्र अभी कम है—तुम हठ करके बहुत दिन पड़ी रह सकती हो—किन्तु मेरा तो एक क्षण चला जाने से भी लगता है भारी नुकसान हो गया। मैं पाऊँ या न पाऊँ, मुझे तो खोजने जाना ही होगा।

(प्रस्थान)

सुदर्शना : नही चाहिए, नही चाहती मैं ! सुरगमा, मुझे तेरे राजा नही चाहिए—किस लिए यह युद्ध करने आए थे ? क्या मेरे लिए ! बिलकुल नही, केवल वीरता दिखाने के लिए ?

सुरंगमा : वह दिखाने की इच्छा अगर उनकी होती तो ऐसे दिखाते कि किसी को और सन्देह न रहता। दिखाया ही कहाँ अभी ?

सुदर्शना : जा, जा, चली जा—तेरी बात मुझसे नही सही जाती। इतना नीचा दिखाकर भी साध नही मिटी ! सारी दुनिया के लोगों को दिखाकर, मुझे यहाँ फेककर चले गए ?

१७

नागरिको का दल

पहला : अरे भई इतने राजाओ ने जुटकर लडाई ठानी, हमने सोचा था खूब तमाशा होगा; किन्तु देखते-देखते न जाने क्या हो गया कि कुछ समझ मे नही आया।

दूसरा . देखो न, उनमें आपस मे ही गोल-माल हो गया। किसी को किसी पर भरोसा ही नही था।

तीसरा उनकी एक राय जो नही हो सकी। कोई आगे बढना चाहता था तो कोई पीछे हटना—कोई इधर जाता था, तो कोई उधर। ऐसे क्या युद्ध होता है।

पहला : उनकी आँखे युद्ध की ओर थोड़े ही थी—वे तो सब एक-दूसरे को ताक रहे थे।

दूसरा · हर कोई यही सोच रहा था कि लडकर तो मैं मरूँगा और उसका फल भोग करेगा कोई और।

तीसरा : किन्तु काचीराज तो लडे थे यह तो मानना ही होगा।

पहला : वह तो हारकर भी हार नही मान रहे थे। अन्त मे अस्त्र ठीक उनकी छाती मे आकर लगा।

तीसरा : उससे पहले तो मानो उनको समझ मे नही आ रहा था कि वह

पग-पग पर हारते जा रहे हैं।

पहला . दूसरे राजा तो उन्हे छोड़कर ऐसे भागे—कौन कहाँ गया कुछ पता ही नही है।

दूसरा : किन्तु मैंने सुना है कि कांचीराज मरे नही।

तीसरा : नही चिकित्सा से बच गए; किन्तु उनकी छाती पर हार का जो निशान रह गया वह तो इस जीवन मे मिटने का नही।

पहला . दूसरे राजा भी कोई भागकर बच नही सके। सभी पकड़े गए। किन्तु उनके साथ यह न्याय कैसा ?

दूसरा : मैने सुना है कि सब राजाओ को दण्ड मिला, केवल कांची के राजा को विचारक ने अपने आसन के दाहिने पार्श्व मे विठाकर अपने हाथ से उन्हे राज-मुकुट पहना दिया।

तीसरा यह तो किसी तरह समझ मे नही आया।

दूसरा हॉ, यह फैसला तो सुनने मे बडा बेमेल जान पड़ता है।

पहला : सो तो है। अपराध तो जो कुछ था काची के ही राजा का था। ये सब तो लोभ और डर के बीच एक बार आगे बढते थे, एक बार पीछे हटते थे।

तीसरा . यह तो वैसा ही हुआ कि बाघ को तो छोड दिया गया और उसकी दुम काट ली गई।

दूसरा : मै यदि विचारक होता तो क्या काची को अछूता छोड़ देता उसको तो हर चिह्न पर दिखाई पड़ता।

तीसरा . हम क्या जाने भाई, बडे-बडे विचार-कर्ता थे—उनकी बुद्धि और ही ढंग की होती है।

पहला . उनमे बुद्धि नाम की कुछ चीज होती भी है ? उनकी तो केवल मर्जी होती है। कोई तो टोकने वाला नही।

दूसरा जो कहो, भाई; शासन का भार हमारे हाथो मे होता तो निश्चय ही इससे कही अच्छी तरह चला सकते।

तीसरा · यह भी क्या कहने की जरूरत है।

१८

पथ

(बुढ्ढ दादा और काचीराज)

दादा : यह क्या कांचीराज, आप यहाँ कहाँ ?

काची : तुम्हारे राजा ने मुझे रास्ते पर ही छोड़ दिया है।

दादा : उनका ऐसा ही स्वभाव है !

कांची : और तव से खुद कही दिखाई नही देते।

दादा : वह भी उनका एक कौतुक है।

काची : किन्तु मुझे ऐसे कब तक टालेगे ? जब मै किसी तरह उन्हे राजा मानना ही नही चाहता था, तब न जाने कहाँ से आँधी की तरह आकर पल-भर मे मेरी ध्वजा-पताका तोड-ताडकर धूल में मिला दी, और आज जब मैं उनके निकट हार मानने के लिए गली-गली भटकता फिरता हूँ तब कही दिखाई नही देते ?

दादा : वह जो हो, वह चाहे जितने बड़े राजा हों, जो उनके आगे हार गया उससे उन्हे हार माननी ही होगी। किन्तु राजन् आप रात मे क्यो भटक रहे है ?

काची . यह इतनी-सी लज्जा अभी नही छोड सका। काची का राजा थाल मे मुकुट रखकर तुम्हारे राजा का मदिर ढूँढता हुआ भटक रहा है, यह लोग दिन के प्रकाश में देखेगे तब तो हँमेगे ?

दादा : हाँ, लोग तो ऐसे ही होते है। जो देखकर आँखो से आँसू बहाने लगते है, उसीको देखकर अन्दर हँसते हैं।

कांची · किन्तु दद्दा, तुम यह क्या कर रहे हो ? उसी उत्सव के छोकरो को यहाँ भी जुटा लाए हो ? किन्तु वहाँ जो तुम्हारे पीछे-पीछे घूमते थे उन्हे तो नही देख रहा हूँ।

दादा : हमारे शम्भू और सुधन की टोली ? वे तो लड़ाई में मारे गए।

काची . मारे गए ?

दादा : हाँ, वे मुझसे बोले, दद्दा, पंडित लोग जो कहते है वहहमारीसमझ मे कुछ नही आता, और तुम जो गान गाते हो उसके साथ भी हम सुर नही मिला पाते। लेकिन एक काम हम कर सकते हैं—

हम मर सकते है—हमे युद्ध मे ले चलो, हम जीवन सार्थक कर आयँ। तो जैसी उनकी बात, वैसा ही उनका काम रहा। सबसे आगे जाकर खड़े हो गए, सबसे पहले प्राण गँवाकर बैठ गए।

काची : तब तो सीधे रास्ते चलकर सब बुद्धिमानो से आगे निकल गए, और क्या। अब इन छोकरो की टोली के साथ क्या बाल-लीला हो रही है ?

दादा : इस बार का वसन्त-उत्सव अलग-अलग क्षेत्रो मे अलग-अलग ढंग का हो रहा है, इसलिए सभी हिस्सों मे से इन्हे घुमाता हुआ फिर रहा हूँ। उस दिन उद्यान मे आग जल उठी थी—रण-भूमि मे भी खूब जमी, वह सब तो हो चुका—आज फिर हम लोगो के लिए महामार्ग का महादिन है। आज घरो मे रहने वाले लोगो को बाहर निकाल लाने के लिए दक्षिण-पवन की तरह दल-बल लेकर निकला हूँ। अरे, भई उठाओ तो जरा अपने उसी द्वार पर आघात देने के गान का सुर !

गान—२५

तुम्हारे अवगुण्ठित कुण्ठित जीवन के द्वार पर आज वसन्त आया है,
उसकी विडम्बना न करो !
आज हृदय-दल खोल दो, अपना-पराया भुला दो !
इस संगीत-मुखर गगन में अपनी गन्ध की लहर उड़ा दो!
दिशा भूलकर बाहर भुवन में राशि-राशि माधुरी बिखरा दो !
बन के पल्लव-पल्लव में आज निविड़ वेदना सिहर रही है,
दूर गगन मे किसकी बाट जोहती वसुन्धरा आज सज रही है।
मेरे प्राणों में दक्षिण वायु लगती है, न जाने किनका द्वार खट-खटाती है;
यह सौरभ-विह्वला रजनी धरा पर न जाने किसके चरणों में जागती है;
हे सुन्दर, वल्लभ, कान्त, तुम्हारा गम्भीर आह्वान किसके लिए है ?

१९

पथ

(सुदर्शना और सुरंगमा)

सुदर्शना : बच गई सुरंगमा, मै बच गई। हार मानी, तब जाकर बच पाई। ओह कितना कठोर था मेरा अभिमान, किसी तरह गलता ही नही था। मेरे राजा क्या मेरे पास आ जायँगे ? मै ही तो उनके पास जाऊँगी, यह बात किसी तरह अपने मन को समझा ही नही पा रही थी। सारी रात उसी खिडकी के नीचे धूल मे पडी-पडी रोती रही—दक्षिण पवन मेरे भीतर की वेदना की तरह हू-हू करता रहा और कृष्ण चतुर्दशी की अँधेरी रात के चारो पहर का फल पाकू पक्षी पुकारता रहा—मानो अधकार ही रोता रहा हो !

सुरंगमा : आह ! कल की रात तो ऐसा लगता था कि किसी भी तरह समाप्त ही नही होगी !

सुदर्शना : किन्तु कहने से तू विश्वास नही करेगी, उसीके बीच बार-बार मुझे लगता था कि कही उनकी वीणा बज रही है। जो इतना निठुर है, उसके कठोर हाथ भी क्या ऐसा विनती का स्वर बजा सकते हैं। बाहर के लोग तो मेरा असम्मान ही देखकर चले गए—किन्तु गोपन रात का वह सुर मेरे हृदय को छोडकर और किसी ने नही सुना ! वह वीणा तूने भी सुनी थी, सुरंगमा, या कि वह मेरा स्वप्न ही था !

सुरंगमा : वह वीणा सुनूँगी, इसीलिए तो तुम्हारे साथ साथ रही ! अभिमान को गला देने वाला सुर एक दिन बजेगा यह जानकर कान लगाये बैठी थी।

सुदर्शना : उन्हीकी बात रही—मुझे राह की भिखारिणी बनाकर छोडा। भेट होने पर यही बात उनसे कहूँगी कि मै ही आई हूँ, तुम्हारे आने की राह देखती बैठी नही रही—कहूँगी कि आँसू बहाती-बहाती आई हूँ—दुर्गम रास्ता काटती-काटती आई हूँ। यह गर्व मैं नही छोडूँगी।

सुरंगमा : किन्तु यह गर्व भी नही टिकेगा रानी ! क्योंकि आपके आने से पहले वही आये थे, नही तो किसकी मजाल थी कि आपको बाहर निकालकर पथ पर ले आता ?

सुदर्शना : हाँ, वह तो शायद आए थे—मैंने आहट पाई थी। किन्तु विश्वास नही कर सकी। जब तक अभिमान किये बैठी रही तब तक लगता रहा कि वह भी मुझे छोड़ गए है—अभिमान को बहाकर जैसे ही मैंने बाहर निकलकर पथ पकडा वैसे ही जान पड़ा कि वह भी साथ बाहर आए है, राह के साथ-ही-साथ मैंने उन्हे भी पाना आरम्भ कर दिया। और अब मेरे मन मे कोई सोच नही है। उनके लिए सहा हुआ जो यह दु ख है, यह दु ख ही मुझे उनके साथ मिलाता है, यह इतना बीहड रास्ता मेरे पैरो के आघात से मानो किसी मधुर सुर मे बज उठता है; यही मानो मेरी वीणा है--मेरी दुःख की वीणा--इसी वेदना के गान पर वह इन कठोर पत्थरो पर, इस सूखी धूल पर स्वयं उतर आते है और मेरा हाथ पकड लेते है--वैसे ही हाथ पकडते है जैसे उस मेरे अँधेरे कक्ष में पकड लेते थे--सहसा चौंककर शरीर कटकित हो उठता था--यह भी वैसा ही है। किसने कहा कि वह नही है ? सुरंगमा, तू क्या नही समझ पा रही है कि वह छिपकर आ गए है।

गान—२६

(सुरंगमा का गान)

अन्धकार में मेरे दोनों हाथ तुमने पकड़े हैं—
कब तुम आ गए, नाथ, मृदु चरणों से ?
मैंने समझा था कि तुम्हें खो दिया, जीवन-स्वामी,
किन्तु मुझे तुम नही खोओगे यह आज की रात मैंने समझ लिया !
जिस रात में मैंने अपने हाथों दिया बुझा दिया,
उसीमें तुम अपना ध्रुव-तारा जलाते हो !
तुम्हारे पथ पर मेरा चलना जब चूक गया, तब देखा—
तुम्हीं स्वयं मेरे पथ पर छिपकर साथ चल रहे हो !

सुदर्शना : अरे वह कौन है ? देख तो सुरंगमा, इतनी रात मे इस अँधेरे पथ पर और भी एक पथिक चल रहा है !

सुरगमा रानी माँ, यह तो कांची के राजा दीख पड़ते है।

सुदर्शना : काची के राजा !

सुरगमा . डरिये मत, रानी माँ !

सुदर्शना : डर ? डरूँगी क्यो ? मेरे डरने के दिन गये !

काचीराज : (प्रवेश करके) माँ, तुम भी चल रही हो क्या ? मैं भी इसी रास्ते का पथिक हूँ, मुझसे बिलकुल भय न करे।

सुदर्शना · अच्छा ही हुआ, काचीराज; हम दोनो साथ-साथ उनके पास जा रहे हैं यह ठीक ही हुआ ! घर छोड़कर बाहर निकलते ही आपसे मेरी भेंट हुई थी—आज घर लौटते समय वही योग हमारे लिए ऐसा शुभ योग हो उठेगा यह पहले कौन सोच सकता था !

काची : किन्तु देवी, आप पैदल चल रही है आपको शोभा नही देता। यदि अनुमति हो तो अभी रथ मँगाया जा सकता है।

सुदर्शना : नही, नही, ऐसी बात न कहिए—जिस पथ से उनसे दूर चली आई थी उसी पथ की सारी धूल को पैरो से रौदती हुई लौटूंगी तभी मेरा राह चलना सार्थक होगा। रथ मे बिठाकर ले जाना तो मुझे धोखा देना होगा।

सुरगमा : महाराज, आप भी तो आज धूल पर चल रहे है। इस पथ पर तो कभी हाथी-घोड़े-रथ किसी के नही देखे।

सुदर्शना : जब रानी थी तब केवल सोना-चाँदी पर ही पाँव रखती थी—आज उनकी धूल पर चलकर अपना वह भाग्य-दोष दूर कर सकूँ। आज मेरे उसी धूल-मिट्टी के राजा के साथ इस धूल-मिट्टी मे पद-पद पर मेरा मिलन हो रहा है, इस सुख की बात और कौन जानता है !

सुरंगमा : रानी माँ, वह देखिए, पूर्व दिशा की ओर देखिए, भोर हो रहा है। और देर नही है रानी माँ—उनके प्रासाद का सोने का शिखर दिखाई पड़ रहा है

गान—२७

भोर हो गया, पथ चुक गया—
वह सुनो, लोक-लोकान्तर में उठ रहा है आलोक का गान !
रात-भर जागने से क्लान्त ओ पथिक, तुम धन्य हुए,

मर-मर कर धन्य हुए धूल से धूसर प्राण !
वन की गोद में समीरण जागा है।
मधु-भिक्षु कुञ्जद्वार पर जुट गए हैं।
तुम्हारी यात्रा पूरी हुई, आँसू पोंछ डालो—
लज्जा-भय झर गए, मान-अभिमान डूब गया !
भोर हो गया।

(ठाकुर दादा का प्रवेश)

दादा : भोर हो गया। बहन, भोर हो गया।

सुदर्शना : आपके आशीर्वाद से पहुँच गई, दद्दा—पहुँच गई।

दादा : किन्तु हमारे राजा का रंग-ढंग देखा ? न रथ, न बाजा, न कोई समारोह ?

सुदर्शना : क्या कहते हैं आप, समारोह नही ? वह देखिए आकाश सम्पूर्ण लाल हो रहा है। फूलो की गन्ध के स्वागत से समीर बिलकुल परिपूर्ण है।

दादा : वह होगा। किन्तु हमारे राजा जितने निठुर है हम तो वैसे नही हो सकते—हमे तो कष्ट होता है आप इस दीन वेश में राजभवन मे जा रही है यह हम कैसे सह सकते है ? ज़रा रुकिए, मैं दौडकर आपकी रानी की पोशाक ले आता हूँ।

सुदर्शना : नही, नही, नही। वह रानी का वेश उन्होने मुझसे सदा के लिए छुड़ा दिया है। सभी के सम्मुख उन्होने मुझे दासी का वेश पहनाया है—मैं बच गई हूँ, बच गई हूँ। मैं आज उनकी दासी हूँ—जो कोई भी उनके है मैं आज उन सबसे नीचे हूँ।

दादा : तुम्हारी यह दशा देखकर तुम्हारे शत्रु ठट्ठा करेंगे, वह हम कैसे सह सकेंगे ?

सुदर्शना : शत्रुओ का परिहास अक्षय रहे—वह मुझ पर धूल फेकते रहे। आज इस अपवाद-वेला में वह धूल ही तो मेरे लिए अंगराग है।

दादा : तब और तो कुछ कहने को नही है। अब हमारे वसन्त-उत्सव का अन्तिम खेल ही हो—फूलो के पराग अब रहे, दक्षिण पवन अब धूल ही उड़ाये ! आज सब मिलकर धूलि धूसर होकर ही प्रभु के पास जायंगे। जाकर देखेंगे कि वह भी धूल से सने हुए

वैठे है। क्योकि, आप क्या सोचती है, उन्हे लोग छोड़ देते हैं ? जो भी रुकता है मुट्ठी-दो मुट्ठी धूल उन पर फेक देता है—और वह उस धल को भाड़ते भी नही !

कांची : दद्दा अपने उस धूल के खेल मे मुझे मत भूल जाना ! मुझे भी इस राज-वेश को धूल से ऐसा रग लेना होगा कि पहचाना ही न जा सकूँ।

दादा : उसमें देर नही लगेगी, भाई ! जहाँ उतरकर आए हो, वहाँ तुम्हारा मिथ्या मान सव अपने-आप पुँछ गया है। यहाँ देखते-देखते रग वदल जायगा। और इन हमारी रानी को भी देखो—वह अपने ऊपर वड़ा क्रोध कर रही थी—सोच रही थी कि गहने फेंककर अपने भुवन-मोहन रूप की अवज्ञा करेगी, किन्तु अपमान की चोट से वह रूप और खिल उठा है—मानो उसे अव कुछ भी छिपाकर नही रख सकता। हमारे राजा का स्वय रूप से कोई सम्पर्क नही है न, तभी तो इस विचित्र रूप को वह इतना प्यार करते है, यही रूप तो उनके हृदय का अलंकार है ! उस रूप ने अपने गर्व का आवरण हटा दिया है—आज हमारे राजा के कक्ष मे इस समय वीणा कौन से सुर मे वज उठी होगी यह सुनने के लिए प्राण छटपटा रहे है।

सुरगमा : वह देखो सूर्य निकल आया।

२०

अँधेरा कक्ष

सुदर्शना : प्रभु जो दुलार तुमने मुझ पर से हटा लिया था वह फिर लौटाकर मुझे न दो—मैं तुम्हारे चरणो की दासी हूँ, मुझे सेवा का अधिकार दो !

राजा : मुझे सहन कर सकोगी ?

सुदर्शना : क्यों नहीं, राजा, अवश्य ही ! अपने प्रमोद वन मे अपनी रानी के

महल मे मैंने तुम्हे देखना चाहा था। इसलिए तुम्हें इतना विरूप देखा था—वहाँ पर तो तुम्हारे दास का अधम दास भी आँखों को तुमसे सुन्दर दीखता है! तुम्हे वैसे देखने की मेरी तृष्णा अब बिलकुल मिट गई है। तुम सुन्दर नही हो, प्रभु· सुन्दर नही हो—तुम अनुपम हो।

राजा : तुम्हारे भीतर ही मेरी उपमा है।

सुदर्शना : यदि है तो वह भी अनुपम है। मेरे भीतर तुम्हारा प्रेम है, उस प्रेम मे तुम्हारी ही छाया पड़ती है वही तुम अपना रूप स्वयं देख पाते हो। वह मेरा कुछ नही है वह तुम्हारा है।

राजा : आज इस अँधेरे कक्ष के द्वार मैं बिलकुल खोल देता हूँ—यहाँ की लीला पूरी हो गई। आओ अब मेरे साथ आओ, बाहर चली आओ—प्रकाश मे।

सुदर्शना : बाहर आने से पहले अधकार के प्रभु को, अपने निष्ठुर, अपने भयानक को प्रणाम कर लूँ।

परिशिष्ट

इस नाटक के मूल बंगला गीत

गान १

खोलो खोलो द्वार राखियो ना आर
बाहिरे आमाय दाँड़ाये।
दाओ साड़ा दाओ एइ दिके चाओ
एसो दुइ बाहु बाड़ाये।
काज हये गेछे सारा,
उठे छे सन्ध्या-तारा,
आलोकेर खेया हये गेल देया
अस्तसागर पाराये।
एसेछि दुयारे एसेछि आमारे
बाहिरे रेखो ना दाँडाये।
भरि लये झारि एनेछ कि वारि,
सेजेछ कि शुचि दूकूले।
बेँधेछ कि चुल, तुलेछ कि फुल
गेँथेल कि माला मुकुले।
धेन एल गोठे फिरे,
पाखिरा एसेछे नीडे,
पथ छिल यत जुड़िया जगत,
आंधारे गियेछे हाराये।
तोमारि दुयारे एसेछि आमारे
बाहिरे रेखो ना दाँड़ाये।

गान २

ए ये मोर आवरण
घुचाते कतक्षण ?

निश्वास-वाये उड़े चले याय
तुम कर यदि मन।
यदि पड़े थाकि भूमे
धुलाय धरणी चुमे,
तुमि तारि लागि द्वारे रवे जागि
ए केमन तव पण ?
रथेर चाकार रवे
जागाओ जागाओ सवे
आपनार घरे एसो वलभरे
एसो एसो गौरवे।
घुम टुटे याक चले
चिनि येन प्रभु व'ले,
छटे एसे द्वारे करि आपनारे
चरणे समर्पण ।

गान ३

कोथा बाइरे दूरे याय रे उड़े हाय रे हाय,
तोमार चपल आँखि वनेर पाखि वने पालाय।
आजि हृदय माझे यदि गो बाजे प्रेमेर बाँशि
तवे आपनि सेधे आपना वेंधे परे से फाँसि,
तवे घुचे गो त्वरा घुरिया मरा हेथा होथाय—
आहा आजि से आँखि वनेर पाखि वने पालाय।
चेये देखिस नारे हृदय-द्वारे के आसे याय।
तोरा शुनिस काने वारता जाने दखिन वाय।
आजि फुलेर वासे सुखेर हासे आकुल गाने
चिर- वसन्त ये तोमारि खोजे एसेछे प्राणे।
तारे बाहिरे खुंजि घुरिया बुझि पागल प्राय,
तोमार चपल आँखि वनेर पाखि वने पालाय ॥

गान ४

आजि दखिन दुयार खोला—
एसो हे, एसो हे, एसो हे, आमार
वसन्त एसो।
दिव हृदय-दोलाय दोला,
एसो हे, एसो हे, एसो हे आमार,
वसन्त एसो।
नव श्यामल शोभन रथे
एसो वकुल-विछानो पथे,
एसो वाजाय व्याकुल वेणु
मेखे पियाल फुलेर रेणु,
एसो हे, एसो हे, एसो हे, आमार
वसन्त एसो।
एसो घन पल्लव-पुञ्जे
एसो हे, एसो हे, एसो हे।
एसो वन मल्लिका-कुञ्जे
एसो हे, एसो हे, एसो हे।
मृदु मधुर मदिर हेसे
एसो पागला हाओयार देशे,
तोमार उतल उत्तरीय
तुमि आकाशे उड़ाये दियो,
एसो हे, एसो हे, एसो हे, आमार
वसन्त एसो।

गान ५

येखाने रूपेर प्रभा नयन-लोभा
सेखाने तोमार मतन भोला के (ठाकुरदादा)
येखाने रसिक-सभा परम शोभा
सेखाने एमन रसेर झोला के। (ठाकुरदादा)

गान ६

येखाने गलागलि कोलाकुलि
तोमारि वेचाकेना सेइ हाटे,
पड़े ना पदधूलि पथ भूलि
येखाने झगड़ा करे झगड़ाटे
येखाने भोलाभुलि खोलाखुलि
सेखाने तोमार मतन खोला के—
ठाकुरदादा।

गान ७

आमरा सबाइ राजा आमादेर एइ राजार राजत्वे
नइले मोदेर राजार सने मिलब की स्वत्वे।
(आमरा सबाइ राजा)
आमरा या खुशि ताइ करि
तबु तांर खुशितेइ चरि,
आमरा नइ बांधा नइ दासेर राजार त्रासेर दासत्वे।
नइले मोदेर राजार सने मिलब की स्वत्वे।
(आमरा सबाइ राजा)
राजा सबारे देन मान
से मान आपनि फिरे पान,
मोदेर खाटो करे राखेनि केउ कोनो असत्ये।
नइले मोदेर राजार सने मिलब की स्वत्वे।
(आमरा सबाइ राजा)
आमरा चलब आपन मते
शेषे मिलब तांरि पथे
मोरा मरब ना केउ विफलतार विषम आवर्ते
नइले मोदेर राजार सने मिलब की स्वत्वे।
(आमरा सबाइ राजा)

गान ८

बाउल-गान

आमार प्राणेर मानुष आछे प्राणे।
ताइ हेरि ताय सकल खाने।
आछे से नयन-ताराय आलोक-धाराय, ताइ ना हाराय,
ओगो ताइ देखि ताय ये थाय सेथाय
ताकाइ आमि येदिक पाने।
आमि तार मुखेर कथा
शुनब बले गेलाम कोथा,
शोना हल ना, शोना हल ना,
आज फिरे ऐसे निजेर देशे
एइ ये शुनि,
शुनि ताहार वाणी आपन गाने।
के तोरा खुँजिस तारे
काङाल-वेशे द्वारे द्वारे
देखा मेले ना मेले ना,—
ओ तेरा आय रे धेये देख् रे चेये
आमार बुके—
ओरे देख् पे आमार दुइ नयाने।

गान ९

तोरा ये या वलिस भाइ
आमार सोनार हरिण चाइ।
सेइ मनोहरण चपल चरण
सोनार हरिण चाइ।
से ये चमके वेड़ाय दृष्टि एड़ाय
याय न तारे वाँधा,
तार नागाल पेले पालाय ठेले
लागाय चोखे धाँदा,
तबु छूटव पिछे मिछे मिछे

पाइ वा नाहि पाइ
आमि आपन मने माठे वने
उधाओ हये धाइ।
तोरा पावार जिनिस हाटे किनिस
राखिस घरे भरे,
याहा याय ना पाओया तारि हाओया
लागल केन मोरे ?
आमार या छिल ता दिलेम कोथा
या नेइ तारि झोंके,
आमार फुरोय पूँजि, भाबिस वुझि
मरि ताहार शोके !
ओरे आछि सुखे हास्यमुखे
दुःख आमार नाइ।
आमि आपन मने माठे वने
उधाओ हये धाइ।

गान १०

आजि कमल-मुकुल-दल खुलिल !
दुलिल रे दुलिल
मानस-सरसे रस-पुलके
पलके-पलके ढेउ तुलिल
गगन मगन हल गन्धे,
समीरण मूर्छे आनन्दे,
गुन-गुन-गुञ्जन छन्दे
मधुकर छिरि छिरि वन्दे,—
निखिल भुवन मन भुलिल—
मन भुलिल रे
मन भुलिल !

गान ११

मोदेर किछु नाइ रे नाइ,
आमरा घरे-बाइरे गाइ
ताइ रे नाइ रे नाइ रे ना।
यतइ दिवस याय रे याय
गाइ रे सुखे हाय रे हाय
ताइ रे नाइ रे नाइ रे ना।
यारा सोनार चोरावालिर 'परे
पाका घरेर भित्ति गड़े
तादेर सामने मेरा गान गेये याइ
ताइ रे नाइ रे नाइ रे ना।
यखन थेके थेके गाँठेर पाने
गांठकाटारा दृष्टि हाने,
तखन शून्य झुलि देखाये गाइ
ताइ रे नाइ रे नाइ रे ना।
यखन द्वारे आसे मरण वुड़ि
मुखे ताहार बाजाइ तुड़ि
तखन तान दिये गान जुड़ि रे भाइ
ताइ रे नाइ रे नाइ रे ना।
ए ये बसन्तराज एसेछे आज
बाइरे ताहार उज्ज्वल साज,
ओरे अन्तरे तार वैरागी गाय
ताइ रे नाइ रे नाइ रे ना।
से ये उत्सवदिन चुकिये दिये
झरिये दिये शुकिये दिये
दुइ रिक्त हाते ताल दिये गाय
ताइ रे नाइ रे नाइ रे ना।

गान १२

मम चित्ते नित नृत्ये के ये नाचे
ताता थैथै ताता थैथै ताता थैथै
तारि सङ्गे की मृदङ्गे सदा बाजे
ताता थैथै ताता थैथै ताता थैथै।
हासिकान्ना हीरापान्ना दोले भाले,
काँपे छन्दे भालोमन्दे ताले ताले,
नाचे जन्म नाचे मृत्यु पाछे पाछे
ताता थैथै ताता थैथै ताता थैथै
की आनन्द, की आनन्द, की आनन्द,
दिवारात्रि नाचे मुक्ति नाचे बन्ध,
से तरङ्गे छुटि रङ्गे पाछे पाछे
ताता थैथै ताता थैथै ताता थैथै

गान १३

वसन्ते कि शुधू केवल फोटा फुलेर मेला रे ?
देखिसने कि शुकनो पाता झरा फुलेर खेला रे ?
ये देउ ओठे तारि सुरे
बाजे कि गान सागर जुड़े ?
ये ढेउ पड़े ताहारो सुर जागछे सारा बेला रे।
वसन्ते आज देख्रे तोराँ झरा फुलेर खेला रे।
आमार प्रभुर पायेर तले,
शधुइ कि रे मानिक ज्वले !
चरणे ताँर लुटिये काँदे लक्ष माटिर ढेला रे।
आमार गुरुर आसन काछे
सुबोध छेले क-जन आछे
अबोध जने कोल दियेछेन ताइ आमि ताँर चेला रे।
उत्सवराज देखेन चेये झरा फुलेर खेला रे।

गान १४

विरह मधुर हल आजि
मधुराते।
गभीर रागिणी उठे वाजि
वेदनाते।
भरि दिया पूर्णिमा निशा
अधीर अदर्शन-तृषा।
की करुण मरीचिका आने
आँखिपाते।
सुदूरेर सुगन्ध धारा
वायुभरे
पराने आमार पथहारा
घुरे मरे।
कार वाणी कोन् सुरे ताले
मर्मरे पल्लवजाले,
वाजे मम मञ्जीरराजि
साथे साथे।

गान १५

या छिलो कालो धलो
तोमार रङे रङे राङा हल।
येमन राङावरन तोमार चरण
तार सने आर भेद ना र'ल।
राङा हल वसन भूषण
राङा हल शयन स्वपन,
मन ह'ल केमन देख् रे, येमन
राङा कमल टलमल।

गान १६

आहा तोमार सङ्गे प्राणेर खेला
प्रिय आमार ओगो प्रिय।
बड़ो उतला आज परान आमार
खेलाते हार मानवे कि ओ?
केवल तुमिइ कि गो एमनि भावे
राङिये मोरे पालिये यावे?
तुमि साध करे नाथ जरा दिये
आमारो रं वक्षे नियो—
एइ हृत्कमलेर राङा रेण
राङावे ऐ उत्तरीय।

गान १७ (क)

आमार सकल निये वसे आछि
सर्वनाशेर आशाय।
आमि तार लागि पथ चेये आछि
पथे ये-जन भासाय।

गान १७ (ख)

ये जन देय ना देखा याय ये देखे,
भालोवासे आड़ाल थेके,
आमार मन मजेछे सेइ गभीरेर
गोपन भालोवासाय।

गान १८

आमार घुर लेगेछे ताधिन ताधिन
तोमार पिछन पिछन नेचे नेचे
घुरे लेगेछे ताधिन ताधिन।
तोमार ताले आमार चरण चले
शुनते ना पाइ के की वले
ताधिन ताधिन—

तोमार गाने आमार प्राणे ये कोन्
पागल छिल सेइ जेगेछे
ताधिन ताधिन।
आमार लाजेर बाँधन साजेर बाँधन
खसे गेल भजन साधन,
ताधिन ताधिन—
विषम नाचेर वेगे दोला लेगे
भावना यत सब भेंगेछे
ताधिन ताधिन।

गान १९

पुष्प फुटे कोन् कुञ्जवने
कोन् निभृत रे कोन् गहने।
मातिल आकुल दक्षिण वायु
सौरभ चञ्चल सञ्चरणे
कोन् निभृते रे कोन् गहने।
काटिल क्लान्त वसन्त-निशा
वाहिर-अङ्गन-सङ्गी सने
उत्सवराज कोथाय विराजे
के लये यावे से भवने—
कोन् निभृति रे कोन् गहने।

गान २०

आमि रूपे तोमाय भोलाव ना
भालोवासाय भोलाव।
आमि हात दिये द्वार खुलव ना गो
गान दिये द्वार खोलाव।
भराव न भूषण-भारे
साजाव ना फुलेर हारे
सोहाग आमार माला करे

गलाय तोमार पराव।
जानबे ना केउ कोन् तुफाने
तरङ्गदल नाचवे प्राणे,
चाँदेर मतो अलख टाने
जोयारे ढेउ तोलाव।

गान २१

भयेरे मोर आघात करो
भीषण, हे भीषण !
कठिन करे चरण 'परे
प्रणत करो मन।
बेंधेछ मोरे नित्यकाजे
प्राचीरे घेरा घरेर माझे
नित्य मोरे बेंधेछे लाजे
साजेर आभरण।
ऐसो हे, ओ हे आकस्मिक
घिरिया फेलो सकल दिक
मुक्त पथे उड़ाये निक
निमेषे ए जीवन।
ताहार परे प्रकाश होक
उदार तव सहास चोख
तव अभय शान्तिमय
स्वरूप पुरातन।

गान २२

आमि　　तोमार प्रेमे हव सबार
कलङ्क-भागी।
आमि सकल दागे हव दागि।
तोमार　　पथेर काँटा करब चयन
येथा तोमार धुलार शयन

सेथा आँचल पातब आमार
तोमार रागे अनुरागी।
आनि शुचि आसन टेने टेने
वेड़ाव ना विधान मेने।
जे पङ्के ऐ चरण पड़े
ताहारि छाप वक्षे मागि।

गान २३

आमि केवल तोमार दासी
केमन करे आनव मुखे तोमाय भालोवासि।
गुण यदि मोर थाकत तवे
अनेक आदर मिलत भवे
विनामूल्येर केना आमि श्रीचरणप्रयासी।

गान २४

ए अन्धकार डुवाओ तोमार अतल अन्धकारे,
ओ हे अन्धकारेर स्वामी।
एसो निविड़, ऐसो गभीर, एसो जीवनपारे
आमार चित्ते एसो नामि।
ए देहमन मिलाये याक हइया याक हारा
ओहे अन्धकारेर स्वामी।
वासना मोर, विकृति मोर, आमार इच्छाधारा
ऐ चरणे याक थामि।
निर्वासने बाँधा आछि दुर्वासनार डोरे
ओहे अन्धकारेर स्वामी।
सब बाँधने तोमार साथे वन्दी करो मोरे
ओहे आमि बाँधनकामी।
आमार प्रिय, आमार श्रेय, आमार हे परम,
ओहे अन्धकारेर स्वामी—
सकल झरे सकल भरे आसुक से चरम
ओगो मरुक ना एइ आमि।

गान २५

आजि वसन्त जाग्रत द्वारे।
तव अवगुण्ठित कुण्ठित जीवने
क'रो ना विड़म्बित तारे।
आजि खुलियो हृदय-दल खुलियो,
आजि भुलियो आपन-पर भुलियो,
एइ संगीत मुखरित गगने
तव गन्ध तरङ्गिया तुलियो।
एइ वाहिर भुवने दिशा हारायें
दियो छड़ाये माधुरी भारे भारे।
अति निविड़ वेदना वनमाझे रे
आजि पल्लवे-पल्लवे वाजे रे
दूरे गगने काहार पथ चाहिया
आजि व्याकुल वसुन्धरा साजे रे।
मोर पराने दखिन वायु लागिछे
कारे द्वारे द्वारे कर हानि मागिछे
एइ सौरभविह्वला रजनी
कार चरण धरणीतले जागिछे?
ओ गो सुन्दर वल्लभ-कान्त,
तव गम्भीर आह्वान कारे।

गान २६

अन्धकारेर माझे आमाय धरेछ दुइ हाते।
कखन तुमि एले, हे नाथ, मृदु-चरणपाते?
भेवेछिलेम जीवनस्वामी,
तोमाय वुझि हाराइ आमि,
आमाय तुमि हारावे ना वुझेछि आज राते।
ये निशीथे आपन हाते निविये दिलेम आलो,
तारइ माझे तुमि तोमार ध्रुवतारा ज्वालो।

तोमार पथे चला यखन
घुचे गेल, देखि तखन
आपनि तुमि आमार पथे लुकिये चल साथे ॥

गान २७

भोर हल विभावरी, पथ हल अवसान,
शुन ओइ लोके लोके उठे आलोकेरि गान।
धन्य हलि ओरे पान्थ,
रजनी-जागरक्लान्त,
धन्य हल मरि मारि धुलाय धूसर प्राण।
वनेर कालेर काछे
समीरण जागियाछे।
मधुभिक्षु सारे सारे
आगत कुञ्जेरद्वारे
हल तव यात्रा सारा,
मोछो मोछो अश्रुधारा,
लज्जाभय गेल झरि घुचिल रे अभिमान।

डाकघर

अनुवादक :
प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'

१

(माधवदत्त और वैद्य)

माधवदत्त : मैं तो बड़ी मुश्किल मे पड़ गया हूँ। जब वह नही था, तब वह था ही नही। कोई फिक्र ही नही था। लेकिन अब तो वह जाने कहाँ से आकर मेरे घर मे डट गया है—लगता है, उसके चले जाने पर मेरा यह घर, घर ही न रह जायगा। वैद्यजी आप क्या समझते है, उसको—

वैद्य : अगर भाग्य मे लिखा होगा तो अभी बहुत दिनो तक वह बच भी सकता है, लेकिन आयुर्वेद में जैसा लिखा है, उससे तो—

माधवदत्त : क्या लिखा है ?

वैद्य : शास्त्रो मे लिखा है, 'पैत्रिकान् सन्निपातजान् कफवात समुद्भवान्—'

माधवदत्त : बस, बस, अब ये श्लोक वगैरा तो रहने ही दीजिए—इससे मेरा डर और भी बढ़ जाता है। यही बताइए कि अब करना क्या चाहिए ?

वैद्य : (सुँघनी सूँघकर) बहुत सावधानी से रहना होगा।

माधवदत्त : यह तो ठीक है, लेकिन किस बात मे सावधान रहना होगा, साफ-साफ यही बताइए न।

वैद्य : मैंने तो पहले ही से कह रखा है, उसे बाहर बिलकुल नही जाने देना होगा।

माधवदत्त : जरा-से बच्चे को रात-भर घर मे बाँधे रखना तो बडा मुश्किल है।

वैद्य : लेकिन आप ही कहिए, और कीजिएगा क्या ? यह जाडे की धूप और हवा, दोनो ही तो उसके लिए विष के समान हैं। शास्त्रो मे लिखा है, 'अपस्मारे ज्वरे काशे कामलाया हलीमके—'

माधवदत्त : अच्छा, अच्छा, अपने शास्त्रो की बात अभी रहने दीजिए।—मतलब यह कि इसे बन्द करके ही रखना पड़ेगा—दूसरा कोई उपाय नही है ?

वैद्य : कुछ नही, क्योकि 'पवने तपने चैव—'

माधवदत्त : वैद्यजी, आपका यह 'चैव' लेकर मै क्या करूँगा भला ? उसे तो अभी रहने ही दीजिए—यही बता दीजिए कि करना क्या होगा। लेकिन सच कहूँ, आपका परहेज बड़ा मुश्किल है। रोग की सारी तकलीफ वह बेचारा चुपचाप सह लेता है—लेकिन आपकी दवा खाने मे उसे जो तकलीफ होती है, उसे देखकर मेरा कलेजा फटने लगता है।

वैद्य . वह तकलीफ जितनी ज्यादा होगी, उसका फायदा भी उतना ही अधिक होगा—इसीसे तो महर्षि च्यवन ने कहा है, 'भेषज हितवाक्य च तिक्त आशुफलप्रदम्'। अच्छा तो अब मैं चलूँ दत्त महाशय !

(प्रस्थान)

(दादाजी का प्रवेश)

माधवदत्त : यह लो, दादाजी भी आ पहुंचे ! गज़ब हो गया !

दादा : क्यो, मुझसे क्या डर है तुमको ?

माधवदत्त : तुम बच्चो को बहकाने के सरदार जो हो !

दादा : तुम न तो खुद बच्चे हो, न तुम्हारे घर में ही कोई बच्चा है—बहकाने की तुम्हारी उम्र भी अब नही रही। तुम्हे किस बात का डर है ?

माधवदत्त : घर मे एक बच्चा जो ले आया हूँ।

दादा . यह कैसे ?

माधवदत्त मेरी घर वाली, लड़का गोद लेने की धुन बॉध बैठी थी।

दादा यह तो बहुत दिनो से सुन रहा हूँ, लेकिन तुम तो किसी लड़के को गोद लेना ही नही चाहते थे।

माधवदत्त . तुम तो जानते ही हो भाई, मैंने बडी तकलीफ से रुपये जोड़े है—जाने कहाँ से कोई पराया लड़का आकर, मेरी इतनी मिहनत की कमाई को बिना हाथ-पैर हिलाये उड़ाता रहेगा, यह बात सोचने मे भी मुझे बुरी लगती थी। लेकिन यह लड़का मुझे जाने कैसा लग गया है कि—

दादा : कि इसके लिए जितना ही खर्च करते हो, उतना ही समझते हो कि रुपयों का सबसे बड़ा भाग्य यही है।

माधवदत्त : पहले मेरा धन कमाना एक नशे की तरह था—बिना कमाए किसी तरह चैन ही न पाता था। लेकिन आज जो रुपये जोड़ रहा हूँ, वह सब इस बच्चे को ही मिलेगे, यह जानकर मुझे कमाई मे एक तरह का आनन्द मिल रहा है।

दादा : अच्छा भाई, यह तो बताओ कि इस बच्चे को पाया कहाँ ?

माधवदत्त : गाँव के रिश्ते से यह मेरी स्त्री का भतीजा है। छोटी उम्र से ही बेचारे की माँ नही है। अभी उस दिन उसका बाप भी जाता रहा।

दादा : अहा हा, अब तो उसको मेरी जरूरत है।

माधवदत्त : वैद्यजी ने कहा है, उसकी ज़रा-सी देह में वात-पित-कफ़ जिस तरह एक साथ बिगड़ उठे हैं, उससे उसके बचने की बहुत उम्मीद नही है। सिर्फ एक उपाय रह गया है कि किसी तरह उसे इस जाड़े की धूप और हवा से बचाकर घर में बन्द रखा जाय। लेकिन घर से बाहर निकालना ही तो तुम्हारे बुढ़ापे का खेल है—इसीसे तुमसे डर लगता है।

दादा : तुम झूठ नही कहते, मै बड़ा डरावना हो उठा हूँ—जाड़े की इस धूप और हवा की ही तरह। लेकिन भाई, घर मे बाँधकर रखने वाले कुछ खेल भी मैं जानता हूँ। मैं ज़रा अपना काम-धंधा निपटा आऊँ, फिर उस बच्चे से दोस्ती गाँठ लूँगा।

(प्रस्थान)

(अमल गुप्त का प्रवेश)

अमल : फूफाजी !

माधवदत्त : क्या है अमल ?

अमल : मैं क्या उस बरामदे तक भी न जा सकूँगा ?

माधवदत्त : नही बेटा !

अमल : वह, जहाँ बुआ जांते मे दाल दलती है, वह देखो न, जहाँ दोनों हाथों मे दाल की खुद्दा लेकर पूंछ के बल बैठी गिलहरी कुट-कुट करके खा रही है—मैं क्या वहाँ तक भी नही जा सकूँगा ?

माधवदत्त : नही वेटा !

अमल : मैं अगर गिलहरी होता तभी अच्छा था।—लेकिन फूफाजी, वे मुझे बाहर क्यो नही जाने देते ?

माधवदत्त : वैद्यजी कह गए हैं, बाहर जाने से तुम वीमार हो जाओगे।

अमल : फूफाजी यह वात वैद्यजी को कैसे मालूम हुई ?

माधवदत्त : यह क्या कहते हो अमल ! भला वैद्यजी नही जानेंगे ? उन्होंने इत्ती वडी-वड़ी पोथियाँ जो पढ डाली है।

अमल : पोथी पढने से ही क्या सव-कुछ जाना जा सकता है ?

माधवदत्त : अरे, तुम यह भी नही जानते ?

अमल . (लम्बी साँस लेकर) मैने तो पोथी कोई पढ़ी ही नही—इसीसे नही जानता।

माधवदत्त . देखो वेटा, वड़े-वडे पण्डित लोग भी तुम्हारी ही तरह होते है—वे घर से वाहर निकलते ही नही।

अमल : वे बाहर नही निकलते ?

माधवदत्त : ना, वे निकलेगे कव, तुम्ही वताओ न ? वे तो वैठे-वैठे सिर्फ़ पोथियाँ पढ़ा करते है—और किसी तरफ उनकी नज़र ही नही जाती।

अमल बाबू, वड़े होकर तुम भी पण्डित वनोगे—वैठे-वैठे इत्ती वड़ी-बड़ी पोथियाँ पढा करोगे—लोग तुम्हें देखकर अचरज मे पड़ जायँगे।

अमल . नही नही, फूफाजी, मैं आपके पैरो पड़ता हूँ, मै पण्डित नहीं वनूंगा—फूफाजी, मैं पण्डित हरगिज़ नही बनूंगा।

माधवदत्त : यह कैसी बात है अमल ! अगर पडित हो पाता तो मैं तो धन्य हो जाता।

अमल : देखने की जितनी चीजे है, मैं उन सबको देखूंगा—सिर्फ देखता हुआ घूमा करूँगा।

माधवदत्त : सुनो तो ज़रा ! क्या देखोगे ? देखने को इतना है ही क्या ?

अमल : अपनी खिडकी के पास वैठकर दूर पर वह जो पहाड़ दीख पड़ता है न, मेरा वडा जी होता है कि उसे पार करके मैं आगे चला जाऊँ।

माधवदत्त : कैसी पागलों की-सी बात है ! काम नही, धन्धा नही, खा-म-खाह पहाड को पार करने चला जाऊँ ! क्या, जो तुम कहते हो, उसका कोई ठिकाना ही नही है। यह पहाड जो इतना ऊँचा उठा हुआ है तो समझना पडेगा कि उसको पार करने की मनाही है। नही तो इतने बड़े-बडे पत्थर इकट्ठे करके इतना बड़ा एक पहाड़ खड़ा करने की क्या ज़रूरत थी ?

अमल : फूफाजी, तुमको क्या ऐसा लगता है कि वह मना कर रहा है ? लेकिन मुझे तो ऐसा जान पडता है कि धरती बोल नही सकती, इसीसे इस तरह नीले आसमान में हाथ उठाकर हमे बुला रही है। बहुत दूर के जो लोग घर मे बैठे रहते है, दोपहर के वक्त वे भी खिडकी के किनारे बैठकर वह पुकार सुन पाते है। लेकिन पड़ित लोग शायद उसे नही सुन पाते !

माधवदत्त : वे लोग तो तुम्हारी तरह पागल नही है न—वे सुनना चाहते भी नही।

अमल : कल मैने अपने-जैसे एक पागल को देखा था।

माधवदत्त सचमुच ? सुनूँ तो सही, वह था कैसा ?

अमल . उसके कन्धे पर बाँस की एक लाठी थी। लाठी के अगले सिरे पर एक पोटली बँधी थी। उसके बाएँ हाथ मे एक लोटा था। पैरो मे नागौरी जूते पहने, मैदान की राह से, वह उस पहाडी की ओर जा रहा था। मैंने उसे पुकारकर पूछा—"तुम कहाँ जा रहे हो ?" उसने कहा—"पता नही जहाँ भी चला जाऊँ।" मैंने पूछा—"क्यो जा रहे हो ?" उसने कहा—"काम ढूँढने।" अच्छा फूफाजी, क्या काम भी ढूँढना पडता है ?

माधवदत्त · पड़ता क्यो नही ? जाने कितने लोग काम ढूँढते फिरते है।

अमल : तब ठीक है। मै भी उन्ही लोगो की तरह काम ढूँढता फिरूँगा।

माधवदत्त : लेकिन अगर ढूँढकर भी न पा सकोगे तो ?

अमल : अगर ढूँढकर भी न पा सका तो फिर ढूँढूँगा—
लेकिन फूफाजी उसके बाद नागौरी जूतो वाला वह आदमी चला गया। मै दरवाजे के पास खडा होकर उसे देखता रहा। जहाँ डूमर गाछ के नीचे से झरना बह रहा है, वही उसने लाठी उतारकर रख

दी। झरने के पानी मे पाँव धोकर उसने पोटली खोली और पानी से सानकर सत्तू खाने लगा। खाना खाकर उसने फिर पोटली बाँधकर कन्धे पर रख ली—पैरो के कपड़े समेटकर वह झरने में उतर गया और पानी को ठेलता हुआ उस पार चला गया—मैंने बुआजी से कह रखा है। फूफाजी, उसी झरने के किनारे जाकर एक दिन मै भी सत्तू खाऊँगा।

माधवदत्त : फिर तुम्हारी बुआ ने क्या कहा ?

अमल . बुआ ने कहा, पहले तुम अच्छे हो जाओ, फिर तुम्हे उस झरने के किनारे ले जाकर सत्तू खिला लाऊँगी।
अच्छा फूफाजी, मै कब तक अच्छा हो जाऊँगा ?

माधवदत्त : अब तो तुम्हारे अच्छे होने मे बहुत देर नही है बेटा !

अमल : देर नही है ? तब तो अच्छा होते ही चला जाऊँगा।

माधवदत्त : कहाँ जाओगे ?

अमल : कितने ही टेढ़े-मेढे झरनो के पानी मे पैर डुबो-डुबोकर उन्हे पार करता हुआ मैं चला जाऊँगा—दोपहर को जब सभी लोग अपने घर का दरवाजा बन्द करके सोये रहेगे, तब मै जाने कहाँ, कितनी दूर काम ढूँढता हुआ, घूमता-फिरता चला जाऊँगा।

माधवदत्त · अच्छी बात है, पहले तुम अच्छे तो हो लो, उसके बाद—

अमल : उसके बाद मुझे पंडित होने को न कहना फूफाजी !

माधवदत्त : तब तुम्ही बताओ, तुम क्या होना चाहते हो ?

अमल : मेरी समझ मे कुछ नही आता है, अच्छी बात है सोचकर बताऊँगा।

माधवदत्त : लेकिन तुम इस तरह जिस-किसी परदेशी को बुला-बुलाकर बाते तो न किया करो !

अमल : परदेशी आदमी मुझे बहुत अच्छे लगते है फूफाजी !

माधवदत्त : लेकिन अगर वह तुम्हे पकड़ ले जाता तो ?

अमल : तब तो बहुत ही अच्छा होता। लेकिन मुझे तो कोई पकड़कर भी नही ले जाता—सभी लोग सिर्फ मुझे बैठाए रखते है।

माधवदत्त : मुझे काम है, मैं जा रहा हूँ—लेकिन देखो बेटा, तुम बाहर न निकल जाना !

अमल : नही जाऊँगा फूफाजी, मै राह के किनारे वाले इस कमरे मे बैठा रहूँगा।

२

[दही वाला]

दही वाला : दही लो, दही—बढिया दही !

अमल : दही वाले, दही वाले—ओ दही वाले !

दही वाला : क्यो पुकारते हो बेकार—तुम्हे दही लेनी है ?

अमल . लूँगा कैसे ? मेरे पास पैसे कहाँ है ?

दही वाला : कैसे अजीब लड़के हो तुम ? लोगे नही तो मेरा वक्त क्यों बरबाद करते हो ?

अमल : अगर मैं जा सकता तो तुम्हारे साथ जाता।

दही वाला : मेरे साथ चले जाते ?

अमल : हाँ, तुम जाने कितनी दूर से हाँक लगाते चले आ रहे हो—सुनकर मेरा मन जाने कैसा हो रहा है।

दही वाला : (दही की वहँगी उतारकर) बाबू, तुम यहाँ बैठकर क्या कर रहे हो ?

अमल : वैद्यजी ने मुझे बाहर निकलने को मना कर दिया है, इसीसे मैं दिन-भर यही बैठा रहता हूँ।

दही वाला : ओ, तुम्हे क्या हुआ है ?

अमल : मै नही जानता। मैंने तो कुछ पढा नही है, इसीसे मैं नही जानता कि मुझे क्या हुआ है ? दही वाले, तुम कहाँ से आ रहे हो ?

दही वाला . मैं अपने गाँव से आ रहा हूँ।

अमल : अपने गाँव से ? बहुत दूर है तुम्हारा गाँव ?

दही वाला : हमारा गाँव उस पचमुंडा पहाड के नीचे है—शामली नदी के किनारे।

अमल : पंचमुंडा पहाड—शामली नदी—क्या पता, शायद मैने तुम्हारा गॉव देखा है—कब, यह मुझे याद नही आता।

दही वाला : सचमुच तुमने मेरा गॉव देखा है ? किसी दिन तुम पहाड़तली मे गये थे क्या ?

अमल : नही मै गया तो कभी नही, फिर भी मुझे ऐसा लगता है, मानो मैने उसे देखा है। वहुत पुराने ज़माने के वहुत वडे-वडे पेड़ो के तले है तुम्हारा गॉव—लाल रग के रास्ते के किनारे। है न ?

दही-वाला : हॉ वावू, तुम ठीक कहते हो।

अमल : वहॉ पहाड पर गाये चरा करती है न ?

दही वाला : कैसे अचरज की वात है ! विलकुल ठीक कहते हो तुम। मेरे गॉव मे गाय-गोरू चरते क्यों नही ? खूब चरते है।

अमल : वहॉ की औरतें नदी से पानी भरकर, माथे पर कलसे रखकर ले जाती है—वे लाल साड़ी पहने रहती है।

दही वाला : वाह-वाह, विलकुल ठीक ! वहॉ, ग्वालटोली की सभी औरते नदी से ही तो पानी भरकर ले जाती है, मगर वे सभी लाल साड़ी ही पहनती हो, ऐसी बात नही है।—लेकिन वावू, तुम किसी-न-किसी दिन उस ओर ज़रूर गये होगे।

अमल : सच कहता हूँ दही वाले, मै उस ओर कभी नही गया। लेकिन वैद्यजी जिस दिन मुझे वाहर जाने को कहेगे, उस दिन तुम मुझे अपने गॉव ले चलोगे ?

दही वाला : ले क्यो नही चलूँगा बावू, जरूर ले चलूँगा।

अमल : फिर तुम मुझको भी दही वेचना सिखला देना। इसी तरह कन्धे पर वहँगी लेकर, इसी तरह दूर-दूर के रास्ते से होकर मैं भी दही वेचता फिरूँगा।

दही वाला . हाय रे, तुम क्यो दही वेचोगे बावू ? इत्ती-सारी पोथियाँ पढ़कर तुम तो भारी पडित वनोगे।

अमल . नही नही, मैं पंडित कभी नही बनूँगा। मैं तुम्हारी लाल सड़क के किनारे, तुम्हारे बूढे वरगद के तले, ग्वालटोली से दही ले आकर, दूर-दूर, गॉव-गॉव मे वेचता फिरूँगा। तुम कैसे कहते हो, 'दही लो दही, वढिया दही' मुझे यह आवाज लगाना सिखा दो न !

दही वाला : फूट गई तकदीर ! यह भी कोई सीखने की बात है ?

अमल : नही नही, यह सुर मुझे बड़ा अच्छा लगता है। आसमान के अतिम छोर से जैसे पंछी की पुकार सुनने से मन उदास हो जाता है—उसी तरह उस रास्ते के मोड़ से, उन पेड़ो की कतार के बीच से, जब तुम्हारी पुकार सुन पड़ती थी तो मेरे मन मे होता था—जाने क्या होता था मेरे मन मे !

दही वाला : बाबू, थोडी-सी दही तुम खाओ न !

अमल : दही खाने के लिए मेरे पास पैसे कहाँ हैं ?

दही वाला : नही नही, पैसो की कोई बात नही है। तुम थोडी-सी दही खा लोगे तो मुझे बड़ी खुशी होगी।

अमल : तुम्हे क्या बहुत देर हो गई है ?

दही वाला : कुछ देर नही हुई बाबू, मेरा कोई नुकसान नही हुआ। दही बेचने मे कितना सुख है, यह मैने आज तुम्हीसे सीखा है।

(प्रस्थान)

अमल : (सुर मे) दही लो, दही—बढ़िया दही। उस पचमुडे पहाड़ के तले, शामली नदी के किनारे वाले ग्वालो के घर का दही। भोर के पहर, पेड़ के नीचे गाये खड़ी करके वे दूध दुहते है—साँझ को औरत दही जमाती है, वही दही। दही लो, दही—बढ़िया दही-ई-ई-ई—

अरे, राह पर यह पहरेदार घूम रहा है ! पहरेदार, ओ पहरेदार, जरा सुन जाओ न !

(पहरेदार का प्रवेश)

पहरेदार . इस तरह चीख-पुकार क्यो मचा रहे हो ? मुझसे डरते नही तुम ?

अमल : क्यो तुमसे डरने की क्या बात है ?

पहरेदार . अगर मैं तुमको पकड़ ले जाऊँ तो ?

अमल . मुझे पकडकर कहाँ ले जाओगे ? बहुत दूर ? उस पहाड़ के पार ?

पहरेदार : अगर एकदम राजा के पास ले जाऊँ ?

अमल : राजा के पास ले जाओगे ? तो ले चलो न ! लेकिन मुझको तो वैद्यजी ने बाहर आने की मनाही कर रखी है। मुझको पकड़-

कर कोई कहीं नही ले जा सकेगा—मुझे दिन-रात यही बैठा रहना होगा।

पहरेदार : वैद्यजी ने मनाही कर रखी है ? अहा, तभी तो—तुम्हारा चेहरा कैसा सफेद हो गया है। आंखो के किनारे पर स्याही फिर गई है। तुम्हारे दोनो हाथों की नसे उभर आई है।

अमल : तुम घण्टा न बजाओगे पहरेदार ?

पहरेदार : अभी तो वक्त नही हुआ।

अमल : कोई कहता है, वक्त गुजरा जा रहा है, कोई कहता है, वक्त हुआ ही नही। अच्छा, तुम घण्टा बजा दोगे तब तो वक्त हो जायगा न ?

पहरेदार : यह कैसे हो सकता है ? जब वक्त हो जाता है, तभी तो मैं घण्टा बजाता हूँ।

अमल : बडा अच्छा लगता है तुम्हारा घण्टा—सुनने मे खूब अच्छा लगता है। दोपहर मे जब हमारे घर के सभी लोग खा-पी चुकते है—फूफाजी जाने कहाँ काम करने चले जाते हैं, बुआ रामायण पढती-पढती सो जाती है, मेरा नन्हा कुत्ता दालान के उस कोने की छाया मे, पूँछ मे सिर घुसाकर सोया रहता है—तभी तुम्हारा वह घण्टा बजता है—टन् टन् टन् टन् टन् टन् टन्। अच्छा, क्यो बजता है तुम्हारा घण्टा ?

पहरेदार : घण्टा सबको यह बतलाता है कि वक्त बैठा नही रहता—वक्त चला जा रहा है।

अमल : कहाँ चला जा रहा है ? किस देश को ?

पहरेदार : यह बात कोई नही जाता।

अमल : शायद वह देश किसी ने नही देखा। मेरा जी होता है कि इस 'समय' के साथ ही मैं चला जाऊँ—जिस देश की बात कोई नही जानता, उसी, बहुत दूर के देश मे।

पहरेदार : एक दिन तो उस देश मे सभी को जाना होगा बेटा !

अमल : मुझे भी जाना होगा।

पहरेदार : 'जाना तो होगा ही।

अमल : लेकिन वैद्यजी ने तो मुझे जाने से मना कर रखा है।

पहरेदार : हो सकता है कि किसी दिन खुद वैद्यजी ही हाथ पकड़कर तुम्हे ले जायँ ।

अमल : नही, नही, तुम उन्हे जानते नही । वे तो सिर्फ बाँधकर ही रखना जानते हैं ।

पहरेदार · लेकिन उनसे भी अच्छे जो वैद्यजी है, वे आकर छुड़ा जाते हैं ।

अमल : मेरे वे अच्छे वैद्यजी कब आयँगे पहरेदार ? यहाँ वैठा रहना अब अच्छा नही लगता मुझे ।

पहरेदार : ऐसी वात नही कहते बेटा !

अमल : नही, मै तो वैठा ही हूँ । मुझे जहाँ वैठा रखा है, मै तो वहाँ से वाहर नही निकला । लेकिन तुम्हारा घण्टा टन् टन् टन् वजता है और मेरा मन न जाने कैसा करने लगता है—
अच्छा पहरेदार !

पहरेदार · क्या है बेटा !

अमल . रास्ते के उस किनारे वाले बडे मकान मे वह जो झडा फहरा दिया गया है, और वहुत-से लोग जहाँ आवा-जाही कर रहे हैं, वहाँ क्या हुआ है ?

पहरेदार : वहाँ नया डाकघर खुला है ।

अमल · डाकघर ? किसका डाकघर ?

पहरेदार : डाकघर और किसका होगा ? राजा का डाकघर ।—
यह लडका तो वड़ा अजीव-सा लगता है !

अमल : राजा के डाकघर मे सारी चिट्ठियाँ राजा के पास से आती है ?

पहरेदार : आती क्यो नही ? देख लेना, एक दिन तुम्हारे नाम से भी चिट्ठियाँ आयँगी ।

अमल . मेरे नाम से भी आयँगी ? लेकिन मैं तो अभी वच्चा हूँ ।

पहरेदार : हमारे राजा तो वच्चो को भी इत्ती छोटी-छोटी चिट्ठियाँ लिखते है ।

अमल : वाह, तब तो वडा मजा आयगा । लेकिन मैं उनकी चिट्ठी कब पाऊँगा ? पहरेदार, तुमको कैसे मालूम हुआ कि वे मुझे भी चिट्ठी लिखेगे ?

पहरेदार . ऐसा न होता तो वे ठीक तुम्हारी इस खुली हुई खिड़की के सामने

सुनहले रग का एक इतना बडा झडा फहराकर, डाकघर खोलने क्यो जाते ?—
यह लडका तो मुझे बडा अच्छा लग रहा है।

अमल : अच्छा, राजा के पास से चिट्ठी आने पर मुझे कौन लाकर देगा ?

पहरेदार . राजा के बहुत-सारे डाकिये जो है—देखा नही तुमने, छाती पर सोने के तमगे लटकाए वे घूमते फिरते है ?

अमल : अच्छा, वे कहाँ घूमा करते है ?

पहरेदार : वे तो घर-घर, देश-देश घूमते रहते है।—
इसके सवाल सुन-सुनकर तो मुझे हँसी आती है।

अमल : बडा होकर मै राजा का डाकिया बनूँगा।

पहरेदार : हा हा हा हा, डाकिया ! यह तो बड़ा भारी काम है। धूप हो, बारिश हो, गरीब हो, अमीर हो, सभी के घर जा-जाकर चिट्ठियाँ बाँटते फिरना। यह बड़ा जबर काम है। भैया !

अमल ' तुम हँसते क्यो हो ? यही काम मुझे सबसे अच्छा लगता है।—
नही, नही, तुम्हारा काम भी बहुत अच्छा है। दोपहर मे जब धूप झाँय-झाँय करती होती है, तब तुम्हारा घंटा बज उठता है—टन् टन् टन्। और किसी दिन अचानक रात को जाग उठता हूँ तो देखता हूँ कि घर का दीपक बुझ गया है और बाहर के घने अँधेरे में घटा बज रहा है—टन् टन् टन्।

पहरेदार . अरे, वह चौधरी आ रहा है—अब मैं भागूँ ! वह अगर मुझे तुम्हारे साथ बाते करते देख लेगा तो मुश्किल होगी।

अमल : कहाँ है चौधरी ? कहाँ है ? कहाँ ?

पहरेदार : वह रहा, बहुत दूर ! उसके माथे पर गोल पत्तो का एक बड़ा-सा छाता है।

अमल : उसे शायद राजा ने चौधरी बनाया है ?

पहरेदार : अरे नही, वह खुद ही चौधुराई करता फिरता है। जो उसकी नही मानता, वह उसके पीछे हाथ धोकर इस तरह पड़ जाता है कि सभी उससे डरते है। सबके साथ दुश्मनी करके ही वह अपना धन्धा चलाता है। तो अब चलूँ, बहुत-सारा काम पड़ा हुआ है। कल सवेरे मैं फिर आऊँगा, तब तुम्हे शहर की बहुत

सारी खबरे सुना जाऊँगा।

(प्रस्थान)

अमल : अगर रोज मुझे राजा की एक चिट्ठी मिला करे तो बड़ा मजा रहे— इसी खिड़की के पास वैठा-बैठा मैं पढा करूँ।—लेकिन मैं तो पढ़ ही नही सकता। कौन मुझे चिट्ठियाँ पढकर सुनाया करेगा ? बुआ तो सिर्फ़ रामायण पढती है। वे क्या राजा की चिट्ठी पढ़ सकेगी ? अगर उन्हे कोई न भी पढ़ पायगा तो सारी चिट्ठियाँ इकट्ठी करके रख लूँगा, वडा होने पर पढूँगा। लेकिन अगर डाकिया मुझे पहचान ही न पाय तो ?—
चौधरीजी, ओ चौधरीजी, एक बात सुन जाओ न !

(चौधरी का प्रवेश)

चौधरी : कौन है रे ! राह चलते मुझको इस तरह पुकार रहा है। कहाँ का वन्दर है यह !

अमल : तुम चौधरी हो न, तुमको तो सभी जानते-मानते है।

चौधरी : (खुश होकर) हाँ, हाँ, मानते क्यो नही ? खूब मानते हैं।

अमल : राजा का डाकिया भी तुम्हारी बात मानता है ?

चौधरी : न मानेगा तो जान बचेगी उसकी ! मजाल है !

अमल : अच्छा चौधरीजी, तो तुम डाकिये से कह देना, मेरा ही नाम अमल है — मैं इस खिडकी के पास ही वैठा रहता हूँ।

चौधरी : क्यो भला, बताओ तो सही ?

अमल : मेरे नाम की अगर कोई चिट्ठी आए—

चौधरी : तुम्हारे नाम की चिट्ठी ? तुम्हे भला कौन चिट्ठी लिखेगा ?

अमल : राजा अगर चिट्ठी लिखे तो—

चौधरी : हा हा हा हा ! यह लडका तो कम नही जान पड़ता। हा हा हा हा ! राजा तुमको चिट्ठी लिखेगा ? क्यो न लिखेगा भला ? तुम तो उसके गहरे दोस्त ठहरे ! मुझे खबर मिली है कि कई दिनो से तुमसे भेट न होने के कारण जा रहा है वेचारा ! अव ज्यादा देर नही है, चिट्ठी आज आई कि कल आई।

अमल : चौधरीजी, तुम इस तरह की बाते क्यो बोलते हो ? तुम क्या मुझसे नाराज हो ?

चौधरी : लो, भला मै तुम पर नराज़ क्यो होऊँगा ? इतनी हिम्मत है मेरी ? राजा के साथ तुम्हारी चिट्ठी-पत्री ठहरी।
देखता हूँ, माधवदत्त का दिमाग वहुत चढ गया है। दो पैसे जमा क्या कर लिये है कि घर में राजा-वादशाह के सिवा दूसरी वात ही नही होती। ठहरो, मजा चखाता हूँ उसको।
अच्छी वात है लड़के, मै जल्दी ही वह वन्दोवस्त किये देता हूँ, जिससे राजा की चिट्ठी तुम्हारे घर आ सके।

अमल : नही, नही, तुम्हे कुछ नही करना होगा।

चौधरी : क्यो भला ? तुम्हारी खवर मै राजा को दे दूँगा—तव वे ज्यादा देर न कर पायँगे—तुम लोगो की खवर लेने के लिए तुरन्त ही प्यादा दौडा देगे।
ना, माधवदत्त की हिम्मत तो कम नही है। एक वार राजा के कानो मे ये वाते पड़े तो वह दुरुस्त हो जाय।

(प्रस्थान)

अमल : कौन हो तुम ? पायल झनकाती चली जा रही हो ? ज़रा रुको न भाई !

(वालिका का प्रवेश)

बालिक : मुझे रुकने की फुरसत कहाँ है ? वक्त जो वीता जा रहा है !

अमल : असल मे तुम रुकना ही नही चाहती—मैं भी अव यहाँ वैठा नही रहना चाहता।

वालिका : तुम्हे देखकर मुझे भोर के तारे की याद हो आई है—वताओ तो सही, तुम्हे हुआ क्या है ?

अमल : क्या हुआ है यह तो मैं नही जानता—वस, वैद्यजी ने मुझे वाहर निकलने को मना कर रखा है।

बालिका : तव फिर तुम हरगिज़ वाहर न निकलना—वैद्य की वात तो माननी ही चाहिए, उत्पात नही करना चाहिए, नही तो लोग तुम्हे शरारती कहेगे। वाहर की ओर देखकर तुम्हारा मन छटपटा रहा है न—मै वल्कि तुम्हारा यह आधा दरवाजा वन्द ही कर दूँ।

अमल : नही, नही, उसे वन्द न करो ! यहाँ तो सव-कुछ वन्द ही है—

सिर्फ यही खुला हुआ है। तुम कौन हो, बताओ न ? मै तो तुमको नही पहचानता।

बालिका : मैं सुधा हूँ।

अमल : सुधा ?

सुधा : जानते नही ? मै यहाँ की मालिन की बेटी हूँ।

अमल : तुम क्या करती हो ?

सुधा : डाला भरकर फूल चुन लाती हूँ और उनकी माला गूँथती हूँ। अभी मै फूल चुनने जा रही हूँ।

अमल : फूल चुनने जा रही हो ? शायद इसीसे तुम्हारे दोनो पैर इतने थिरक उठे हैं कि तुम चलती हो, तो तुम्हारे पायल बज उठते है—छम्-छम्-छम्। अगर मै तुम्हारे साथ जा सकता तो बहुत ऊँची डाल के, न दिखने वाले फूल भी तुम्हारे लिए झाड देता।

सुधा : क्यो नहीं ? जैसे फूलों का हाल मुझसे ज्यादा तुम्ही जानते हो !

अमल : जानता क्यो नही ? बेशक जानता हूँ। मैं सात भाइयो वाली चम्पा का हाल जानता हूँ। मुझे लगता है कि लोग अगर मुझे छोड़ दे तो मैं वहाँ तक जा सकता हूँ, खूब घने जगल मे वहाँ खोजकर भी राह नही पा सकती। पतली डाल की फुनगी पर, जहाँ मुनिया चिडिया बैठी-बैठी झूला झूलती रहती है, मै चम्पा बनकर खिल सकता हूँ—तुम मेरी पारुल दीदी बनोगी ?

सुधा : तुम्हारी भी क्या अकल है ! मैं पारुल दीदी कैसे बनूँगी ? मैं तो सुधा हूँ—शशि मालिन की बेटी। मुझको रोज़ इत्ती-सारी मालाएँ गूँथनी पडती हैं—

लेकिन मैं अगर तुम्हारी तरह इसी जगह बैठी रह पाती तो कैसा मजा आता !

अमल : तब तुम दिन-भर क्या करती ?

सुधा : मेरी एक बनिया-बहू गुड़िया है, उसका ब्याह करती। मेरी मैनी बिल्ली है, उससे—लेकिन नही, मुझे देर हो रही है, देर होने पर फिर फूल नही मिलेगे।

अमल : मेरे साथ कुछ और बात चीत करो न, मुझे बडा अच्छा लगता है।

सुधा : भले लड़के की तरह चुपचाप यही बैठे रहो ! मैं फूल चुनकर

लौटूँगी तो फिर तुमसे गप-शप करती जाऊँगी।

अमल : तुम क्या मुझे एक फूल भी देती जाओगी ?

सुधा : फूल यों ही कैसे दूँगी ? उसका दाम भी तो दे देना होगा न !

अमल . मैं जब बड़ा हो जाऊँगा, तब दाम दे दूँगा। मैं जब उस झरने को पार करके काम खोजने जाऊँगा, तब तुमको दाम देता जाऊँगा।

सुधा : अच्छा, यही सही।

अमल : लेकिन तुम फूल चुनकर आओगी न ?

सुधा : आऊँगी।

अमल : आओगी न ?

सुधा · हाँ, आऊँगी।

अमल · मुझे भूल तो नहीं जाओगी ? मेरा नाम है अमल। तुम्हें याद रहेगा ?

सुधा : हाँ, मैं भूलूँगी नहीं। देखना, मुझे याद रहेगा।

(प्रस्थान)

(बच्चों के झुंड का प्रवेश)

अमल : अरे भाई, तुम सब कहाँ जा रहे हो ? एक बार जरा देर के लिए यहाँ रुको न !

लड़के : हम लोग खेलने जा रहे है।

अमल . तुम लोग कौन-सा खेल खेलोगे ?

लड़के : हम लोग खेती का खेल खेलेगे।

पहला : (लाठी दिखाकर) यह रहा हमारा हल।

दूसरा : हम दोनो दो बैलहै।

अमल : तुम लोग दिन-भर खेलोगे ?

लड़के : हाँ, दिन-भर।

अमल · उसके बाद शाम के वक्त, नदी के किनारे-किनारे घर लौट जाओगे ?

लड़के : हाँ, हम शाम को लौटेंगे।

अमल : तो मेरे इस घर के सामने से ही लौटना भाई !

लड़के : तुम भी बाहर आ जाओ न, खेलो चलकर।

अमल : वैद्य ने मुझे बाहर निकलने की मनाही कर रखी है।

लड़के : वैद्य ? वैद्य की मनाही शायद तुम मानते हो ? चलो भाई, चलो, हम लोगो को देर हो रही है।

अमल : नही भाई जाने से पहले तुम लोग थोड़ी देर मेरी इस खिड़की के सामने खेलो न, मै भी देखूँ जरा !

लड़के : यहाँ हम किस चीज़ से खेलेगे ?

अमल : यह जो इतने सारे मेरे खिलौने रखे हैं, इन्हे तुम्ही लोग ले लो भाई ! मुझे घर के अन्दर अकेले खेलना अच्छा नही लगता— ये सब यो ही धूल मे बिखरे पड़े रहते है—मेरे किसी काम नही आते।

लड़के : वाह वा, वाह ! कैसे अनूठे खिलौने है ! यह तो जहाज है, और यह है झुनकुट बुढ़िया। देखते हो भाई, कैसा सुन्दर सिपाही है ! ये सब खिलौने तुम हम लोगो को दे रहे हो ? तुम्हे दु.ख नही होगा ?

अमल : नही, मुझे ज़रा भी दु ख नही होगा। मैने सब खिलौने तुम लोगों को दे दिए।

लड़के : लेकिन फिर हम लोग इन्हे वापस नही देगे।

अमल : नही, तुम्हे लौटाना नही होगा।

लड़के : कोई तुम पर नाराज तो नही होगा ?

अमल : नही, कोई नाराज़ नही होगा। लेकिन तुम लोग रोज सबेरे ये खिलौने लेकर मेरे इस दरवाजे के सामने थोडी देर खेलना। फिर जब ये पुराने हो जायँगे, मैं तुम लोगो के लिए नये मँगा दूँगा।

लड़के : अच्छा भाई, हम लोग रोज यहाँ खेलने आ जाया करेगे। अब सिपाहियो को यहाँ सजाओ तो—हम लोग लड़ाई-लडाई खेलेगे। लेकिन बन्दूक तो है ही नही। अच्छा यह जो एक मोटा-सरकंडा पड़ा है, उसीको तोड-ताडकर हम लोग बन्दूक बना ले। लेकिन भई, तुम तो सोए जा रहे हो।

अमल : हाँ, मुझे जोर की नीद आ रही है। पता नही क्यो, मुझे रह-रहकर नीद आ जाती है। मै बहुत देर से बैठा हुआ हूँ—अब मुझसे बैठा नही जाता—मेरी पीठ मे दर्द हो रहा है।

लड़के : अभी तो सिर्फ एक पहर ही दिन चढा है—अभी से ही तुम्हे कैसे

नीद आने लगी ? वह सुनो, एक पहर का घण्टा बज रहा है।

अमल : हाँ, वह क्या बज रहा है, टन् टन् टन्। वह मुझे सो जाने के लिए पुकार रहा है।

लडके . तो हम लोग भी चलें अब—कल सवेरे आ जायेंगे।

अमल : जाने से पहले मैं तुम लोगो से एक बात पूछ लूं भाई ! तुम लोग तो बाहर रहते हो, तुम लोग क्या राजा के उस डाकघर के डाकियो को पहचानते हो ?

लडके : हाँ-हाँ पहचानते क्यो नही ? खूब पहचानते हैं।

अमल · वे कौन हैं ? उनका नाम क्या है ?

लडके : एक है बादल डाकिया, एक दूसरा है शरत्—और भी बहुत-से है।

अमल : अच्छा अगर मेरे नाम की चिट्ठी आवे तो क्या वे मुझे पहचान सकेंगे ?

लडके : क्यो नही पहचान सकेंगे ? चिट्ठी पर तुम्हारा नाम होगा तो वे तुम्हे ठीक पहचान लेगे।

अमल : कल सवेरे तुम लोग आओगे तो उनमे से किसी एक को बुलाकर मेरी पहचान करा देना न !

लडके · अच्छी बात है, ऐसा ही होगा।

३

(अमल चारपाई पर पडा है)

अमल : फूफाजी, आज मैं अपनी उस खिड़की पर भी न जा सकूंगा ? वैद्यजी मना कर गए है ?

माधवदत्त . हाँ बेटा, रोज़-रोज वहाँ बैठने से ही तो तुम्हारी बीमारी बढ़ गई है।

अमल : नही फूफाजी, नहीं—अपनी बीमारी के बारे मे मैं कुछ भी नही जानता लेकिन वहाँ रहने से मै खूब अच्छा रहता हूँ।

माधवदत्त : वहाँ बैठे-बैठे तुमने इस शहर के तमाम बच्चो-बूढ़ो से दोस्ती गाँठ ली है—मेरे दरवाज़े पर रोज़ जैसे एक मेला-सा लगा रहता है—इससे क्या कही शरीर टिक सकता है ? देखो तो सही, आज तुम्हारा चेहरा कैसा फीका पड गया है ?

अमल फूफाजी, मेरा वह फकीर आज मुझे उस खिडकी पर न देखकर शायद लौट जायगा।

माधव दत्त तुम्हारा वह फकीर है कौन ?

अमल : वही, जो मेरे पास आकर जाने कितने देश-विदेशों की बातें बता जाता है। मुझे उसकी बाते बहुत अच्छी लगती है।

माधवदत्त : कहाँ, मैं तो किसी फकीर को नही जानता।

अमल . उसके आने का ठीक यही वक्त है। तुम्हारे पैरो पड़ता हूँ फूफाजी, तुम उससे कह आओ कि ज़रा देर वह मेरे कमरे मे आकर बैठे।

(फ़कीर के वेश मे दादा जी का प्रवेश)

अमल : यही तो, यही तो है मेरा फकीर ? आओ, आओ, आकर मेरे बिछौने पर बैठो !

माधवदत्त : यह क्या ! यह तो—

दादा (आँख से इशारा करते हुए) मैं फकीर हूँ।

माधवदत्त : मैं तो यही नही समझ पाता कि तुम क्या नहीं हो।

अमल : इस बार तुम कहाँ गये थे फकीर ?

दादा : मैं क्रौच द्वीप मे गया था। अभी-अभी मै वही से चला आ रहा हूँ।

माधवदत्त . क्रौच द्वीप से ?

दादा : तुम्हे इतना अचरज क्यों होता है ? तुम अपने ही जैसा मुझे भी समझते हो क्या ? मेरा तो कही जाने में कोई खर्च भी नही होता। मैं अपनी खुशी से चाहे जहाँ जा सकता हूँ।

अमल : (तालियाँ बजाकर) तब तो तुम्हारी बड़ी मौज है ! तुमने कहा था न, जब मै अच्छा हो जाऊँगा, तुम मुझे अपना चेला बना लोगे। याद है कफीर ?

दादा : खूब याद है ! मै तुम्हे घूमने-फिरने के ऐसे मत्र सिखा दूंगा कि समुद्र मे, पहाड़ पर, वन मे, कही तुम्हे रोक-टोक नही रहेगी।

माधवदत्त : पागलों की-सी यह सब क्या बातें करते हो तुम लोग ?

दादा : बेटा अमल, मैं पहाड़-पर्वत-समुद्र से नही डरता, लेकिन तुम्हारे इस फूफा के साथ अगर कही वैद्यजी भी आ जुटे तब तो मेरे मंत्र को भी हार माननी पडेगी।

अमल : नही-नही, फूफाजी, तुम वैद्यजी से कुछ न कहना। अब मैं यही लेटा रहूँगा, कुछ नही करूँगा, लेकिन जिस दिन मैं अच्छा होऊँगा उसी दिन फकीर से मत्र लेकर चला जाऊँगा—तब नदी-पहाड-समुद्र कोई मुझे पकडकर नही रख सकेगा।

माधवदत्त : छि· बेटा, इस तरह सिर्फ जाने-जाने की रट नही लगाया करते। ऐसी बाते सुनकर मेरा मन जाने कैसा हो जाता है।

अमल : क्रौंच द्वीप कैसा द्वीप है फकीर मुझे बताओ न ?

दादा : वह बड़े अचम्भे की जगह है। वह चिड़ियो का देश है—इन्सान तो वहाँ है नही। और वे पक्षी भी न तो बोलते है, न चलते हैं—सिर्फ गाते हैं, और उडते हैं।

अमल : वाह, कैसा अजीब देश है ! समुद्र है न ?

दादा : समुद्र के किनारे तो है ही।

अमल : वहाँ के सारे पेड नीले रग के है ?

दादा : नीले पहाड़ो पर ही तो उनका बसेरा है। शाम को जब उन पहाड़ो पर अस्त होते हुए सूरज की रोशनी पड़ती है और झुंड-के-झुंड हरे रग के पक्षी अपने बसेरो मे लौटने लगते हैं···उस समय आसमान के रंग से, पक्षियो के रंग से, पहाड़ के रग से एक अजीब समा बँध जाता है।

अमल : उन पहाड़ो पर झरना भी है ?

दादा : लो, झरने के बिना भी कोई बात नही बनती ? ऐसा लगता है, जैसे खास हीरे को ही गलाकर ढाल दिया गया हो। और उन झरनो का नाच कैसा है ! रोड़ो को ठन-ठुन-ठन-ठुन बजाते हुए, लगातार कल-कल झर-झर करते, वह समुद्र मे जाकर कूद पडते हैं। किसी वैद्य के बाप की भी हिम्मत नही है कि पल-भर के लिए भी उसे कही रोक रखे। चिड़ियो ने अगर मुझे एक निहायत मामूली आदमी समझकर जाति से बाहर न कर दिया होता तो

मैं उन्ही झरनो के पास, उनके हजारो बसेरो के एक किनारे, अपना घोसला बनाकर, समुद्र की लहरें देखता-देखता ज़िन्दगी के सारे दिन बिता देता।

अमल : अगर मैं भी चिड़िया होता तो—

दादा : तब तो बड़ी मुश्किल होती। सुना है, तुमने दही वाले से कह रखा है कि बड़े होकर तुम भी दही बेचोगे, लेकिन चिड़ियो के बीच तो तुम्हारा दही का रोजगार चल न पाता, बल्कि उसमे तुम्हारा कुछ नुकसान ही होता।

माधवदत्त : अब तो हद हो गई! लगता है तुम लोग मुझे भी पागल बना दोगे। मैं तो चला अब।

अमल . फूफाजी, मेरा दही वाला आकर लौट तो नही गया ?

माधवदत्त : लौट क्यो न जायगा ? तुम्हारे मनचाहे फकीर का हुक्म बजाकर क्रौंच द्वीप की चिड़ियो के बसेरो में उडते फिरने से तो उसका पेट भरेगा नही। हॉ, वह तुम्हारे लिए एक कुल्हिया दही रखकर गया है। कह गया है, गॉव मे उसकी भानजी का विवाह है—इसीसे वह कलमी टोला मे शहनाई का बयाना देने जा रहा है। उसे जरा-सी भी फुरसत नहीं है।

अमल : उसने तो कहा था, वह मेरी नन्ही-सी दुल्हन बनेगी·· उसकी नाक मे बुलाक और पहनावे मे लाल डोरिया साड़ी होगी। वह सवेरे-सवेरे अपने हाथ से काली गाय दुहकर, मिट्टी के नये बरतन मे, मुझे फेन-सहित दूध पीने को देगी, और शाम के वक्त गोशाला मे दिया जलाकर मेरे पास आ बैठेगी और सात भाइयो वाली चम्पा की कहानी सुनाया करेगी।

दादा : वाह वाह, बहू तो खासी है! मै तो फकीर हूँ, लेकिन फिर भी मुझे कुछ लालच हो रहा है। मगर घबराने की कोई बात नही है बेटा इस बार उसका ब्याह हो जाने दो। मै कहता हूँ, तुम्हे जरूरत होगी तो कभी उसके घर भानजियो का अकाल न पड़ेगा।

माधवदत्त चलो भी, अब तो हद हो गई।

प्रस्थान

अमल . फ़कीर, फूफाजी तो चले गए···अब मुझे चुपचाप बतला दो न, डाकघर मे क्या मेरे नाम से राजा की कोई चिट्ठी आई है ?

दादा : सुना तो है कि उनकी चिट्ठी रवाना हो चुकी है लेकिन वह अभी रास्ते मे ही है ।

अमल : रास्ते मे ? किस रास्ते मे ? उसी रास्ते में, जो बारिश के बाद, आसमान साफ हो जाने पर, बहुत दूर दीख पड़ता है ? उसी जंगल के रास्ते मे ?

दादा : जान पड़ता है, तुम सब-कुछ जानते हो उसी रास्ते में तो है ही।

अमल : मैं सब जानता हूँ फकीर !

दादा : वही तो देख रहा हूँ । लेकिन तुमने जाना कैसे ?

अमल : यह मैं नही जानता । ऐसा लगता है, मानो मैं आँखों के सामने सब-कुछ देख पाता हूँ···लगता है जैसे उसे मैंने बहुत बार देखा है, लेकिन कितने दिन देखा है, यह याद नही आता । मैं देख रहा हूँ कि राजा का डाकिया अकेला पहाड़ से उतरता आ रहा है—उसके बाएँ हाथ मे लालटेन है, कंधे पर चिट्ठियो का थैला है । कितने दिन, कितनी रातो से वह उतरता ही चला आ रहा है । पहाड की तलहटी मे, जहाँ झरने का रास्ता खत्म हो गया है, टेढ़ी नदी की राह पकड़कर वह चला आ रहा है । नदी के किनारे जुआरी का जो खेत है—उसकी सँकरी पगडंडी के बीच से वह लगातार चला आ रहा है—उसके बाद ईख के खेत है, उन खेतो के पास से ही ऊँची पगडडी चली गई है । उसी पग-डडी से वह लगातार चला आ रहा है । रात-दिन एक करके चला आ रहा है । खेतो में झिल्लियाँ बोल रही हैं । नदी के किनारे एक भी आदमी नही है, सिर्फ कादाखोचा[1] पक्षी अपनी पूंछ डुलाता हुआ घूम रहा है मुझे सब-कुछ दिखाई पड़ रहा

---

१. बंगाल में जलाशयों के निकट पाया जाने वाला एक पक्षी, जिसे कीचड रौंदना बहुत पसन्द है ।

है फ़क़ीर ! ज्यों-ज्यों उसे जाता हुआ देखता हूँ मेरे मन की खुशी उमड़-उमड़ पड़ती है।

दादा : ऐसी नई आँखें तो मेरी नहीं हैं बेटा, फिर भी तुम्हारे देखने के साथ-साथ मैं भी उसे देख पा रहा हूँ।

अमल : अच्छा फ़क़ीर, जिनका यह डाकघर है, उन राजा को [illegible] हो ?

दादा : जानता क्यों नहीं ? मैं तो रोज़ उनके [illegible] हूँ।

अमल : तब तो ठीक है। अच्छा [illegible] जाया करूँगा। [illegible] ?

दादा : बेटा, तुम्हें तो भीख [illegible] जो देना होगा, वह वे बिना माँगे दे देंगे।

अमल : नहीं-नहीं, मैं उनके दरवाजे के सामने, रास्ते के किनारे खड़ा होकर '[illegible]' कहकर भीख माँगूँगा—मैं खंजड़ी बजाकर नाचूँगा—ओ, बड़ा मजा आयगा ! नहीं फकीर ?

दादा : हाँ, मजा तो आयगा। तुम्हें अपने साथ ले जाने पर मुझे [illegible] भीख मिलेगी। लेकिन भीख में तुम माँगोगे क्या ?

अमल : मैं कहूँगा, तुम मुझे अपना डाकिया बना लो। [illegible] हाथ में लालटेन लेकर घर-घर तुम्हारी [illegible] फिरूँगा।—

जानते हो फ़क़ीर, एक आदमी ने [illegible] तो वह मुझे भीख माँगना [illegible] चाहेगा, मैं भीख माँगना [illegible]!

दादा : लेकिन वह कौन, [illegible] ?

अमल : छदाम ?

दादा : कौन छदाम ?

अमल : वही, जो [illegible] आता है। [illegible] खाट पर बैठकर, [illegible] [illegible]

करूँगा।

दादा : तब तो देखता हूँ, खासे मज़े की बात होगी !

अमल : उसीने मुझसे कहा है कि वह मुझे भी भीख माँगने का ढंग सिखा देगा। मैं जब फूफाजी से उसे भीख देने को कहता हूँ तो वे कहते है कि वह बनावटी अन्धा है, बनावटी लगड़ा है। अच्छा, मान लो कि वह बनावटी ही अन्धा है, लेकिन यह तो ठीक है न, कि वह आँखो से देख नही पाता ?

दादा : ठीक कहते हो बेटा, उसमे सचाई इतनी ही है कि वह आँखो से देख नही पाता। अब तुम उसे अन्धा कहो, चाहे मत कहो। लेकिन जब उसे भीख नही मिलती तो वह तुम्हारे पास बैठा इसलिए रहता है ?

अमल . मैं उसे बहुत सारी बातें बताया करता हूँ। वह बेचारा तो देख नहीं सकता, इसीसे मैं देश-देश की वे सब बाते उसे सुनाया करता हूँ, जो तुम मुझे बताते हो। उस दिन तुमने जो उस हल्के देश की बात बतलाई थी न, जहाँ किसी चीज़ का कोई वज़न नही होता, जहा ज़रा-सा उछलने से ही पहाड़ के पार जाया जा सकता है, उसकी बात सुनकर वह बहुत खुश हो गया था। अच्छा फकीर, उस देश मे किस ओर से जाया जा सकता है ?

दादा : भीतर की ओर से एक रास्ता है, उसे ढूंढ पाना शायद मुश्किल है।

अमल : वह बेचारा तो अन्धा है। हो सकता है, वह देख ही न पाए—उसे तो सिर्फ़ भीख ही माँगते फिरना होगा। इसी बात पर वह दुखी हो रहा था। मैंने उससे कहा, भीख माँगने के सिलसिले में तुमको जो घूमने-फिरने का इतना मौका मिल जाता है, सबको उतना कहाँ मिलता है ?

दादा · बेटा, घर बैठे रहने मे भी इतना दुःख किस बात का है ?

अमल नही, नही, दुख नही है। पहले-पहल जब मुझे घर में बैठा रखा था, तब मुझे लगता था, मानो दिन बीतता ही नही। अपने राजा का डाकघर देखकर अब तो मुझे अच्छा ही लगता है—इस कमरे मे बैठे-बैठे ही अच्छा लगता है। एक दिन मेरी चिट्ठी आ पहुँचेगी इस बात को याद करके ही मैं बडी खुशी से चुपचाप बैठा रह

सकता हूँ।—लेकिन राजा की चिट्ठी मे क्या लिखा होगा, यह तो मैं जानता ही नही ।

दादा : यह न भी जानो तो क्या है ? चिट्ठी पर तुम्हारा नाम तो लिखा ही रहेगा, बस हुआ।

(माधवदत्त का प्रवेश)

माधवदत्त : तुम दोनो ने मिलकर यह क्या हंगामा खड़ा कर रखा है ?

दादा : क्यों क्या हुआ ?

माधवदत्त : सुना है, तुम लोगों ने यह अफ़वाह फैला रखी है कि तुम्ही लोगो को चिट्ठी लिखने के लिए राजा ने यह डाकघर खोला है।

दादा : अगर ऐसा ही हो, तो भी क्या हुआ ?

माधवदत्त : अपने पचानन चौधरी ने गुमनाम चिट्ठी लिखकर यह बात राजा तक पहुँचा दी है ।

दादा : राजा के पास तो सभी बाते पहुँचती हैं, यह क्या हम नही जानते ?

माधवदत्त : तब सँभलकर बाते क्यो नही करते ? राजे-रजवाडों का नाम लेकर इस तरह की जैसी-तैसी बाते ज़बान पर क्यो लाते हो ? तुम लोगो ने तो मुझे खासी मुश्किल मे डाल दिया है ।

अमल : फकीर, राजा क्या इस बात से नाराज़ होगे ?

दादा : कहने से ही हो गया न कि नाराज़ होगे ? क्यो नाराज़ होगे भला ? मेरे-जैसे फकीर और तुम्हारे-जैसे लडके पर नाराज़ होकर कैसे वे अपना राज-पाट चलाते हैं, यह देख लेगे हम।

अमल : देखो फकीर, आज सवेरे से ही रह-रहकर मेरी आँखो मे अँधेरा छाता आ रहा है। जान पड़ता है, जैसे सब सपना है। जी चाहता है कि चुपचाप पड़ा रहूँ। अब बोलने की इच्छा नही होती।—

लेकिन राजा की चिट्ठी नही आयगी क्या ? अभी ही अगर यह सारा घर गायब हो जाय, अगर—

दादा : (अमल को पंखा झलते हुए) चिट्ठी ज़रूर आयगी, आज ही आयगी ।

(वैद्य जी का प्रवेश)

वैद्य : आज कैसा लग रहा है ?

अमल वैद्यजी, आज तो बहुत अच्छा जान पडता है—लगता है, मानो सारा दर्द मिट गया हो।

वैद्य : (माधवदत्त से, अलग) यह हँसी तो अच्छी नही जान पडती। इसने यह जो कहा कि बहुत अच्छा लग रहा है, यही खराब लक्षण है। हमारे चक्रधर ने कहा है—

माधवदत्त : दुहाई है वैद्यजी, चक्रधर दत्त की बात रहने दीजिए। यही बताइए कि अब बात क्या है ?

वैद्य : जान पड़ता है कि अब इसे पकड़कर रखा न जा सकेगा। मैं तो मना कर गया था, लेकिन जान पडता है, बाहर की हवा इसे लग ही गई है।

माधवदत्त : नही वैद्यजी, मैंने इसे खूब अच्छी तरह घेर-सँभालकर रखा है। मैंने इसे बाहर नही जाने दिया—दरवाज़े तो अक्सर ही बन्द रखता हूँ।

वैद्य : अचानक आज न जाने कैसी हवा चल रही है—मैं खुद देख आया हूँ तुम्हारे सदर दरवाजे के भीतर से हू-हू करके हवा बह रही है। यह तो बिलकुल ही अच्छा नही है। ताला-कुन्जी लगाकर उस दरवाजे को खूब अच्छी तरह बंद कर दो। न हो तो दो-तीन दिन तुम्हारे यहाँ लोगों का आना-जाना बंद ही रहे। फिर भी अगर कोई आ ही जाय तो उसके लिए खिड़की का रास्ता तो है ही। वह, जो उस खिडकी से डूबते हुए सूरज की रोशनी आ रही है, उसे बंद कर दो। उससे रोगी की नीद उचट जाती है।

माधवदत्त : अमल ने आँखे बन्द कर रखी है, उसका मुँह देखकर ऐसा लगता है, मानो—वैद्यजी, जो अपना नही था, उसे लाकर मैंने घर मे रखा, उसे प्यार किया, लेकिन जान पडता है कि अब उसे नही पाऊँगा।

वैद्य · वह क्या, तुम्हारे घर मे तो चौधरी आ रहा है ! यह कैसा हगामा है ? मैं तो चलूँ भाई ! लेकिन तुम जाकर जरा अच्छी तरह दरवाजा बन्द कर दो। मै घर जाते ही एक ज़हर-गोली

भिजवा देता हूँ, उसे खिलाकर देखो। अगर बचना होगा तो उसी-से इसे बाँधकर रख सकोगे।

(माधवदत्त और वैद्य का प्रस्थान)

(चौधरी का प्रवेश)

चौधरी . क्यो रे लडके !

दादा : (झटपट उठकर) अरे, चुप, चुप !

अमल : नही फकीर, तुम समझते हो कि मै सो रहा हूँ, लेकिन मैं सोया नही हूँ। मैं सब सुन रहा हूँ। मै जैसे बहुत दूर की वात भी सुन पा रहा हूँ। मुझे लगता है, मानो मेरे बाबूजी और मेरी माँ मेरे सिरहाने वाते कर रहे है।

(माधवदत्त का प्रवेश)

चौधरी : अरे माधवदत्त, आजकल तो बहुत बडे-बड़े लोगों से तुम्हारी राह-रस्म हो गई है।

माधवदत्त यह क्या कहते है चौधरी जी ! ऐसा ठट्ठा मत कीजिए। हम लोग तो बहुत ही मामूली आदमी है।

चौधरी : लेकिन तुम्हारा यह लडका तो राजा की चिट्ठी का इन्तजार कर रहा है।

माधवदत्त : वह तो बच्चा है, पागल है, भला उसकी बात का भी कोई खयाल करता है ?

चौधरी . नही, नही, इसमे अचरज की क्या बात है ! तुम्हारे घर-जैसा बढ़िया घर राजा और पायेंगे कहाँ ? देखते नही, इसी से ठीक तुम्हारी खिड़की के सामने ही राजा का नया डाकघर खुला है।
अरे लडके, तेरे नाम से यह राजा की चिट्ठी आई है।

अमल : (चौंककर) सच ?

चौधरी : सच नही तो और क्या ? तुम्हारे साथ राजा का दोस्ताना जो है ! (बिना लिखावट का एक सादा कागज देते हुए) हाहा-हाहा, यह रही उनकी चिट्ठी।

अमल : मुझसे ठट्ठा न करो चौधरीजी !
फकीर, फकीर, तुम बताओ न, क्या सचमुच यही उनकी चिट्ठी है ?

दादा : हाँ बेटा, मैं फकीर होकर कहता हूँ, सचमुच यह उन्हीकी

चिट्ठी है।

अमल : लेकिन मैं तो इसमें कुछ नहीं देख पाता—मेरी आँखों में आज सब कुछ सफेद दीख पड़ता है। चौधरीजी, बता दो न, इस चिट्ठी में क्या लिखा है ?

चौधरी : राजा ने लिखा है, मैं आज या कल में ही तुम्हारे घर आ रहा हूँ। मेरे लिए तुम लोग चना-चबैना का इन्तजाम कर रखना। राजमहल अब पल-भर के लिए भी मुझे अच्छा नहीं लगता। हा-हा हा-हा ?

माधवदत्त : (हाथ जोड़कर) चौधरीजी, दुहाई है आपकी, इन बातों को लेकर हँसी-ठट्ठा न करें।

दादा : हँसी-ठट्ठा। कैसी हँसी-ठट्ठा ? इनकी मजाल है कि हँसी-ठट्ठा कर सकें !

माधवदत्त : अरे दादाजी, तुम भी पागल हो गए हो क्या ?

दादा : हाँ, मैं पागल हो गया हूँ। इसीसे मैं आज इस सादे कागज पर अक्षर देख पा रहा हूँ। राजा ने लिखा है, वे खुद अमल को देखने के लिए आ रहे हैं। वे अपने साथ राजवैद्य को भी ले आयेंगे।

अमल : सुनो फ़कीर, वह सुनो ? वह उनके बाजे बज रहे हैं ! तुम सुन नहीं पाते ?

चौधरी : हा-हा-हा-हा, थोड़ा और पागल हुए बिना वे न सुन पायेंगे।

अमल : चौधरीजी, मैं समझता था कि तुम मुझसे नाराज हो, तुम मुझे प्यार नहीं करते। तुम सचमुच राजा की चिट्ठी ले आओगे, यह मैंने कभी नहीं सोचा था—लाओ, मुझे अपने पैरों की धूल दे दो।

चौधरी : चलो, इस लड़के में श्रद्धा-भक्ति तो है ! अक्ल न सही, मन का अच्छा है।

अमल : जान पड़ता है, अब तक चार पहर बीत गए हैं। यह रहा—टन् टन् टन् टन् टन् टन् टन्। शाम का पहला तारा क्या निकल आया है फकीर ? मैं उसे देख क्यों नहीं पाता ?

दादा : इन लोगों ने खिड़की जो बन्द कर रखी है ! मैं उसे खोल देता हूँ।

(बाहरी दरवाजे पर दस्तक पड़ती है)

माधवदत्त : यह क्या है ? यह कौन है ? यह क्या हंगामा है ?

(बाहर से आवाज़ आती है)

दरवाज़ा खोलो !

माधवदत्त : कौन हो तुम लोग ?

(बाहर से)

दरवाजा खोलो !

माधवदत्त : चौधरीजी, ये डकैत तो नही हैं ?

चौधरी : कौन है रे ! पचानन चौधरी हूँ। पचानन की बोली सुनकर कौन टिकने वाला है ? वह चाहे जितना बडा डकैत हो—

माधवदत्त . (खिडकी से झाँककर) दरवाजा उन्होने तोड़ दिया है, इसीसे कुछ आहट नही मिलती थी।

(राजदूत का प्रवेश)

राजदूत : महाराज आज रात को आयँगे।

चौधरी : अब तो गजब हो गया !

अमल : कितनी रात बीते सिपाही जी, महाराज कितनी रात बीते आयँगे ?

राजदूत : दोपहर रात मे।

अमल : जब मेरा दोस्त पहरेदार नगर की ड्योढ़ी पर घण्टा बजायगा टन् टन् टन् टन् टन् टन्, तभी ?

राजदूत : हाँ, तभी। राजा ने अपने छोटे दोस्त को देखने के लिए अपने सबसे बड़े वैद्य को भेजा है।

(राजवैद्य का प्रवेश)

राजवैद्य : यह क्या ! चारो ओर सब-कुछ बन्द क्यों है ? खोल दो, खोल दो, जितने खिड़की-दरवाजे हैं, सब खोल दो।—

(अमल के गालों पर हाथ रखकर) क्यो बेटा, कैसे जान पड़ता है ?

अमल : बहुत अच्छा, बहुत ही अच्छा वैद्य जी ! अब मुझे कोई रोग नही है, ज़रा भी दर्द नही है। आ, सब-कुछ खुल गया है। मै तारो को देख पा रहा हूँ—अँधेरे के उस पार के सब तारो को।

राजवैद्य : आधी रात को जब राजा आयँगे तो क्या तुम बिछावन से उठकर उनके साथ जा सकोगे ?

अमल : हाँ हाँ, ज़रूर जा सकूँगा। बाहर निकल सकूँ तो मेरी जान बचे !

मैं राजा से कहूँगा कि इस अँधेरे आसमान में तुम मुझे ध्रुव तारा दिखला दो। जान पड़ता है कि उसे मैंने कितनी ही बार देखा है। लेकिन वह कौन-सा है, यह मै नही पहचान सकता।

राजवैद्य : वे तुम्हे सब-कुछ बता देंगे।—
(माधवदत्त से) इस घर को साफ करके, फूलो से सजाकर, राजा के आने लायक बना दो।—
(चौधरीजी की ओर इशारा करके) इस आदमी को यहाँ रखने से तो काम न चलेगा।

अमल : नही, नही, वैद्यराज जी ! ये तो मेरे दोस्त हैं। जब आप लोग नही आये थे, तब इन्होने ही राजा की चिट्ठी लाकर मुझे दी थी।

राजवैद्य : अच्छा बेटा, जब ये तुम्हारे दोस्त है तो ये भी इस कमरे मे रहे।

माधवदत्त (अमल के कान मे) बेटा, राजा तुम्हें प्यार करते है। वे आज खुद यहाँ आ रहे है। आज तुम उनसे कुछ माँग लो। तुम तो जानते ही हो, हम लोगों की हालत अच्छी नही है।

अमल . वह मैने तय कर लिया है फूफाजी, उसके लिए आप कोई चिन्ता न कीजिए।

माधवदत्त : तुमने क्या तय कर लिया है ?

अमल : मैं उनसे कहूँगा कि वे मुझे अपने डाकघर का डाकिया बना ले— मै देश-देश मे, घर-घर में उनकी चिट्ठियाँ बाँटा करूँगा।

माधवदत्त . (सिर पर हाथ मारकर) हाय रे मेरी किस्मत !

अमल : फूफाजी, अपने घर मे राजा आयँगे, उनके खाने-पीने की क्या तैयारी की है तुमने ?

राजदूत . उन्होने कहा है, तुम्हारे यहाँ तो वे चना-चबैना ही खायँगे।

अमल : चना-चबैना खायँगे ? चौधरीजी, तुमने तो पहले ही यह बात कह दी थी। तुम शायद राजा की सब बाते जानते हो। हम लोगो को तो कुछ मालूम ही नही था।

चौधरी : अगर किसी को मेरे घर भेज दो तो खाने की कुछ अच्छी-अच्छी चीजें—

राजवैद्य : कोई जरूरत नही है। अब तुम सब लोग शात हो जाओ। लो, इसे तो नीद भी आ गई। मैं इस बच्चे के सिरहाने बैठूँगा—

इसे नीद आ रही है। दिये की रोशनी बुझा दो—अब आसमान के तारो से ही रोशनी आवे। इसे नीद आ गई है।

माधवदत्त : (दादा से) दादा, तुम मूरत की तरह, हाथ जोड़कर, यों चुपचाप क्यो खड़े हो ? मुझे तो जाने कैसा डर-सा लग रहा है। यह सब जो देख रहा हूँ, यह क्या अच्छा लक्षण है ? ये लोग मेरे घर को अँधेरा क्यों किये दे रहे हैं ? तारो की रोशनी से हमारा क्या होगा ?

दादा : चुप रह अविश्वासी ! ऐसी बाते न बोल !

(सुधा का प्रवेश)

सुधा : अमल !

राजवैद्य : वह तो सो गया है।

सुधा : लेकिन मैं तो इसके लिए फूल लाई हूँ—इन्हे क्या मैं इसके हाथो मे न दे पाऊँगी ?

राजवैद्य : अच्छा, दे दो अपने फूल।

सुधा : यह कब जागेगा ?

राजवैद्य : अभी तुरंत राजा आकर इसे पुकारेगे।

सुधा : उस समय चुपके-चुपके तुम लोग इससे एक बात कह दोगे ?

राजवैद्य : क्या कहना होगा ?

सुधा : कहना कि 'सुधा तुम्हें भूली नही है।'

मुक्तधारा

अनुवादक :

भारतभूषण अग्रवाल

[उत्तरकूट का पर्वतीय प्रदेश। उत्तरभैरव-मन्दिर को जाने वाला पथ। दूर आकाश में एक अभ्रभेदी लौह-यन्त्र का सिरा दिखाई दे रहा है और उसके दूसरी ओर भैरव-मन्दिर की चोटी का त्रिशूल। पथ के किनारे की अमराई में राजा रणजित् का शिविर। आज अमावस्या है, भैरव-मन्दिर में आरती होगी, राजा वहाँ पैदल जायेंगे, अभी राह पर शिविर में विश्राम कर रहे हैं। उनके सभासद् यन्त्रराज विभूति ने अनेक वर्षों के प्रयत्न से लौह-यंत्र का बाँध खड़ा करके मुक्तधारा के झरने को बाँध लिया है। इस असाधारण कौशल को पुरस्कृत करने के लिए उत्तरकूट के समस्त जन भैरव-मन्दिर के प्रागण में उत्सव मनाने जा रहे हैं। भैरव-मन्त्र में दीक्षित संन्यासी दल स्तव-गान करता हुआ दिन-भर घूमता रहा है। उनमें से किसी के हाथ में धूपदान है, जिसमें धूप जल रही है; किसी के हाथ में शख है, किसी के घण्टा। गीत के बीच-बीच में ताल देता हुआ घण्टा बज रहा है।]

गान—१

जय भैरव ! जय शंकर !
जय जय जय प्रलयंकर
शंकर शंकर !

जय संशयभेदन
जय बन्धनछेदन
जय संकट-संहर
शंकर शंकर !

(संन्यासी-दल का गाते हुए प्रस्थान।)

(पूजा का नैवेद्य लिये हुए एक परदेशी पथिक का प्रवेश। वह उत्तरकूट के नागरिक से प्रश्न करता है।)

पथिक : आसमान मे यह क्या बनाकर खडा कर दिया है ? देखकर डर लगता है।

नागरिक : अरे, तुम नही जानते ? परदेसी हो शायद ? यह यन्त्र है।

पथिक : यन्त्र ? कैसा यन्त्र ?

नागरिक : हमारे यन्त्रराज विभूति लगातार पच्चीस वर्ष से इसे तैयार कर रहे थे। अभी हाल ही मे तो पूरा हुआ है। इसीलिए आज उत्सव हो रहा है।

पथिक : यह यन्त्र है किसलिए ?

नागरिक : मुक्तधारा झरने को बाँधने के लिए।

पथिक : बाप रे ! ऐसा लगता है जैसे किसी राक्षस की खोपड़ी हो। मास नदारद, खाली जबड़ा लटक रहा है। तुम्हारे उत्तरकूट के सिर-हाने कैसा मुँह फाड़े खड़ा है। रात-दिन इसे देखते-देखते तुम्हारे तो प्राण सूख जायँगे।

नागरिक : घबराओ मत, हमारे प्राणों मे काफ़ी दम है।

पथिक : हो सकता है, पर यह इस तरह चाँद-सूरज के सामने उघाड़कर रखने की चीज थोडे ही है। ढका रहता तो अच्छा होता। देखो न, मानो रात-दिन सारे आसमान को भडका रहा हो।

नागरिक : आज भैरव की आरती देखने नही चलोगे ?

पथिक : उसीके लिए तो निकला था। मैं तो हर साल इसी समय आता हूँ, लेकिन मन्दिर के ऊपर आसमान मे ऐसी आफ़त पहले कभी नही देखी। आज अचानक इस पर नज़र पड़ते ही मैं तो सिहर उठा। इसने तो मन्दिर की चोटी को भी पछाड़ दिया है, मानो उसे चुनौती दे रहा हो। मन तो नही करता, पर चलूं नैवेद्य चढ़ा आऊँ।

[प्रस्थान]

(एक स्त्री का प्रवेश। सिर पर एक सफ़ेद चादर है
जो उसके सारे अंगों से लिपटती हुई
जमीन पर लोट रही है।)

स्त्री : सुमन ! बेटा सुमन ! (नागरिक से) भैया, तुम सब तो लौट आए, पर मेरा सुमन तो अभी तक नही लौटा।

नागरिक : कौन हो तुम ?

स्त्री : मैं हूँ जनाई गाँव की अम्बा। हाय, मेरी आँखो का तारा, मेरी साँसो का सहारा, मेरा सुमन !

नागरिक : उसे क्या हुआ, बेटी !

अम्बा : न जाने कहाँ ले गए हैं उसे। मैं भैरव-मन्दिर मे पूजन करने गई थी। लौटी तो देखा, उसे ले गए हैं।

नागरिक : तब तो उसे मुक्तधारा का बाँध बाँधने के लिए ले गए होगे।

अम्बा : सुना है, उसे इसी राह से ले गए है, उधर, गौरीशिखर के पश्चिम

मे—वहाँ मेरी नज़र नही जाती, आगे का रास्ता ही दिखाई नही पड़ता।

नागरिक : तो रोने से क्या होगा ? हम लोग भैरव-मन्दिर की आरती देखने जा रहे है। आज हमारा बडा दिन है। तुम भी चलो !

अम्बा : नही भैया, उस दिन भी तो भैरव की आरती मे ही गई थी। तभी से मुझे पूजन को जाते डर लगता है। देखो, एक बात बताऊँ तुम्हे, हमारी पूजा भैरव बाबा तक नही पहुँच पाती—कोई बीच मे ही छीन लेता है।

नागरिक : कौन छीन लेता है ?

अम्बा : वही जो मेरी गोद से सुमन को ले गया। वह कौन है यह तो अभी नही जान पाई। सुमन ! बेटा सुमन !! मेरे लाल !!!

[दोनों का प्रस्थान]

(उत्तरकूट के युवराज अभिजित् ने यन्त्रराज विभूति के पास दूत भेजा है। मन्दिर की ओर जाते हुए विभूति से दूत का साक्षात्कार।)

दूत : यन्त्रराज विभूति ! मुझे युवराज ने भेजा है।

विभूति : क्या आदेश है उनका ?

दूत : इतने दिन से तुम हमारे मुक्तधारा के झरने पर बाँध बाँधने मे लगे थे। न जाने कितनी बार टूटा, न जाने कितने लोग रेत-मिट्टी मे दब गए, कितने बाढ मे बह गए। आखिर आज···

विभूति . उनका प्राण-दान व्यर्थ नही गया। मेरा बाँध बन चुका है।

दूत : शिवतराई की प्रजा को अभी यह बात नही मालूम। वह सोच ही नही सकती कि जो पानी उन्हे विधाता ने दिया है वह किसी मनुष्य के कारण बन्द भी हो सकता है।

विभूति : विधाता ने उसे तो केवल पानी दिया है, मुझे दी है पानी को बाँधने की शक्ति।

दूत : वहाँ के लोग निश्चिन्त है। वे नही जानते कि हफ्ते-भर बाद ही उनके खेत—

विभूति : खेतो की क्या चलाई ?

दूत : क्यो, उनके खेतो को सुखा डालना ही क्या तुम्हारे बाँध बाँधने का उद्देश्य न था ?

विभूति : मेरा उद्देश्य तो यह था कि मिट्टी-पत्थर-पानी का षड्यन्त्र भेदकर मानव-बुद्धि विजयिनी हो। किस किसान का कौन-सा भुट्टे का खेत सूख जायगा, यह सोचने का समय कहाँ था ?

दूत : युवराज ने पूछा है, क्या अब भी सोचने का समय नही हुआ ?

विभूति : नही। मैं तो यन्त्र-शक्ति की महिमा की बात सोच रहा हूँ।

दूत : क्षुधितों का क्रन्दन क्या तुम्हारा ध्यान भग न कर देगा ?

विभूति : नही। मेरा बाँध जल के वेग से नही टूटता, मेरा यन्त्र क्रन्दन के बल से नही डिगता।

दूत : तुम्हे अभिशाप का डर नही लगता ?

विभूति : अभिशाप ! सुनो, जब उत्तरकूट मे मज़दूर नही मिल रहे थे तब हमने राजाज्ञा से चण्डपत्तन के हर घर मे से अठारह साल के ऊपर की आयु के लड़के बुलवा लिये थे। उनमे से तो बहुत-से नही लौटे। मेरा यन्त्र न जाने वहाँ की कितनी माताओ के अभिशाप पर विजय पा चुका है। जो दैव-शक्ति से जूझ रहा हो, वह भला मनुष्य के अभिशाप को क्या गिनेगा ?

दूत : युवराज ने कहा है, कीर्ति-निर्माण करने का गौरव तो तुम पा ही चुके। अपनी कीर्ति को अपने हाथों मिटाने का गौरव उससे भी बडा होता है। अब वह भी प्राप्त करो।

विभूति : जबतक कीर्ति का निर्माण नही हुआ था, तब तक वह मेरी थी। अब तो वह सारे उत्तरकूट की है। उसे नष्ट करने का अब मुझे कोई अधिकार नही।

दूत : युवराज ने कहा है, नष्ट करने का अधिकार वे स्वय ले लेंगे।

विभूति : स्वय उत्तरकूट के युवराज ने ऐसी बात कही ? वे क्या हमारे नही ? वे क्या शिवतराई के है ?

दूत : वे कहते है, इस बात का प्रमाण देना जरूरी है कि उत्तरकूट मे केवल यन्त्र का राज्य नही है, वहाँ देवता भी बसते है।

विभूति : मुझ पर तो इस बात का प्रमाण देने की जिम्मेदारी है कि यन्त्र के बल पर हम स्वय देव-पद प्राप्त कर सकते हैं। युवराज से कहना, मैने ऐसा कोई रास्ता नही छोड़ा जो मेरे इस बाँध-यन्त्र की मुट्ठी को जरा भी ढीला कर सके।

दूत : नाश के देवता हमेशा बड़े रास्ते से नही आते-जाते। उनके लिए जो ढेरों छिद्र-पथ होते है उन पर किसी की नज़र भी नही पड़ती।

विभूति : (चौंककर) छिद्र ? कैसा छिद्र ? छिद्र के बारे मे तुम क्या जानते हो ?

दूत : मैं क्या जानूँ ! जिन्हे जानना हो वे जाने।

[दूत का प्रस्थान]

(उत्तरकूट के नागरिक उत्सव मनाने मन्दिर जा रहे है। विभूति को देखकर)

पहला नागरिक वाह यन्त्रराज, तुम भी खूब हो ! कब चकमा देकर आगे निकल आए, पता ही न चला।

दूसरा नागरिक यह तो इसकी हमेशा की आदत है। गुपचुप-गुपचुप आगे बढता यह कब सबको पीछे छोड़ जाता है, पता ही नहीं चलता। अपने चबुआ गाँव का वह घुटमुण्डा छोकरा ही तो है यह विभूति। कैलास गुरु एक साथ हम सबके कान मला करते थे। न जाने कब इसने हमे पीछे छोडकर इतना बड़ा काण्ड कर डाला।

तीसरा नागरिक : अरे गन्नरू, डलिया लिये हुए इस तरह मुँह फाड़े क्यो खडा है ? विभूति को और कभी नही देखा क्या ? ला, मालाएँ निकाल, पहना दूँ।

विभूति : बस, बस, रहने दो।

तीसरा नागरिक . वाह, रहने क्यों दे ? तुम जिस तरह अचानक बड़े हो गए हो, उसी तरह अगर तुम्हारी गर्दन भी अचानक ऊँट की तरह बड़ी हो जाती, और उत्तरकूट के सारे लोग मिलकर तुम्हारा गला मालाओ से लाद देते—तो तुम जँच जाते।

दूसरा नागरिक · भई, हरीश नगाड़िया अभी तक नही आया।

पहला नागरिक . बेटा काहिलो का उस्ताद है—उसकी पीठ की चमड़ी पर नगाड़े की सण्टी पड़े तो शायद—

तीसरा नागरिक · फालतू बात है, सण्टी लगाने मे उसके हाथ हम लोगों से ज्यादा मजबूत हैं।

चौथा नागरिक मैंने सोचा था कि विशाई सामन्त का रथ माँगकर आज विभूति

दादा की रथयात्रा करायँगे। पर सुना है, आज तो राजा भी पैदल ही मन्दिर मे जाने वाले है।

पाँ० नाग० अच्छा ही हुआ। सामन्त का रथ तो वस पूरा दशरथ समझो। रास्ते में वात-वात पर उसके दस टूक होने लगते है।

ती० नाग० : हाःहाःहाःहाः ! दशरथ ? अपना लम्बू कभी-कभी ऐसी वढ़िया बात कहता है कि बस। दशरथ !

पाँ० नाग० : तो यो ही कहता हूँ क्या ! वेटे के व्याह मे वही रथ मँगाया था। चढा तो कम होऊँगा, खीचना वहुत पडा।

चौ० नाग० : एक काम करो। विभूति को कन्धो पर उठाकर ले चले।

विभूति . अरे ! अरे ! क्या करते हो, क्या करते हो !

पाँ० नाग० . वाह, वाह, ठीक तो है। उत्तरकूट की गोद मे तुम्हारा जन्म हुआ है, पर आज तुम उसकी गर्दन पर चढ़ बैठे हो। तुम्हारा सिर सवके ऊपर निकल गया है।

(कन्धों पर लाठियां सजाकर उन पर विभूति को उठा लेते हैं।)

सब : जय, यत्रराज विभूति की जय !

गान—२

नमो यन्त्र, नमो यन्त्र, नमो यन्त्र !
तुम चक्रमुखर मन्द्रित, तुम वज्र वह्नि-वन्दित
तव वस्तुविश्ववक्षोदंश ध्वंसविकट दन्त।
तव दीप्त-अग्नि-शतशतघ्नी-विघ्न-विजय पन्थ।
तव लौहगलन शैलदलन अचल-चलन मन्त्र।
कभी काष्ठ-लोष्ठ-इष्टक-दृढ़-घनपिनद्ध काया
कभी भूतल-जल-अन्तरिक्ष-लंघन लघु माया
तव खन-खनित्र-नख-विदीर्ण क्षिति विकीर्ण अन्त्र
तव पंचभूत-बंधनकर इन्द्रजाल तन्त्र।

(शिविर की ओर उत्तरकूट के राजा रणजित् और उनके मंत्री का प्रवेश।)

रणजित् : तुम तो किसी भी तरह शिवतराई की प्रजा को वश में नही कर पाए। इतने दिन बाद मुक्तधारा के पानी को घेरकर विभूति ने उन्हें ठीक करने का उपाय निकाल लिया है। पर मन्त्री, तुम्हारे मन मे तो कोई उत्साह नही दिखाई पड़ता। ईर्ष्या हो रही है ?

मन्त्री : क्षमा करे महाराज ! हाथ में फावड़ा-कुदाल लेकर मिट्टी-पत्थर से कुश्ती लड़ना अपना काम नही है। हमारा अस्त्र है राजनीति, हमारा सरोकार मानव-मन से है। शिवतराई के शासन का भार युवराज को सौंपने की सलाह मैंने ही दी थी। उससे जो बाँध बँधता वह इस बाँध से कम न होता।

रणजित् : पर उससे लाभ क्या हुआ ? दो साल का लगान बकाया है। ऐसे अकाल तो वहाँ पड़ते ही रहते है। उससे राजा की उगाही थोड़े ही रुकती है।

मन्त्री : लगान से भी ज्यादा दुर्लभ चीज़ मिलने वाली थी कि आपने उन्हे लौट आने का आदेश दे दिया। राज-काज मे छोटों की अवज्ञा करना उचित नही। याद रखे महाराज, दुःख जब दुस्सह हो जाता है तो उसी दु ख के बल पर छोटे लोग बड़ो को पछाडकर बडे हो जाते है।

रणजित् : तुम्हारी मन्त्रणा का स्वर पल-पल बदलता रहता है। तुम्हीने तो बार-बार कहा था कि ऊपर चढ़कर नीचे दबाना आसान होता है, और विदेशी प्रजा को इस तरह दबाए रखना ही राजनीति है। कहा था कि नही ?

मन्त्री : कहा था। उस समय स्थिति और थी। मेरी मन्त्रणा समय के अनुकूल थी। पर अब—

रणजित् : मेरी बिलकुल इच्छा न थी कि युवराज को शिवतराई भेजूं।

मन्त्री : क्यों महाराज ?

रणजित् : दूर के प्रजा-जनों के पास जाकर उनके साथ उठने-बैठने से उनका डर निकल जाता है। प्रीति से वश मे किया जाता है अपनो को, पराये वश मे रहते हैं डर बनाए रखने से।

मन्त्री : महाराज, युवराज को शिवतराई भेजने का असली कारण आप

भूल रहे हैं। कुछ दिनों से लगता था, उनका मन बड़ा उद्विग्न है। हमें सन्देह हुआ : शायद उन्हें किसी सूत्र से यह ज्ञात हो गया है कि उनका जन्म राजमहल में नहीं हुआ, वे मुक्तधारा झरने के तले पड़े पाए गए थे। इसीलिए, उनका मन बहलाने के लिए—

रणजित् : सो तो जानता हूँ—इधर वह प्राय. रात में झरने पर जाकर लेटा रहता था। खबर मिली तो मैं एक बार रात के समय वहाँ गया, पूछा : क्या बात है अभिजित्, यहाँ कैसे ? बोला : इस जल के शब्द में मुझे अपनी मातृ-वाणी सुनाई पड़ती है।

मन्त्री : मैंने उनसे पूछा था : तुम्हें क्या हुआ है युवराज ? आजकल प्रायः तुम राजमहल में दिखाई नहीं पड़ते। बोले : मुझे संवाद मिला है कि मैं धरती पर राह बनाने आया हूँ।

रणजित् : मेरा यह विश्वास उठता जा रहा है कि इस लड़के में चक्रवर्ती राजाओं के लक्षण हैं।

मन्त्री : इन दिव्य लक्षणों की बात तो महाराज के दादागुरु अभिराम स्वामी ने कही थी।

रणजित् : भूल कर बैठे वे। इसके मारे तो मेरी लगातार हानि हो रही है। शिवतराई का ऊन कहीं विदेश की हाट में न चला जाय, इसी मारे दादा-परदादा के जमाने से ही नन्दि-संकट का रास्ता बन्द था। अभिजित् ने वही रास्ता खोल दिया है। उत्तरकूट में तो अब अन्न-वस्त्र दुर्लभ हो जायगा।

मन्त्री : अभी कच्ची उमर है न। युवराज केवल शिवतराई वालों के खयाल से···

रणजित् . लेकिन यह तो अपनों ही के विरुद्ध विद्रोह हुआ। शिवतराई का वह बेटा धनजय वैरागी, जो प्रजा को भड़काता फिरता है, इसमें जरूर उसका भी हाथ है। अबकी बार कण्ठी समेत उसका कण्ठ बन्द करना पड़ेगा। उसे कैद में डाल देना चाहिए।

मन्त्री . महाराज की इच्छा का प्रतिवाद करने का साहस नहीं करता। पर आप जानते ही हैं, ऐसे भी दुर्योग होते हैं जिन्हें रोक रखने की बजाय खुला छोड़ देना ही निरापद होता है।

रणजित् : खैर, उसकी चिन्ता न करो !

मन्त्री · मैं चिन्ता नही करता। महाराज चिन्ता करें, यही निवेदन है।

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी : मोहनगढ़ के काकाजी—महाराज विश्वजित् पधार रहे हैं।

रणजित् : एक ये भी है। अभिजित् को बिगाड़ने वालों मे ये सबसे आगे है। जो लोग आत्मीय के रूप मे पराए होते है वे कुबड़े के कूबड़ की तरह होते है। उनसे किसी तरह पीछा नही छूटता। न काटकर फेंकते बनता है, न ढोते। यह आवाज काहे की है ?

मन्त्री : भैरव-पन्थियो का दल मन्दिर की परिक्रमा को निकला है।

(भैरवपन्थियों का प्रवेश और गान)

गान—३

तिमिर-हृद्विदारण
जलदग्निनिदारुण

मरु-श्मशान-संचर
शंकर शंकर !

वज्रघोष-वाणी
रुद्र शूल-पाणी

मृत्यु-सिन्धु-संतर
शंकर शंकर !

[प्रस्थान]

(रणजित् के काका, मोहनगढ के महाराज विश्वजित् का प्रवेश। उनके केश, वस्त्र और उष्णीष सब सफेद है)

रणजित् : प्रणाम काकाजी-महाराज, आप आज उत्तरभैरव के मन्दिर की पूजा मे योग देने पधारेंगे, इस सौभाग्य की मुझे आशा न थी।

विश्वजित् . मैं तो यह जताने आया हूँ कि उत्तरभैरव आज की पूजा ग्रहण नही करेंगे।

रणजित् : आपके ये कुवाक्य हमारे आज के महोत्सव को—

विश्वजित् : महोत्सव किसलिए ? विश्व-भर के तृषितो के लिए देवाधिदेव ने अपने कमण्डलु से जो जल-धार ढाली है उस मुक्तजल को तुमने बाँध क्यों डाला है।

अम्बा : तुम्हारी आशा फले बेटा ! मैं भैरव मंदिर की डगर में उसकी आशा लगाए खड़ी रहूँगी। सुमन !

[प्रस्थान]

(पास के पेड़ के नीचे विद्यार्थियों के दल के साथ उत्तरकूट के गुरुजी का प्रवेश)

गुरु : खाया, खाया, लगता है बस अब बेंत खाया। खूब गला फाड़कर बोलो जय राजराजेश्वर।

विद्यार्थीदल : जय राजरा—

गुरु : (हाथ के पास खड़े दो-एक लड़कों को धौल जमाते हुए) जेश्वर !

विद्यार्थीदल : जेश्वर !

गुरु : श्री श्री श्री श्री श्री

विद्यार्थीदल : श्री श्री श्री—

गुरु : (ठेलते हुए) पाँच बार।

विद्यार्थीदल : पाँच बार।

गुरु : कम्बख्त बन्दरो ! बोलो श्री श्री श्री श्री श्री—

विद्यार्थीदल : श्री श्री श्री श्री श्री—

गुरु : उत्तरकूटाधिपति की

विद्यार्थीदल : उत्तरकूटा—

गुरु : धिपति की

विद्यार्थीदल : धिपति की

गुरु : जय !

विद्यार्थीदल : जय !

रणजित् : तुम लोग किधर जा रहे हो ?

गुरु : महाराज अपने यन्त्रराज विभूति को सिरोपा प्रदान करेंगे, इसलिए लड़कों को ले जा रहा हूँ तमाशा दिखाने। मैं ऐसा कोई अवसर नहीं छोड़ना चाहता जिससे ये लोग बचपन में ही उत्तरकूट के गौरव को अपना गौरव समझ सकें।

रणजित् : विभूति ने क्या किया है, ये जानते हैं न ?

लड़के : (उछलकर ताली बजाते हुए) जानते हैं, शिवतराई का पानी बन्द कर दिया है।

रणजित् : क्यो वन्द कर दिया है ?
लड़के : (उत्साह से) उनका दमन करने के लिए।
रणजित् : दमन किसलिए ?
लड़के : वे लोग बुरे है न।
रणजित् : क्यो बुरे है ?
लड़के : वे लोग बहुत बुरे है, बहुत ही बुरे है, सवको मालूम है।
रणजित् : क्यो बुरे हैं, यह नही मालूम ?
गुरु : मालूम क्यो नही महाराज। क्यो रे, तुमने पढा नही ? किताब मे नही पढा ? उन लोगो का धर्म बुरा है।
लडके : हाँ, हाँ, उन लोगो का धर्म बहुत बुरा है।
गुरु : और, हमारी तरह उनकी—बोलो न, क्या—(नाक दिखाता है)
लड़के : नाक ऊँची नही है।
गुरु : अच्छा, अपने ज्योतिषीजी ने क्या प्रमाणित किया है ? नाक ऊँची हो तो क्या होता है ?
लड़के : बहुत ऊँची जाति होती है।
गुरु : ऐसे लोग क्या करते है ? वताओ न, पृथ्वी पर —वोलो—वे ही सब पर विजय प्राप्त करते है। है न ?
लडके : हॉ, विजय प्राप्त करते है।
गुरु : क्या उत्तरकूट के लोग कभी युद्ध मे हारे है, पता है ?
लड़के : कभी नही।
गुरु : हमारे दादाम-हाराज प्राणजित् ने दो सौ, तिरानवे सैनिक लेकर इकतीस हजार साढे सात सौ दक्षिणी वर्बरो को खदेड़ दिया था न ?
लड़के : हाँ, खदेडा था।
गुरु : निश्चय जाने महाराज, जो अभागे उत्तरकूट के बाहर अपनी माता की कोख मे आए है, उनके लिए ये लड़के एक दिन विपत्ति वन जायँगे। ऐसा न हो तो मेरा गुरुत्व मिथ्या समझिये। हमारी जिम्मेदारी कितनी वडी है यह मैं पल-भर को भी नही भूलता। हमी लोग तो आदमी वनाते हैं जिनसे आपके मन्त्रीगण अपना काम चलाते हैं। फिर भी उन्हे क्या मिलता है और हमे क्या

मिलता है, कभी मिलान करके देखें।

मन्त्री . लेकिन तुम्हारा पुरस्कार तो ये विद्यार्थी ही है।

गुरु बडो सुन्दर बात कही आपने मन्त्री जी, हमारा पुरस्कार तो ये विद्यार्थी ही है। आ हा हा ! लेकिन खाद्य-सामग्री बड़ी महँगा हो गई है—अब यही देख लीजिए न, गावा घी जो पहले—

मन्त्री : अच्छा ठीक है, गावा घी की तुम्हारी बात पर विचार करूँगा। अभी जाओ, पूजन का समय हो रहा है।

(जयकार करते हुए विद्यार्थियों को लेकर गुरुजी का प्रस्थान)

रणजित् : तुम्हारे इस गुरु की खोपडी मे और कोई घी नही, बस गावा घी ही भरा है।

मन्त्री · पचगव्य में से एक न एक तो जरूर है। किन्तु महाराज, यही लोग काम आते हैं। इसे जैसा बताया है, ठीक वैसा ही करता जा रहा है। बुद्धि ज्यादा हो तो मशीन की तरह काम नही हो पाता।

रणजित् : मन्त्री, यह क्या है आसमान मे ?

मन्त्री : भूल गए महाराज, यही तो है विभूति के यन्त्र का सिरा।

रणजित् इतना साफ तो पहले कभी नही दिखाई पड़ा।

मन्त्री : सवेरे जो तूफान आया था उससे आसमान साफ हो गया है, इसीलिए दिखाई पड़ रहा है।

रणजित् · देखा, पिछवाडे से सूर्यदेव कैसे क्रुद्ध होकर निकल रहे है। ऐसा लग रहा है मानो किसी राक्षस ने मुक्का तान लिया हो। इसे इतना ऊँचा न करते तो अच्छा होता।

मन्त्री ऐसा जान पडता है मानो आसमान की छाती में बरछी बिंध गई हो।

रणजित् : चलो, मंदिर जाने का समय हो गया।

[दोनों का प्रस्थान।

(उत्तरकूट के नागरिकों के दूसरे दल का प्रवेश)

प० नागरिक · देखा, आजकल विभूति हम लोगों से कैसा, कतराकर चलता है। यह बात वह मानो अपनी चमडी से खुरचकर फेंकना चाहता

है कि वह हमीमे रहकर बड़ा हुआ। एक दिन पता चलेगा कि तलवार का म्यान से बढ जाना ठीक नही।

दूसरा नागरिक. कुछ भी कहो भाई, विभूति ने उत्तरकूट का नाम रख लिया।

पहला : अरे, रहने भी दे। उसके बारे मे तुम बहुत लम्बी-चौड़ी बाते करने लगे हो। एक बॉध बॉधने मे ही उसके हाथ-पैर फूल गए। कम-से-कम दस बार तो टूट चुका है।

तीसरा : और कौन जाने फिर टूट जाय।

पहला : देखा है न, बॉध के उत्तर की ओर वह टीला ?

दूसरा : क्यों, क्यो, क्या हुआ ?

तीसरा : क्या हुआ ? यह भी नही जानते ? जो देखता है वही कहता है—

दूसरा : क्या कहता है भैया ?

पहला : क्या कहता है ? तू बड़ा बनता है रे ! यह भी भला पूछने की बात है ? ऊपर से नीचे तक—अब क्या कहूँ—

दूसरा . फिर भी, माजरा क्या है, ज़रा साफ-साफ बता न—

पहला : तू तो गजब करता है रजन ! जरा सब्र कर न। सब समझ में आ जायगा जब एकदम फट से—

दूसरा : सर्वनाश ! कहते क्या हो दादा ! एकदम फट से ?

पहला : हॉ भैया, झगडू से पूछ ले। वह खुद जॉच-पड़ताल कर आया है।

दूसरा : झगडू मे यही तो बात है। उसका मिजाज ठण्डा है। और लोग जब वाह-वाह करते रहते है, तब वह न जाने कहॉ से पैमाना निकालकर नापने बैठ जाता है।

तीसरा : अच्छा भैया, कोई-कोई कहते हैं न कि विभूति के पास जितनी भी विद्या है, उसने—

पहला : वेंकट वर्मा से चुराई है, मैं खुद जानता हूँ। हॉ भैया, असली गुणी तो वही था। इतना बडा सिर ! बस, कुछ न पूछो। और मजा यह कि विभूति को तो मिला शिरोपा, और वह बेचारा भूखो ही मर गया।

तीसरा . क्या खाना न मिलने के ही मारे मर गया ?

पहला : अरे ? अब इससे क्या कि खाना न मिलने से मरा या किसी के हाथ का दिया कुछ खाने से मरा ! और फिर भैया, क्या जाने कब कौन किधर से—निन्दकों की तो कमी नहीं। यहाँ के लोगों को किसी की बढ़ोतरी फूटी आँखों नहीं सुहाती।

दूसरा : खैर, तुम जो भी कहो, पर आदमी वह—

पहला : ओ हो, तो क्यों न हो भला ? किस मिट्टी में उसका जन्म हुआ है, सोच तो सही। उसी चबुआ गाँव में मेरे बूढ़े दादा रहा करते थे, उनका नाम सुना है न ?

दूसरा : बस बस। उनका नाम भला उत्तरकूट में कौन नहीं जानता। वे तो वही थे न—अरे वही, क्या नाम—

पहला : हाँ, हाँ, वही—भास्कर। सुँघनी बनाने वाला इतना बड़ा उस्ताद मुलुक-भर में नहीं हुआ। उनके हाथ की सुँघनी के बिना राजा शत्रुजित् एक दिन भी नहीं रह पाते थे।

दूसरा : ये बातें तो होती रहेंगी, अब चल। हम ठहरे विभूति के अपने गाँव के आदमी, पहले हमारे हाथ की माला पहनेगा, तब कुछ और। और फिर हमी लोग तो बैठेंगे उसके दाएँ।

(नेपथ्य से)

उधर मत जाओ भैया, उधर मत जाओ। लौट आओ !

दूसरा : यह लो, बुढऊ वटुक आ पहुँचा।

[वटुक का प्रवेश]

(तन पर फटा कम्बल, हाथ में टेढ़ी-मेढ़ी लाठी, बाल छितरे हुए।)

पहला नागरिक : कहो वटु किधर चले ?

वटु : सावधान, बेटा, सावधान ! उधर मत जाना। अभी समय है, लौट जाओ।

दूसरा नागरिक : क्यों भला ?

वटु : बलि चढ़ेगी, नर-बलि। मेरे दो-दो जवान नातियों को जबरदस्ती ले गए। फिर वे नहीं लौटे।

तीसरा : किस पर बलि चढ़ायेंगे, काका ?

वटु : तृष्णा पर, तृष्णा दानवी पर।

दूसरा : यह कौन है भला ?

बटु : वह ज्यो-ज्यों खाती है त्यो-त्यों और माँगती है। घी पर पली आग की लपट की तरह उसकी सूखी जीभ बराबर बढ़ती जाती है।

पहला : पगला ! हम तो उत्तरभैरव के मन्दिर मे जा रहे हैं—वहाँ तृष्णा दानवी कहाँ ?

बटु : क्या तुम्हे नहा पता ? भैरव को तो वे आज मन्दिर से विदा करने वाले है। तृष्णा बैठेगी वेदी पर।

दूसरा : चुप, चुप पगले ! उत्तरकूट के लोगो ने सुन लिया तो तेरा कचूमर निकाल डालेगे।

बटु : वे तो मुझ पर धूल फेकते है, लड़के ढेले मारते है—कहते है, तेरे नातियो ने प्राण गँवाए, यह तो उनका सौभाग्य है।

पहला : झूठ तो नही कहते।

बटु : नही कहते झूठ ? प्राणों के बदले अगर प्राण न मिले, मृत्यु द्वारा अगर मृत्यु को ही बुलाया जाय, तो फिर इतनी बड़ी हानि भैरव क्यो सहेंगे ? सावधान, बेटा सावधान। उधर मत जाना !

[प्रस्थान]

दूसरा . देखो दादा, मेरे तो रोंगटे खड़े हो गए।

पहला : तू बड़ा डरपोक है रंजू। चल, चल।

[सबका प्रस्थान]

(युवराज अभिजित् और राजकुमार सजय का प्रवेश)

संजय : समझ मे नही आता युवराज, तुम राजमहल छोड़कर क्यों जा रहे हो ?

अभिजित् : सारी बाते तुम नही समझ पाओगे। मैं तो यही संवाद सुनता हुआ धरती पर आया हूँ कि मेरी जीवन-धारा राजमहल की देहरी लाँघकर चल देगी।

सजय : कुछ दिनो से मैं तुम्हे उद्विग्न देख रहा हूँ। जिस बन्धन में तुम हमारे साथ बँधे हो वह तुम्हारे मन में ढीला होता जा रहा था। आज क्या वह टूट गया ?

अभिजित् : वह देखो सजय ! गौरीशकर के ऊपर सूर्यास्त की छवि। मानो कोई अग्नि-विहग मेघो के पंख फैलाए रात्रि की ओर उड़ा जा रहा हो। सूर्यास्त ने आकाश मे मेरी पथ-यात्रा का चित्र आँक दिया है।

संजय : देखते नही युवराज। उस यन्त्र का सिरा सूर्यास्त के मेघ की छाती चीरे खड़ा है मानो उड़ते हुए पक्षी की छाती में बाण बिंध गया हो, और वह अपने पख झुकाए रात्रि के गर्त्त मे गिरा जा रहा हो। मुझे यह नही सुहाता। विश्राम का समय हो गया है। युवराज चलो राजमहल मे।

अभिजित् : जहाँ बाधा हो वहाँ कैसा विश्राम ?

सजय : राजमहल मे तुम्हे बाधा है, यह बात इतने दिनो बाद तुमने कैसे जानी ?

अभिजित् : ज्यो ही सुना कि उन्होंने मुक्तधारा पर बाँध बाँधा है, त्यो ही।

संजय तुम्हारी इस बात का अर्थ मै नही पा सका।

अभिजित् : मनुष्य के अन्तर का रहस्य विधाता कही-न-कही बाहर लिख रखते हैं; मेरे अन्तर का सवाद इसी मुक्तधारा मे है। जब उसीके पैर मे उन्होने लोहे की बेड़ी पहना दी, तभी अचानक चौककर मैं समझ गया कि उत्तरकूट का सिहासन ही मेरी जीवन-धारा का बाँध है। उसीकी राह खोलने के लिए मैं राह पर निकल पड़ा हूँ।

संजय . युवराज, मुझे भी अपना सगी बना लो।

अभिजित् : नही भाई, अपनी राह तुम्हे स्वय खोजनी होगी। अगर मेरे पीछे चले तो मैं ही तुम्हारी राह की रुकावट बन जाऊँगा।

सजय . इतने कठोर मत बनो, मुझे चोट पहुँचती है।

अभिजित् : तुम मेरा मन पहचानते हो, इसलिए चोट खाकर भी तुम मुझे समझ सकोगे।

संजय : कौन तुम्हे टेर रहा है जो तुम चल पडे हो, इस बारे मे कुछ नही पूछना चाहता। लेकिन युवराज, यह जो सन्ध्या हो आई है, राज-महल मे वन्दीजनो ने यह जो दिवसावसान का गीत छेड़ दिया है, इनकी भी तो कोई टेर है ? जो कठिन है उसका गौरव भले ही हो, पर जो मधुर है उसका भी तो मूल्य है।

अभिजित् : भाई, उसीका मूल्य चुकाने के लिए तो कठिन की साधना है।

सजय : सवेरे पूजा करने तुम जिस आसन पर बैठते हो, याद है न, उसके सामने उस दिन एक श्वेत कमल देखकर तुम दग रह गए थे ?

तुम्हारे जागने से पहले ही भोर वेला मे कौन चुपचाप वह कमल लाकर रख गया, उसने पता ही न चलने दिया कि वह है कौन। पर इतनी-सी वात में भी कितनी सुधा भरी है, क्या आज इसका ध्यान नही आता ? वह भीरु, जो अपने को गोपन रखकर भी अपनी पूजा को गोपन न रख सका—क्या उसका चेहरा तुम्हें याद नही आता ?

अभिजित् · आता क्यो नही। तभी तो मैं इस वीभत्स को नही सह पाता जो इस धरती के सगीत को रुद्ध करके आकाश मे लोहे के दाँत गड़ाए अट्टहास कर रहा है। स्वर्ग पसन्द है तभी तो दैत्य से जूझने के लिए जाने मे मुझे कोई हिचक नही होती।

संजय : गोधूलि का आलोक उस नील पर्वत पर मूच्छित हो गया है। उससे उठते क्रन्दन की कोई छाया क्या तुम्हारे मन मे नही पहुँचती ?

अभिजित् : हाँ, पहुँचती है। मेरी छाती भी क्रन्दन से भरी हुई है। मै कठोरता पर गर्व नही करता। वह देखो, वह पक्षी जो देवदारु वृक्ष की चोटी की टहनी पर अकेला वैठा है—वह घोसले मे जायगा या अन्धकार को चीरता हुआ दूर प्रवास के वन की यात्रा करेगा, नही जानता; लेकिन वह जो चुपचाप सूर्यास्त के आकाश की ओर एकटक निहार रहा है उसकी इस टकटकी का स्वर मेरे हृदय मे ध्वनित हो रहा है। कितनी सुन्दर है यह पृथ्वी ! जिस-जिसने मेरे जीवन को मधुमय वनाया है, आज मैं उन सवको नमस्कार करता हूँ।

(वटु का प्रवेश)

वटु : जाने नही दिया, मारकर लौटा दिया।

अभिजित् : क्या हुआ वटु, तुम्हारे माथे से तो खून वह रहा है !

वटु · मैं सवको सावधान करने निकला था. उधर मत जाओ, लौट जाओ।

अभिजित् . क्यो, वात क्या है ?

वटु : नही जानते युवराज ? आज वे यन्त्रवेदी पर तृष्णा राक्षसी की स्थापना करेगे न ! नर-वलि चढाना चाहते है।

सजय : यह क्या कह रहे हो ?

वटु . इसी वेदी को रचते समय उन्होने मेरे दो नातियो का खून बहाया था। मैने सोचा था, पाप की वेदी अपने-आप टूटकर गिर जायगी। पर कहाँ, अभी तक तो टूटी नही, भैरव जागे ही नही।

अभिजित् : टूटेगी। समय आ गया है।

वटु . (पास जाकर हौले-हौले) तव तो तुमने सुना है शायद ? भैरव का आह्वान सुना है ?

अभिजित् सुना है।

वटु . सर्वनाश ! तव तो तुम्हारा छुटकारा नही।

अभिजित् : विलकुल नही।

वटु · देख रहे हो न, मेरे सिर से वहता यह रक्त, अगो मे भरी यह धूल ? सह सकोगे युवराज, जव छाती फटने लगेगी ?

अभिजित् . भैरव की कृपा से सह लूँगा।

वटु जव हर तरफ शत्रु-ही-शत्रु होगे ? अपने ही लोग जव धिक्कारने लगेगे ?

अभिजित् . सहना ही होगा।

वटु : तो फिर कोई डर नही।

अभिजित् . नही, कोई डर नही।

वटु : वहुत ठीक। तो फिर वटु को याद रखना। मैं भी इसी राह पर हूँ। भैरव ने मेरे माथे पर जो यह रक्त-तिलक लगाया है, इससे मुझे अँधेरे मे भी पहचान लोगे।

(वटु का प्रस्थान)

(राजप्रहरी उद्धव का प्रवेश)

उद्धव · नन्दि-सकट का रास्ता क्यो खोल दिया युवराज ?

अभिजित् : शिवतराई के लोगो को हमेशा के दुर्भिक्ष से वचाने के लिए।

उद्धव महाराज तो उनकी मदद के लिए तैयार है, उनके भी तो दया-माया है।

अभिजित् . दाएँ हाथ की कृपणता से रास्ता वन्द कर लेने के वाद वाएँ हाथ की उदारता से उन्हे नही वचाया जा सकता। इसीलिए, मैंने उनके

लिए अनाज के यातायात का रास्ता खोल दिया है। दया के आसरे रहने की दीनता मुझसे नही देखी जाती।

उद्धव : महाराज का कहना है, नन्दि-संकट का गढ तोड़कर तुमने उत्तर-कूट की पत्तल मे छेद कर दिया है।

अभिजित् : मैंने तो उत्तरकूट को हमेशा शिवतराई के अन्न के भरोसे रहने की दुर्गति से मुक्ति दी है।

उद्धव : दु:साहस का काम किया है। महाराज को खवर मिल चुकी है। इससे अधिक मैं नही वता सकता। हो सके तो अभी निकल जाओ, राह मे रुककर तुमसे वात करना भी निरापद नही है।

[उद्धव का प्रस्थान]

(अम्वा का प्रवेश)

अम्वा : सुमन ! वेटा सुमन ! उसे जिधर ले गए हैं उधर क्या तुममे से कोई नही गया ?

अभिजित् : तुम्हारे वेटे को ले गए हैं ?

अम्वा : हाँ उधर पश्चिम की तरफ, जहाँ सूरज डूवता है, दिन चुक जाता है।

अभिजित् : मै उधर ही जा रहा हूँ।

अम्वा : तो इस दुखिया की एक वात याद रखोगे वेटा ! जव उससे भेंट हो तो कहना, तुम्हारी माँ वाट देख रही है।

अभिजित् : कह दूँगा।

अम्वा : जुग-जुग जियो वेटा ! सुमन, सुमन !

(प्रस्थान)

[भैरवपंथियों का प्रवेश और गान]

गान—४

जय भैरव ! जय शंकर
जय जय जय प्रलयंकर
जय संशयभेदन जय बन्धनछेदन
जय संकटसहर शंकर शंकर !

[प्रस्थान]

(सेनापति विजयपाल का प्रवेश)

विजयपाल : युवराज, मेरा विनम्र अभिवादन ग्रहण करे। महाराज के पास से आ रहा हूँ।

अभिजित् : क्या आदेश है उनका ?

विजयपाल : एकान्त में बताऊँगा।

संजय : (अभिजित् का हाथ पकड़कर) एकान्त मे क्यो ? क्या मुझसे भी छिपाना है।

विजयपाल : ऐसा ही आदेश हैं। युवराज तनिक राजशिविर मे पधारे।

सजय : मैं भी साथ चलूँगा।

विजयपाल : महाराज यह नही चाहते।

संजय : तो फिर मैं यही बाट देखता रहूँगा।

[अभिजित् को साथ लेकर विजयपाल का शिविर की ओर प्रस्थान]

(बाउल का प्रवेश)

गान—५

वह अब नहीं लौटेगा, नही लौटेगा, नहीं लौटेगा। नाव तूफ़ान के वेग में बह गई है, अब किनारे नहीं लगेगी। न जाने पगले को किसने टेरा, वह चला गया पीछे क्रन्दन छोड़कर। अब उसे तेरा बाहु-बन्धन नही टेर सकेगा।

[प्रस्थान]

[फूल वाली का प्रवेश]

फूल वाली . बेटा, उत्तरकूट वाला विभूति कौन सा है ?

संजय : क्यो, उससे तुम्हे क्या काम है ?

फूल वाली : परदेश की हूँ बेटा, देवतली से आ रही हूँ। सुना है, उत्तरकूट के लोग उसकी राह मे पुष्प-वर्षा कर रहे है। कोई महात्मा है शायद ? बाबा के दर्शन करने की सोचकर अपनी फुलवारी के फूल लाई हूँ।

सँजय : महात्मा न सही, बुद्धिमान तो है ही।

फूल वाली : क्या काम किया है उन्होने ?

संजय : अपने झरने पर बाँध बाँधा है।

फूल वाली : इसके लिए पूजा ? बाँध से क्या देवता का काम सधेगा ?

सजय : नही, देवता के हाथो हथकड़ी पड़ेगी ।

फूल वाली : इसके लिए पुष्प-वर्षा ? मैं समझी नही ।

संजय : न समझना ही अच्छा है । देवता के फूल अपात्र पर मत लुटाओ, वापस चली जाओ—सुनो, सुनो, अपना यह श्वेतकमल मुझे वेचोगी ?

फूल वाली : जो फूल महात्मा पर चढ़ाने की मनौती करके लाई थी उन्हे वेचूं कैसे ?

संजय : जिन महात्मा पर मेरी सवसे ज्यादा भक्ति है उन्ही पर चढ़ाऊँगा ।

फूल वाली : तो फिर यह लो । नही, दाम नही लूँगी । वावा को मेरा प्रणाम देना । कहना, देवतली की दुखिया फूल वाली दे गई है ।

[प्रस्थान]

(विजयपाल का प्रवेश)

संजय : दादा कहाँ है ?

विजयपाल . शिविर मे वन्दी हैं ।

सजय · युवराज बन्दी ! ऐसा दु साहस !

विजयपाल : यह देखो महाराज का आदेश-पत्र ।

सजय · किसका षड्यंत्र है यह ? मुझे एक वार उनके पास ले चलो !

विजयपाल : क्षमा करे ।

सजय · मुझे भी वन्दी करो, मैं विद्रोही हूँ ।

विजयपाल : आदेश नही है ।

संजय : अच्छा, तो मैं आदेश लेने चला । (कुछ दूर जाकर, लौटकर) विजयपाल, यह कमल मेरी ओर से दादा को दे देना ।

(दोनों का प्रस्थान)

(शिवतराई के वैरागी धनंजय का प्रवेश)

गान—६

मै तूफान में डगमगाती अपनी इस भय-भग्न नौका पर प्रहारो का सागर पार करूँगा । तुम्हारे 'मा भैः' के सन्देश के भरोसे फटे पाल पर भी छाती फुलाती यह नौका छाया-वट की छाया में पार उतर जायगी । जो मुझे चाहता है वह मुझे राह दिखायगा,

मेरा तो सिर्फ़ इतना जिम्मा है कि अभय मन से नाव खोल दूँ। दिन बीतने पर पार उतरकर मै अपने दुखी दिनों का रक्त कमल तुम्हारे करुणामय चरणों पर चढ़ा दूँगा।

(शिवतराई की प्रजा के दल का प्रवेश)

धनजय : अरे चेहरा एकदम फक्क ! क्यो, क्या हुआ ?

पहला व्यक्ति : मालिक, राजश्यालक चण्डपाल की मार तो नही सही जाती। वह हमारे युवराज को भी नही मानता, इसलिए सहना और भी मुश्किल हो जाता है।

धनजय . अरे, अब भी मार को नही जीत पाए ? अब भी लगती है ?

दूसरा व्यक्ति राजा की ड्योढ़ी पर घेरकर मार ? घोर अपमान।

धनजय : अपना अभिमान अपने पास मत रख, अन्तर मे जो ठाकुर बसते हैं उन्हीके चरणो मे रख आ, वहाँ अपमान की पहुँच नही है।

(गणेश सरदार का प्रवेश)

गणेश . अब नही सहा जाता, हाथ मचल रहे है।

धनजय : तो यो कह कि हाथ बेहाथ हो गए हैं।

गणेश ' ठाकुर, एक बार हुकुम दे दो, इस पण्ढ-मार्का चण्डपाल का दण्ड छीनकर जरा दिखा दूँ, मार किसे कहते है।

धनजय : मार किसे नही कहते, यह नही दिखा सकते ? उसमे ज्यादा दम लगता है शायद ? लहर को थपेड़ने से लहर नही थमती, हाल ठहराकर ही लहर जीती जाती है।

चौथा . तो फिर क्या करने को कहते हो।

धनजय : मार नाम की चीज़ को जड़ से उखाड़ फेंको।

तीसरा : यह कैसे होगा मालिक ?

धनंजय : ज्यो ही सिर उठाकर कहोगे 'नही लगती' त्यो ही मार की जड़ कट जायगी।

दूसरा . 'नही लगती' कहना तो कठिन है।

धनजय : असल मे मनुष्य को थोड़े ही लगती है, वह तो आलोक की शिखा होता है। लगती है हाड़-मास के जानवर को, जो मार खाकर केंउ-केंउ करता मर जाता है। मुँह फाड़े क्यो खड़े हो ?

वात समझ मे आई ?

दूसरा : हम तो तुम्हे समझते है—तुम्हारी वात समझ मे न आई, न सही।

धनंजय : तव तो सर्वनाश हो गया।

गणेश : वात समझने मे समय लगता है, उसमे जल्दवाज़ी नही चलती। हमने तो तुम्हे समझ लिया है, इससे दिन रहते पार लग जायँगे।

धनजय : और जव दिन ढलेगा तव ? तव पता चलेगा कि नाव किनारे पर आकर डूव गई। पक्की वात अगर पक्की तरह मन में न वैठी, तो डूव जाओगे।

गणेश : ऐसा न कहो ठाकुर। तुम्हारे चरणो में आसरा मिला है तो जैसे भी हो समझ तो गए ही है।

धनंजय : नही समझे, यह समझने मे अव कुछ वाकी नही। तुम्हारी आँखें लाल हो रही है, गले से सुर नही निकलता। ज़रा सुर भर दूं ?

गान—७ (अ)

और, और, अभी और, प्रभु ! तुम यों ही मारते रहो।
अरे डरपोक, मार से वचने के लिए तुम या तो मारने लगते हो या भागने लगते हो, दोनो बातें एक हैं। दोनो ही तुम्हे पशुओं के दल में ले जाती हैं, पशुपति से भेंट नहीं करातीं।
मै छिपता फिरता हूँ, भागता फिरता हूँ, डर के मारे तुमसे कतराता रहता हूँ, मेरे पास जो कुछ है सव छीन लो, सव छीन लो।
देख भैया, मैं चला हूँ मृत्युजय से हिसाव-किताव करने। कहना चाहता हूँ, मेरे मार लगती है या नहीं; यह तुम खुद ही ठोक-वजाकर देख लो। डरने वालो या डराने वालो का वोझ कन्धो पर लादकर मैं आगे नही वढ सकता।

गान—७ (आ)

अव जो करना हो करो, चाहे मेरी हार हो या तुम्हारी। हाट-वाट में हँसते-खेलते सारा समय वीत चुका, देखें तुम मुझे कैसे रुलाते हो।

सव : वाह, वाह ठाकुर। यही ठीक है—
देखें तुम हमें कैसे रुलाते हो।

दूसरा : लेकिन तुम जा किधर रहे हो, सो तो वताओ।

धनंजय . राजा के समारोह मे।

तीसरा : ठाकुर, राजा के लिए जो समारोह है, वह तुम्हारे लिए क्या निकले, क्या ठिकाना। वहाँ जाने की ज़रूरत ?

धनजय : राजसभा मे नाम कर आऊँ।

चौथा : अपनी मुट्ठी मे पाकर राजा तुम्हे कही—नही नही, यह नही हो सकता।

धनजय : हो क्यो नही सकता रे ! खूब होगा, भरपेट होगा !

पहला : तुम तो राजा से नही डरते, पर हमे डर लगता है।

धनजय · तुम मन-ही-मन मारना चाहते हो न, इसीलिए डरते हो। मैं मारना नहीं चाहता, इसलिए डरता भी नही। जिसमे हिंसा होती है, उसीको भय काटता रहता है।

दूसरा · अच्छी बात है, हम भी तुम्हारे साथ चलेगे।

तीसरा : राजा से अरज करेगे।

धनजय : क्या माँगोगे ?

तीसरा : माँगने को तो ढेरो चीज़े है, दे तब न।

धनजय : राज-पाट नही माँगोगे ?

तीसरा : मज़ाक करते हो ठाकुर ?

धनंजय : मज़ाक की क्या बात है ? एक पैर से चलने मे जो कष्ट है, उसके बराबर और क्या कष्ट होगा ? राज-पाट अगर अकेले राजा का हो प्रजा का न हो, तो ऐसे लँगडे राजत्व का उचकना देखकर तुम भले ही भौचक्के रह जाओ, देवता की आँखो में आँसू आ जाते है। भैया, राजा की ही खातिर राज-पाट की माँग करनी पड़ेगी।

दूसरा : और जब फटकार पड़ेगी तब ?

धनजय : राज-दरबार से भी ऊपर वाला जब नालिश मंजूर कर देता है, तब राजा की फटकार राजा पर ही पडने लगती है।

गान—८ (अ)

हम बार-बार भूल जाते हैं कि तुम्ही हमें बुला-बुलाकर अपने आसन पर बिठाते हो।

सच्ची बात कहूँ भैया ? सिंहासन को उसके आसन के रूप मे

पहचाने बिना सिंहासन का दावा नही चल सकता—न राजा का, न प्रजा का। वह अकड़कर बैठने की जगह थोड़े ही है, वहाँ हाथ जोड़े बैठना चाहिए।

गान—८ (आ)

द्वारपाल हमें नहीं पहचानता, बीच में ही रोक लेता है। हम कब तक बाहर खड़े रहें हमे भीतर बुला लो !

द्वारपाल क्या यो ही नही पहचानता ? धूल लगते-लगते माथे का राजतिलक जो ढक गया है। मन पर तो वश नही चला, बाहर राज करने चले ? जो सचमुच राजा होता है वही राजासन पर बैठता है। राजासन पर बैठने से ही कोई राजा नही हो जाता।

गान—८ (इ)

तुमने हममें प्राण फूँके हैं, साथ ही हमें अभिमान दिया है। लोभ, भय और लाज के मारे हमारा यह अभिमान रहकर भी नही रह पाता। दिनोंदिन मैला होकर धूल में दबता रहा है।

पहला : कुछ भी कहो, मै तो समझ नही पाया कि तुम राजा के दरवाज़े किसलिए जा रहे हो।

धनंजय : क्यो बताऊँ ? मन भरमा रहा है।

पहला : सो कैसे ?

धनंजय : जितना ही तुम मुझे कसकर पकड़ते हो, तैरना सीखने में उतना ही पिछड़ते जाते हो। मेरा पार लगना भी मुश्किल हो गया है। इसलिए जहाँ मेरी कोई पूछ नही वही जा रहा हूँ छुट्टी पाने।

पहला : लेकिन राजा तुम्हे आसानी से नही छोड़ेगा।

धनंजय : छोड़े ही क्यो ? अगर मुझे बाँध ले सके तो फिर चिन्ता ही किस बात की ?—

गान—९

जिसमें इतना दम हो कि मुझे बाँध रखे।
वह क्या यो ही होगा ?
मेरा बन्धन तो वही बनेगा जो खुद मुझसे बँध जाए

वह क्या यों ही होगा ?
कौन है जो मुझ पर भरोसा करके मुझे वश में करे
वह क्या यों ही होगा ?
पहले वह अपने-आपको तो वश में कर ले,
प्रेम-रस में पग ले—वह क्या यों ही होगा ?
मुझे जो रुलायेगा उसके भाग्य में रोना बदा है—
वह क्या यों ही होगा ?

दूसरा : लेकिन ठाकुर, अगर उसने तुम पर हाथ उठाया तो हम नहीं सह पायँगे।

धनजय : जिनके चरणो पर मेरा यह तन बिक चुका है वे यदि सह लेगे तो तुम भी सह लोगे।

पहला . अच्छी वात है ठाकुर। चलो, कह-सुन आयँ, फिर भाग्य मे जो हो।

धनजय : तो फिर तुम लोग यही बैठो। इधर पहले कभी नही आया, ज़रा रास्ते की खोज-खबर ले आऊँ।

[प्रस्थान]

पहला · देखते हो भैया, इन उत्तरकूट वालो का चेहरा कैसा अजीब है ? मानो विधाता ने मास का एक लौदा लेकर गढ़ना तो शुरू किया हो, पर पूरा करने की फुरसत न मिली हो।

दूसरा : और इनका पटली की लाँग बाँधकर धोती पहनने का ढंग देखा ?

तीसरा : मानो शरीर को वोरे मे भर लिया हो कि कही छीज न जाय।

पहला : ये तो मजूरी करने को ही पैदा हुए है। बस, सात समन्दर पार हाट-हाट मारे-मारे फिरते है।

दूसरा . इनमे शिक्षा का तो नाम ही नही। इनके शास्त्रो मे है ही क्या ?

पहला . कुछ भी नही, कुछ भी नही। इनके अक्षर नही देखे, दीमक जैसे ?

दूसरा : विलकुल दीमक के-से। इनकी विद्या जिसमे लग जाती है उसीको काट-काटकर टूक-टूक कर डालती है।

तीसरा : और मिट्टी का ढेर लगा देती है।

पहला : ये हथियारो से प्राण हरते हैं और शास्त्रों से मन।

दूसरा : शिव, शिव ! अपने गुरुजी कहते हैं, इनकी छाया के भी पास नही फटकना चाहिए। जानते हो क्यो ?

तीसरा : क्यो, बताओ तो।

दूसरा : नही जानते ? समुद्र-मन्थन के बाद देवो के घडे का अमृत छलककर जिस मिट्टी पर गिरा था, अपने शिवतराई के पूर्वज उसी मिट्टी से बने है। और जब दैत्यो ने देवों के जूठे उस घड़े को चाट-चूटकर घूरे पर फेक दिया, तब फूटे घड़े की पकी मिट्टी से उत्तरकूट वाले बने। तभी तो ये इतने पक्के होते है, पर छि — कितने अपवित्र।

तीसरा : यह तू कहाँ पा गया ?

दूसरा : खुद गुरुजी ने बताया है।

तीसरा : (गुरु के प्रति प्रणाम करते हुए) गुरो ! तुम्ही सत्य हो।

(उत्तरकूट के नागरिकों के एक दल का प्रवेश)

उ १ : और तो सब ठीक हुआ, पर उस लोहार के लडके विभूति को राजा ने एकदम क्षत्रिय मान लिया, यह जरा—

उ २ : अरे, ये सब तो घर की बाते है। जब अपने गाँव लौटकर आयगा तब देख लिया जायगा। अभी तो बोल, यन्त्रराज विभूति की जय।

उ ३ : क्षत्रिय के अस्त्र और वैश्य के यन्त्र को मिलाकर एक करने वाले यन्त्रराज विभूति की जय !

उ १ . ओ भैया ! ये तो शिवतराई के लोग मालूम देते है।

उ २ : कैसे पहचाना ?

उ १ : देखा नही इनका कनटोप ? कैसा अजीब लगता है ! मानो ऊपर से रद्दा जमाकर किसी ने इनकी बाढ रोक दी हो।

उ २ : अच्छा, इतना वडा शरीर रहते ये कानो को ही क्यो ढकते है ? क्या ये सोचते है, कान विधाता ने भूल से बना दिए है।

उ १ : कानों पर बाँध बाँध लिया है—कही बुद्धि बह न जाये।

[सबकी हँसी]

उ ३ : नही, नही, इसलिए कि कही बुद्धि भीतर न आ जाय। (हँसी)

उ १ : कही उत्तरकूट का कनमलैया भूत कानो को न धर पकड़। (सी) अरे हँओ शिवतराई के उजबको, न बात, न चीत, मामला क्या है ?

उ ३ पता नही आज हमारा बडा दिन है। बोल, यन्त्रराज विभूति की जय।

उ १ : चुप क्यो रह गए ? गला बैठ गया है ? टेंटिया मसके बिना आवाज नही निकलेगी शायद ? बोल, यन्त्रराज विभूति की जय।

गणेश : क्यो बोले विभूति की जय ? क्या किया है उसने ?

उ १ : क्या कहा, क्या किया है ? इतनी बड़ी खबर भी अभी तुम तक नही पहुँची ? देख लिया न कनटोप का गुण ?

उ २ : तुम्हारा पीने का पानी अब उसकी मुट्ठी मे है; उसकी दया के बिना तुम सूखे के मेढ़को की तरह प्यासे ही मर जाओगे।

उ ३ : पीने का पानी विभूति की मुट्ठी मे ? वह क्या अचानक देवता बन बैठा ?

उ १ : देवता को छुट्टी देकर देवता का काम खुद ही चलाया।

शि० १ : देवता का काम ! जरा उसका कोई नमूना देखे।

उ १ : वह रहा मुक्तधारा का बाँध।

[शिवतराई वालों का अट्टहास]

उ १ : इसे क्या तुमने मजाक समझा है ?

गणेश : मजाक नही है ? मुक्तधारा को बाँधेगा ? भैरव ने अपने हाथो जो दिया है उसे यह तुम्हारा लोहार का लड़का छीन लेगा।

उ १ : खुद ही देख लो न, वह आसमान मे।

शि० १ : बाप रे ! यह क्या है भैया ?

शि० २ : मानो कोई बड़ा भारी लोहे का टिड्डा आसमान मे छलाँग लगाने वाला हो।

उ १ : इसी टिड्डे की टाँग से तुम्हारा पानी रोका है।

गणेश : रहने भी दो ये बेकार की बाते। एक दिन कहोगे, इसी टिड्डे के डैने पर सवार होकर तुम्हारा लोहार का लाल चाँद

लेने चला है।

उ १ : यह देखो, कान ढकने का गुण। ये सुनकर भी नही सुनते तभी तो मरते हैं।

शि १ : मरकर भी नही मरेगे। हमने प्रण किया है।

उ १ : बहुत अच्छा किया। बचायगा कौन ?

गणेश : अपने देवता को नही देखा ? प्रत्यक्ष देवता को ? अपने धनजय ठाकुर को ? उसकी एक काया मन्दिर मे है, एक बाहर।

उ ३ : ये कनढक्कू न जाने क्या बकते है ? इनकी तो शामत आ गई है।

(उत्तरकूट वालों का प्रस्थान)

(धनंजय का प्रवेश)

धनंजय : क्यो रे बुद्ध, क्या कह रहा था ? तुम्हे बचाने का जिम्मा मुझ पर है ? तब तो समझो, सात बार मरकर भूत हो लिये।

गणेश : उत्तरकूट वाले हमे धमका रहे थे कि विभूति ने मुक्तधारा पर बाँध बाँध दिया है।

धनजय : क्या कहा, बाँध बाँधा है ?

गणेश . हाँ ठाकुर।

धनंजय : पूरी बात नही सुनी शायद ?

गणेश : वह क्या सुनने की बात थी ? हँसकर उडा दी।

धनजय : तुम सबने क्या अपने कान एक मेरे ही ज़िम्मे रख दिए है ? तुम सबके सुनने की बात क्या एक मुझीको सुननी होगी ?

शिवतराई : उसमे सुनने को है ही क्या ठाकुर ?

धनजय . कहता क्या है रे ! जो शक्ति दुर्निवार है उसको बाँध डालना क्या हँसी-खेल है ? फिर चाहे वह भीतर की हो, चाहे बाहर की।

गणेश : तो क्या इसी मारे वे हमारा पीने का पानी रोक देंगे ठाकुर ?

धनजय : यह दूसरी बात है। भैरव यह नही सह सकते। तुम बैठो, मै पता लगा आऊँ। संसार तो शब्दमय है रे, इसमे जिधर से सुनना बन्द करोगे उधर से ही मृत्यु-बाण आ लगेगा।

(धनजय का प्रस्थान)

(शिवतराई के एक नागरिक का प्रवेश)

शि ३ . अरे विपण ! क्या हाल है ?

रणजित् : क्या मतलब ?

धनंजय : जो सब-कुछ दे डालते हैं वे ही सब-कुछ रख पाते है। लोभ के मारे अगर कुछ रखना चाहोगे तो वह तो चोरी का माल हुआ, वह कभी नही टिकेगा।

गान—११

(ख)

तुम जो चाहो करो, तन के बल पर चाहे मारो, चाहे रखो। जिनके लगती है वे जब तक सहते हैं, तभी तक खैर समझो। राजा, तुम्हारी भूल यही है कि तुम सोचते हो, दुनिया को हथिया लेने से ही दुनिया तुम्हारी हो गई। जो चीज खुली छोड़ देने से मिल सकती है उसे अगर मुट्ठी मे भीचने चलोगे तो देख लेना वह हाथ से छूट जायगी।

गान—११

(ग)

तुम सोचते हो, जो तुम चाहोगे वही होगा, तुम्हीं इस दुनिया को नचाने वाले हो। पर एक दिन जब आँख खुलेंगी तो देखोगे कि इस दुनिया मे अनहोनी बात भी हो जाती है।

रणजित् : मन्त्री, वैरागी को यही बाँधकर डाल दो।

मन्त्री : महाराज—

रणजित् : क्यो, आदेश तुम्हारे मन का नही ?

मन्त्री : शासन का भीषण यन्त्र तो तैयार हो ही गया है, तिस पर अगर भय भी लाद दिया गया तो सब चूर-चूर हो जायगा।

प्रजागण : हम यह बर्दाश्त नही करेंगे।

धनंजय : जो कहता हूँ, करो—लौट जाओ !

पहला : ठाकुर, हम युवराज को भी तो खो बैठे है। तुमने सुना नही शायद ?

दूसरा : फिर हम भला किसका दम भरेंगे ?

धनंजय : मेरे दम से ही तुम्हारा दम है ? ऐसा कहकर तो तुम मुझे भी कमजोर करते हो।

गणेश : ऐसी बात कहकर आज हमें मत बहकाओ ! एक तुम्हीसे हम

सबका दम है।

धनंजय : तब तो मै हार गया। मुझे हट जाना पडा।

सब : क्यो ठाकुर?

धनंजय : मुझे पाकर क्या अपने को खो बैठोगे? मुझमे इतनी सामर्थ्य कहाँ है जो इतना बड़ा नुकसान भर सकूँ। मै बहुत शर्मिन्दा हूँ।

पहला : यह क्या कह रहे हो ठाकुर? अच्छी बात है, जो कहोगे वही करेगे।

धनंजय . मुझे छोड़कर चले जाओ!

दूसरा : जाकर क्या होगा? तुम हमे छोड़कर रह सकोगे? हमे प्यार नही करते?

धनजय : प्यार से तुम्हे दबोच डालने की बजाय प्यार से तुम्हे अलग छोड़ देना ही ठीक है। जाओ, अब और मत बोलो, चले जाओ।

सब . अच्छी बात है ठाकुर, चले, लेकिन—

धनजय : लेकिन क्या रे! एकदम निश्चित होकर जाओ, सिर उठाकर।

सब : अच्छी बात है, चलते है।

धनजय : इसे चलना कहते है? तपाक से चलो!

गणेश . जाते है, लेकिन अपनी बल-बुद्धि सब यही छोडे जा रहे हैं।

[प्रस्थान]

रणजित् . क्यों बैरागी, चुप कैसे रह गए?

धनजय चिन्ता ने घेर लिया है राजा!

रणजित् . कैसी चिन्ता?

धनजय : तुम अपने चण्डपाल के दण्ड से भी जो नही कर सके, देखता हूँ, मैं वही कर बैठा हूँ। अब तक यही माने हुए था कि मैं इनकी बल-बुद्धि बढा रहा हूँ। आज ये मेरे मुँह पर कह गए कि मैने ही इनकी बल-बुद्धि हर ली।

रणजित् : यह हुआ कैसे?

धनंजय . इन्हे जितना चढाया उतना पक्का नही बना सका—और क्या। जिन पर ढेरो कर्ज चढा हो उनके भाग-दौड़ करने से ही तो कर्ज पट नही जाता। इनका खयाल है, मैं विधाता से भी बडा हूँ। मानो इन पर उनका जो कर्ज चढ़ा हुआ है, वह मै माफ करा सकता हूँ।

इसलिए आँख मूँदकर मेरा ही पल्ला पकड़े रहते है।

रणजित् : ये तो तुम्हीको देवता मान बैठे हैं।

धनजय : तभी तो ये मुझ पर आकर अटक गए, असली देवता तक नही पहुँच पाए। जो इन्हे भीतर से प्रेरित कर सकते थे उनको मैंने बाहर ही रोक लिया है।

रणजित् : जब राजा का लगान देने चलते है तब तो तुम इन्हें मजे से रोक देते हो, पर जब देवता का पुजापा तुम्हारे पैरों पर पड़ने लगता है तब क्या तुम्हे नही अखरता ?

धनंजय : बाप रे ! अखरता क्यो नही ? भागकर निकल पाऊँ तो जान बचे। मुझे पूजा चढाते-चढाते ये लोग भीतर-ही-भीतर दिवालिये हो गए है। इनके कर्ज का बोझ तो मेरे ही कन्धों पर आयगा, देवता छोड़ थोड़े ही देंगे।

रणजित् : तो अब तुम्हारा कर्तव्य क्या है ?

धनजय : परे रहना। अगर मैंने सचमुच इनके मन पर बाँध बाँध डाला हो, तो भैरव मुझको और तुम्हारे विभूति दोनो को एक साथ ही दण्ड दे।

रणजित् : तो फिर अब देर क्यो ? अलग हट जाओ न !

धनंजय : मेरे अलग हटते ही ये सीधे तुम्हारे चण्डपाल की गर्दन पर चढ़ बैठेंगे। फिर जो दण्ड मुझे मिलना चाहिए था वह इन्हीकी खोपड़ी पर आ पडेगा। इसी सोच के मारे नही हट पाता।

रणजित् : अपने-आप नही हट पाते तो लो, मैं हटाए देता हूँ। उद्धव, वैरागी को इसी वक्त वन्दी बनाकर शिविर मे ले जाओ !

गान—१२

धनंजय : तेरी जंजीर मुझे विकल नही बना सकती। तेरी मार से मर्म नहीं मर सकता। उनके अपने हाथ का लिखा मुक्ति-पत्र मेरे प्राणों में सुरक्षित है। तुम्हारे बाँधने से मैं नहीं बँध सकता जिस रास्ते से मैं आता-जाता हूँ उसका पता तेरे प्रहरी भला कैसे पा सकते हैं। मैं तो उनके द्वारे पहुँच चुका हूँ, मुझे अब तेरे दरवाजे कौन अटका सकता है। डर से मेरे प्राण नहीं डरेंगे।

[धनंजय को लेकर उद्धव का प्रस्थान]

रणजित् : मन्त्री, बन्दीगृह मे जाकर अभिजित् से तो मिल आओ। अगर देखो कि वह अपने किये पर पछता रहा है तो—

मन्त्री : महाराज, आप स्वयं ही चलकर एक वार—

रणजित् : नही नही, वह राजद्रोही है, जब तक वह अपना अपराध स्वीकार न करे तब तक मैं उसका मुँह नही देखूँगा। मै राजधानी जा रहा हूँ, वही मुझे सवाद देना।

[राजा का प्रस्थान]

(भैरव पथियों का प्रवेश)

गान—१३

तिमिर हृद् विदारण
जलदग्नि निदारुण
मरुश्मशान संचर
शंकर शंकर !
वज्रघोष वाणी
रुद्र शूलपाणि
मृत्यु सिन्धु संतर
शंकर शंकर !

[प्रस्थान]

(उद्धव का प्रवेश)

उद्धव . यह क्या ? महाराज युवराज से विना मिले ही चले गए !

मन्त्री : कही उनका मुँह देख लेने से प्रतिज्ञा भग न हो जाय, इसी डर से। मन मे इसी दुविधा मे पडे वे इतनी देर तक वैरागी से वाते कर रहे थे। न तो शिविर मे जाने को मन करता था, न शिविर छोड़कर जाने के लिए कदम उठ रहे थे। चलूँ, युवराज से मिल आऊँ।

[प्रस्थान]

(दो स्त्रियों का प्रवेश)

पहली : मौसी, ये लोग सब इतने गरम क्यो हो गए है, युवराज ने ऐसा क्या

अनुचित कार्य किया है ? न तो मेरी समझ मे आता है, न बर्दाश्त होता है।

दूसरी : उत्तरकूट की बेटी होकर भी नही समझ पाती ? उन्होंने नन्दि-सकट का रास्ता खोल दिया है।

पहली : इसमे क्या अपराध हुआ, नही मालूम, पर युवराज ने अनुचित काम किया है यह मै किसी हालत मे नही मान सकता।

दूसरी : तू अभी बच्ची है। जब दु.ख भोगेगी तब पता चलेगा कि जो लोग ऊपर से भले कहलाते है उन्ही पर ज्यादा सन्देह करना पड़ता है।

पहली : पर युवराज पर तुम्हे किस बात का सदेह है ?

दूसरी : सभी कहते है कि वे शिवतराई के लोगो को वश मे करके उत्तर-कूट का सिहासन जीतना चाहते है। वे अब और बाट नही देख सकते।

पहली : सिहासन की उन्हे क्या ज़रूरत है भला ! वे तो सभीके हृदय जीत चुके है। जो उनकी बदनामी करते हैं, उनका तो विश्वास करूँ, और युवराज का विश्वास न करूँ !

दूसरी : तू चुप रह। रत्ती-भर की लड़की, तेरे मुँह से ये बाते शोभा नहीं देती। देश-भर के लोग जिसे कोस रहे है, तू बिना सोचे-समझे उसीकी—

पहली : मैं देश-भर के लोगो के सामने खड़ी होकर कह सकती हूँ कि—

दूसरी : चुप रह, चुप रह !

पहली : क्यो रहूँ चुप ? मेरी आँखो से तो आँसू फट निकलना चाहते है। मन कहता है, कोई ऐसा काम करूँ जिससे लोगो को पता चल जाय कि मैं उन पर सबसे ज्यादा विश्वास करती हूँ। मैं आज अपने इन लम्बे बालो से भैरव की मनौती करूँगी; कहूँगी : 'बाबा, तुम सबको जता दो, जीत युवराज की ही होगी, उन्हे बदनाम करने वाले झूठे है।'

दूसरी . चुप चुप, चुप ! कही कोई सुन न ले। लगता है, लड़की आफत ढायगी।

[दोनों का प्रस्थान]

(उत्तरकूट के नागरिकों के एक दल का प्रवेश)

पहला : अब किसी तरह नही छोडूँगा, चल राजा के पास चलें।

दूसरा : क्या फायदा ? युवराज तो राजा के गले के हार है, उनके अपराध का न्याय वह नही कर पायँगे। उल्टे हमी पर बिगडेगे।

पहला : बिगड़ जायँ, हम तो साफ-साफ कह देगे, फिर जो बदा हो।

तीसरा : इधर तो युवराज हम पर इतना प्रेम प्रदर्शित करते है, ऐसा दिखाते हैं मानो हमारे हाथ पर आकाश का चाँद लाकर धर देगे, और भीतर-ही-भीतर उनकी यह करतूत ! शिवतराई उनके लेखे अचानक उत्तरकूट से भी बडी हो गई !

दूसरा : ऐसा है तब तो पृथिवी पर धर्म ही कहाँ रहा ? भला बताओ तो भैया !

तीसरा : किसी का कोई ठिकाना नही।

पहला : राजा ने उन्हे सज़ा न दी तो हम देगे।

दूसरा : क्या करोगे ?

पहला : इस देश मे अब उनके लिए ठौर नही है। जो रास्ता उन्होंने खोला है, उसी रास्ते उन्हे खदेड देगे।

तीसरा : पर, अभी-अभी तो चवुआ गाँव वाले कह रहे थे कि वे शिवतराई मे नही है, और इधर राजमहल मे भी उनका पता नही।

पहला : राजा ने ज़रूर उन्हे छिपा दिया है।

तीसरा : छिपा दिया है ? उँह ! दीवार तोड़कर निकाल लायँगे।

पहला : महल मे आग लगाकर निकाल लायेगे।

तीसरा : हमें चकमा देगे ? मर भले ही जायँ पर—

(उद्धव के साथ मन्त्री का प्रवेश)

मन्त्री : क्या हुआ ?

पहला : यह चोर-छिपौवल नही चलेगी। निकालो युवराज को।

मंत्री : अरे भैया ! मैं कौन होता हूँ निकालने वाला ?

दूसरा : तुम्हीने तो सलाह देकर उन्हे—पर छिपा नही पाओगे, हम जबरदस्ती निकाल लायँगे।

मन्त्री : अच्छी बात है, तो फिर यह राज-पाट अपने हाथ मे करो, राजा की गारद से उन्हे छुड़ा लाओ।

तीसरा　: गारद से ?

मंत्री　: महाराज ने उन्हे बदी कर लिया है।

सब　: जय, महाराज की जय, उत्तरकूट की जय !

दूसरा　: चल रे, अपन गारद में घुस पड़े और वहाँ जाकर—

मत्री　: क्या करोगे वहाँ जाकर ?

दूसरा　: विभूति के गले की माला के फूल निकालकर उसकी डोरी उसके गले मे लटका आयँगे।

तीसरा　: गले मे क्यो, हाथ मे। बाँध बाँधने वाले के अभिनन्दन की जूठन से रास्ता खोलने वाले के हाथो मे फन्दा पडे।

मंत्री　: युवराज ने रास्ता खोल दिया, सो तो हुआ अपराध, और तुम व्यवस्था भंग करोगे, वह अपराध नही होगा ?

दूसरा　· वाह, वह तो बिलकुल अलग बात है। खैर यही सही। अगर व्यवस्था भंग कर ही दे तो क्या होगा।

मंत्री　: वही बात होगी कि पाँव-तले ज़मीन पसन्द नही इसलिए शून्य मे कूद पड़ी। पर वह भी तुम्हें पसन्द नही आयगा, कहे रखता हूँ। दूसरी व्यवस्था कर लेने के बाद ही कोई व्यवस्था भग करते है।

तीसरा　. अच्छा, तो गारद रहने दो, राजमहल के सामने जाकर महाराज का जय-जयकार ही कर आयँ।

पहला　: ओ भैया वह देख। सूरज डूब चुका, आसमान मे अँधेरा घिर आया, पर विभूति के यत्र का सिरा अब भी चमक रहा है। मानो धूप की मदिरा पीकर लाल हो गया हो।

दूसरा　: और ढलते सूरज की रोशनी ने भैरव-मन्दिर का त्रिशूल इस तरह पकड़ रखा है मानो डूबते डरती हो। कैसे अजीब लग रहा है।

(नागरिकों का प्रस्थान)

मत्री　. महाराज ने युवराज को बन्दी बनाकर शिविर मे रखने को क्यों कहा, अब समझ मे आया।

उद्धव　· कैसे ?

मंत्री　: प्रजा के हाथो ने उन्हे बचाने के लिए। पर, लक्षण अच्छे नही

दीखते। लोगों की उत्तेजना बढती ही जाती है।

(संजय का प्रवेश)

संजय : महाराज से ज्यादा आग्रह करने का साहस नही हुआ। उससे उनका सकल्प और दृढ़ हो जाता है।

मंत्री : शान्त रहें राजकुमार, उत्पात और भी जटिल न बनाये।

सजय : मैं भी विद्रोह मचाकर बन्दी होना चाहता हूँ।

मंत्री : इसकी बजाय मुक्त रहकर बन्धन छुडाने की सोचिए।

संजय : इसी प्रयत्न मे तो मैं प्रजा के बीच गया था। सोचता था, युवराज को वे प्राणो से भी बढकर प्यार करते है, उनकी गिरफ़्तारी वे बर्दाश्त नही करेंगे। पर जाकर देखा, नन्दिसंकट की खबर से वे आग-बबूला हो गए है।

मंत्री : इसीसे समझ लीजिए, युवराज बन्दीगृह मे ही निरापद है।

संजय : मैं तो सदा से उन्हीका अनुगामी रहा हूँ, बन्दीगृह में भी मुझे उनका अनुसरण करने दो।

मंत्री : उससे क्या होगा ?

सजय : पृथ्वी पर कोई भी व्यक्ति अपने-आप मे पूर्ण नही होता, अधूरा होता है। किसी दूसरे के साथ उसका योग होने पर ही वह पूर्णता पाता है। युवराज के साथ मेरा ऐसा ही योग है।

मंत्री : यह माना, राजकुमार। पर जहाँ सच्चा योग होता है वहाँ पास रहने की ज़रूरत नही होती। आसमान का बादल और समुद्र का पानी वास्तव मे एक हैं, इसीलिए वे ऊपर से अलग रहकर उस ऐक्य को सार्थक करते है। आज युवराज जहाँ नही हैं, वहाँ वे तुम्हारे माध्यम से प्रकट हो रहे है।

संजय : मंत्री यह बात तुम्हारी अपनी तो नही लगती। यह तो मानो युवराज बोल रहे है।

मत्री : उनके बोल यहाँ की हवा मे रमे हुए है। मैं उनका प्रयोग करता हूँ, पर भूल जाता हूँ कि वे उनके हे या मेरे।

सजय : जो हो, तुमने इसकी याद दिलाकर अच्छा ही किया, मैं उनसे दूर रहकर उन्ही का काम करूँगा। चलूँ महाराज के पास।

मत्री : किसलिए ?

संजय शिवतराई के शासन का भार माँगूगा।

मत्री : वडा विकट समय है, इस वक्त क्या—

सजय इसीलिए तो उपयुक्त समय है।

[दोनों का प्रस्थान]

(विश्वजित् का प्रवेश)

विश्वजित् : कौन है रे ! उद्धव ?

उद्धव : जी, काकाजी महाराज !

विश्वजित् : अँधेरे की बाट देख रहा था। मेरी चिट्ठी मिल गई थी न ?

उद्धव जी हाँ, मिल गई।

विश्वजित् : उसी हिसाब से काम हुआ ?

उद्धव : थोडी देर मे मालूम पड़ जायगा। लेकिन—

विश्वजित् : मन मे सशय मत लाओ। महाराज खुद तो उन्हे छोडने को तैयार नही है। पर उन्हे जताये विना अगर कोई और यह काम कर डाले तो उनकी जान मे जान आये।

उद्धव : पर उस 'कोई और' को वे किसी हालत में माफ नही करेगे।

विश्वजित् : मेरी सारी सेना मौजूद है। वे तुम्हे और तुम्हारे पहरेदारो को गिरफ्तार करके ले जायँगे। सारा जिम्मा मेरा।

नेपथ्य से : आग ? आग !

उद्धव : यह लो, वन्दीगृह से लगी हुई पाकशाला के तम्बू में आग लगा दी गई है। यही मौका है। दोनों वन्दियों को रिहा कर दूँ।

[थोडी देर वाद अभिजित् का प्रवेश]

अभिजित् : अरे वावा ! आप !

विश्वजित् : तुम्हे गिरफ्तार करने आया हूँ। मोहनगढ़ चलना होगा।

अभिजित् : आज आप मुझे किसी हालत मे गिरफ्तार नही कर सकते—न क्रोध से, न स्नेह से। आप सोचते है यह आग आपने लगाई है ? नही, कुछ भी क्यों न होता, यह तो लगती ही। आज मेरे पास वन्दी होने का अवकाश नही है।

विश्वजित् : क्यो भैया, क्या काम है तुम्हे ?

अभिजित् : जन्म के समय का ऋण चुकाना है। झरने की धारा मेरी धात्री है, उसका वन्धन काटना है।

विश्वजित् : उसके लिए बहुत समय पडा है, आज रहने दो।

अभिजित् . मै तो यही जानता हूँ कि आज समय आ पहुँचा है फिर कभी आयगा या नही, कौन जाने।

विश्वजित् . हम भी तुम्हारा साथ देगे।

अभिजित् नही, सबका काम एक-सा नही होता, मुझ पर जो काम आ पड़ा है वह मेरे अकेले का है।

विश्वजित् : शिवतराई वाले तुम्हारे भक्त जो तुम्हारे काम मे हाथ बँटाने की बाट देख रहे है, क्या उन्हे भी न बुलाओगे ?

अभिजित् : जो टेर मैने सुनी है, अगर वे भी सुन पाते तो मेरे बुलावे की वाट न जोहते। मैं अगर बुलाऊँगा तो वे रास्ता भूल जायँगे।

विश्वजित् : भैया, अँधेरा भी तो हो आया है—

अभिजित् : जहाँ से बुलावा आया है, वही से उजाला भी आयगा।

विश्वजित् मुझमे इतनी शक्ति नही कि तुम्हे रोक सकूँ। अँधेरे मे अकेले जा रहे हो, फिर भी तुम्हे विदा करके लौट जाना पडेगा। कम-से-कम इतना आश्वासन तो देते जाओ कि फिर मिलन होगा।

अभिजित् तुमसे मेरा विच्छेद हो ही नही सकता—वस यही याद रखो।

[दोनो का एक-एक ओर प्रस्थान]

(धनंजय का प्रवेश)

गान—१४

आग, तू मेरी मित्र है, मै तेरी ही जय गाता हूँ।
तेरी-जैसी शृंखला-मुक्त लाल मूर्ति मैने कभी नही देखी।
आकाश की ओर दोनों हाथ उठाये तू किसके गान में मगन
है? तेरा यह अभय नृत्य कितना आनन्दमय है, मै इस पर
बलिहार हूँ।
जिस दिन दुनिया की मियाद चुक जायगी, बंधन खुल जायँगे,
उस दिन तू हाथ-पैरो की रस्सी जलाकर राख कर देगी।
उस दिन मै भी तेरे साथ-साथ मगन होकर नाचूँगा। तेरे
दहन मे सारे ताप भस्म हो जायँगे, सारे ताप-कष्ट मिट जायँगे।

(वटु का प्रवेश)

बटु . ठाकुर, दिन तो ढल गया, अँधेरा हो गया है।

धनजय · भैया, बाहर के उजाले पर भरोसा करने की आदत है न, इसीसे अँधेरा होते ही अँधेरा दीखने लगता है।

बटु : सोचता था आज ही भैरव का नृत्य शुरु हो जायगा। पर यन्त्रराज ने क्या उनके हाथ-पैर भी यंत्र से बाँध दिए है ?

धनजय : भैरव का नृत्य शुरू होते समय दिखाई नही पडता, जब ख़त्म होने लगता है तभी प्रकट होता है।

बटु . ढाढस बँधाओ प्रभु, बड़ा डर लग रहा है। जागो, भैरव ! जागो ! उजाला बुझ चुका है, रास्ता डूब गया है, आहट नही मिलती मृत्युजय ! डर को डर से मारो। जागो भैरव ! जागो !

[प्रस्थान]

(उत्तरकूट के नागरिकों के दल का प्रवेश)

पहला · झूठ। वह राजधानी की गारद मे नही है। उसे छिपा रखा है।

दूसरा : देखते हैं, कहाँ रखेगे छिपाकर।

धनजय नही भाई, छिपाकर कहाँ रखेगे। दीवार ढह जायगी, दरवाज़ा टूट जायगा, उजाला फूटकर निकल आयगा—सब उजागर हो जायगा।

पहला : अरे यह कौन है भैया ! अचानक प्राण चौका दिये।

दूसरा : अच्छा ही हुआ। कोई-न-कोई तो चाहिए। चलो, इस वैरागी को ही पकडे। बाँध लो इसे।

धनजय : जो पहले से ही पकडाई दिये बैठा है, उसे कैसे पकडोगे ?

पहला : साधूपना धर रखो, हम यह सब नही मानते।

धनजय : न मानना ही ठीक है। भगवान् खुद हाथ पकड़कर मनवायँगे। तुम लोग भाग्यवान हो। मैं जिन अभागो को जानता हूँ वे मान-मानकर ही गुरु खो बैठे। मुझ तक को मान-मानकर उन्होने देश-निकाला दे दिया है।

पहला : कौन है उनका गुरु ?

धनंजय : जिसके हाथो वे मार खाते है।

पहला : तो फिर हम भी तुम पर गुरुगिरी क्यो न शुरू करे ?

धनंजय : मंजूर है भैया ! देखूँ, ठीक तरह पढ़ा सकता हूँ या नही । परख लूँ !

दूसरा : लगता है, तुम्हीने हमारे युवराज के साथ कोई चाल चली है।

धनंजय : तुम्हारे युवराज मुझसे भी ज्यादा चालाक है, वे तो मेरे साथ चाल चलते है।

दूसरा : देख लिया न ? भेद की बात है। दोनो मे कोई-न-कोई चाल चल रही है।

पहला : और नही तो इतनी रात मे यहाँ क्यो डोल रहा है? युवराज को शिवतराई खिसका देने की चेष्टा है। इसे अभी यहाँ बाँधकर डाल चले, बाद मे युवराज का पता चलने पर इससे निपट लेगे। ओ रे कुन्दन ! बाँध न ! रस्सी तो तेरे ही पास है।

कुन्दन : यह लो न रस्सी, तुम्ही बाँधो न।

दूसरा : अरे, तुम भी कैसे उत्तरकूट वाले हो ! ला, मुझे दे !
(बाँधते-बाँधते) क्यो जी, कैसी रही ? गुरुजी क्या कहते है ?

धनंजय : कसकर जकड़ लिया है। आसानी से छोड़ने वाले नही है।

[भैरवपंथियो का प्रवेश]

गान—१५

तिमिर हृद विदारण
जलदग्नि निदारुण
मरुश्मशान संचर
शंकर शंकर
वज्रघोष वाणी
रुद्र शूलपाणी
मृत्यु सिन्धु संतर
शंकर शंकर !

[प्रस्थान]

कुन्दन : लो, वह देखोगे। ज्यों-ज्यों गोधूलि का उजाला बुझता आ रहा है, त्यों-त्यों हमारे यन्त्र का सिर काला पड़ता जा रहा है।

पहला : दिन में वह सूरज से होड़ ले रहा था, अब अँधेरे में वह रात्रि की कालिमा से टक्कर ले रहा है। कैसा भूत-सा लग रहा है !

कुन्दन : विभूति ने अपनी कीर्ति ऐसी क्यों गढ़ी ? उत्तरकूट में कहीं भी जाओ, इसकी ओर ताके बिना चारा नहीं। ऐसा लगता है, मानो एक विकट चीत्कार हो।

[चौथे नागरिक का प्रवेश]

चौथा : पता चला है, उस अमराई के पिछवाड़े राजा का शिविर पड़ा है, युवराज को वहीं रखा गया है।

दूसरा : अब समझ में आया। इसीलिए यह बैरागी इस सड़क पर चक्कर काट रहा था। इसे यहीं बँधा पड़ा रहने दो, अभी देखकर आते हैं।

[नागरिकों का प्रस्थान]

गान—१६

धनंजय : ओ मेरे गुणी ! क्या तार बाँध देने से ही तेरा काम पूरा हो गया ? यह बंधी-बँधाई वीणा क्या यहाँ यों ही पड़ी रहेगी ? तब तो समझो हार हो गई हार, यह बँधाई बेकार हुई। बन्धन में जब तुम्हारा हाथ लगेगा तभी तो इसमें स्वर जगा पायगा। नहीं तो यह धूल में पड़ी लाज से गड़ जायगी, ओ मेरे गुणी !

(नागरिकों का पुनः प्रवेश)

पहला : यह क्या माजरा है ?

दूसरा : काकाजी-महाराज युवराज और उनके पहरेदार—सबको मोहन-गढ़ ले गए हैं। इसका क्या मतलब हुआ भला।

कुन्दन : उनकी धमनियों में भी तो उत्तरकूट का रक्त है। बाद में कहीं यहाँ युवराज का सही फैसला न हो पाय, इसीलिए वे उसे जबरदस्ती गिरफ्तार करके ले गए हैं।

पहला : बड़ी ज्यादती की बात है। इसी को तो कहते हैं अत्याचार। हम क्या अपने युवराज को सज़ा भी नहीं दे सकते !

दूसरा : इसका सही उपाय है—समझे दादा—

पहला : हाँ, हाँ, उनकी वह सोने की खान—

कुन्दन : और, जानते हो भैया, उनके पास ज्यादा न सही, तो पच्चीस हजार गाएँ तो होगी ही।

पहला : बस, एक-एक गिनकर वे सब—ऐसी ज्यादती ! हम ऐसी ज्यादती बर्दाश्त नही कर सकते।

तीसरा : और उनकी वह केसर की खेती, उससे कम-से-कम हर साल—

दूसरा : हाँ, हाँ, वह उन्हे दण्ड मे भरनी होगी। लेकिन, अब इस बैरागी का क्या किया जाय ?

पहला : इसे पडा रहने दो न यही।

[नागरिकों का प्रस्थान]

धनंजय का गान—१७

अरे अबोध, तुम्हारे डाल देने से ही क्या वह पड़ा रहेगा ? जिसे उसका मूल्य मालूम है वह उठा ले जायगा। जरा सोचकर तो देख वह कौन-सा रत्न है। वह क्या मिट्टी में मिलने के लिए है ? वह खो गया तो उनके गले का हार गूँथना जो व्यर्थ हो जायगा। तुझे पता नही, उसकी खोज मची हुई है : इसीलिए तो इधर-उधर दूत घूम रहे है। अपनी उपेक्षा से तुमने उसका मूल्य और भी बढ़ा दिया है। तुम जिसे दर्द दे रहे हो उसका दर्द क्या उस दरदी के प्राण सह लेंगे ?

(कुन्दन का पुनः प्रवेश)

कुन्दन ठाकुर, तुम्हारा वन्धन खोले देता हूँ, बुरा न मानना। तुम फौरन घर चले जाओ। क्या जाने आज रात—

धनंजय क्या जाने आज रात मेरा बुलावा ही आ जाय, तभी तो भागकर घर नही जा पाता।

कुन्दन : यहाँ तुम्हारा बुलावा कैसा ?

धनजय : उत्सव खत्म होने के समय।

कुन्दन . शिवतराई के आदमी होकर तुम उत्तरकूट के—

धनजय भैरव के उत्सव मे वस अव शिवतराई की ही आरती बाकी रह

गई है।

(नेपथ्य मे)

जागो भैरव, जागो !

कुन्दन : मुझे लक्षण अच्छे नही लगते। चला।

[दोनों का प्रस्थान]

(उत्तरकूटराज के दो दूतों का प्रवेश)

पहला : अब किधर जायँ ? नओसानु मे जो बकरियाँ चराते हैं वे तो कहते थे, उन्होने युवराज को इसी रास्ते से पश्चिम की ओर जाते देखा था।

दूसरा : जैसे भी हो, आज रात उन्हे ढूंढ निकालना है। महाराज का हुक्म है।

पहला : चर्चा फैल रही है कि उन्हे मोहनगढ ले गए है। पर पगली अम्बा की बातो से तो साफ जान पडता है कि उसने जिन्हे देखा था वे हमारे युवराज ही थे, और वे इसी रास्ते गए है।

दूसरा : पर समझ मे नही आता, इस अँधेरे मे अकेले जायँगे कहाँ ?

पहला : उजाले के बिना हम लोग तो एक भी कदम नही चल सकते। चलो कोट-पाल से उजाला ले आयँ।

(दोनों का प्रस्थान)

[एक पथिक का प्रवेश]

पथिक . (चीखता हुआ) ओ रे बूध—न ! शम्भू—ऊ ! आफत मे डाल दिया। मुझे आगे चलता कर दिया, कहने लगे, चढ़ाई पार करके सीधे तुम्हे पकड़ लेगे। और अब किसी का पता नही। अँधेरे मे यह काला यन्त्र इशारे कर रहा है। डर लगने लगा। कौन आ रहा है ? कौन है रे ! जवाब क्यो नही देते ? बूधन, तुम हो ?

दूसरा पथिक : मैं हूँ निम्कू, बत्ती वाला। राजधानी मे रात-भर रोशनी होगी, बत्तियाँ चाहिएँ। तुम कौन हो ?

पहला पथिक मैं हूँ हुब्बा, रासमण्डली मे गाता हूँ। रास्ते मे कही आन्दू अधिकारी की मण्डली तो नही दिखाई दी ?

निम्कू : ढेरो लोग चले आ रहे है, किस-किसको पहचाने ?

हुब्बा : उसे ढेरो मे मत गिनो। हमारा आन्दू तो एक अकेला पूरा-का-

पूरा आदमी है। भीड़ मे उसे ढूंढना नही पड़ता, सबके ऊपर दीखता रहता है। भैया, लगता है तुम्हारी इस टोकरी में ढेरों वत्तियाँ है, एक मुझे दे दो न ! घर वालो की वजाय रास्ते वालो को उजाले की ज्यादा जरूरत है।

निम्कू : दाम क्या दोगे ?

हुव्वा : दाम ही दे सकता तो तुमसे अकडकर बातें न करता, यह कोमल स्वर क्यों लगाता ?

निम्कू : अच्छे मसखरे हो।

[प्रस्थान]

हुव्वा : वत्ती तो दी नही, उलटे पहचान लिया कि मसखरा हूँ। चलो, यही क्या कम है। मसखरे का गुण ही ऐसा है, घोर अँधेरे मे भी पहचान लिया जाता है। उफ, झिल्ली की झनकार से आसमान झनझना रहा है। भूल हो गई, वत्ती वाले से मजाक करने की वजाय डकैती करता तो काम वन जाता।

(और एक पथिक का प्रवेश)

पथिक : हेइयो !

हुव्वा : वाप रे ! चौंकाते क्यो हो ?

पथिक : अब चलो भी।

हुव्वा : चलने की सोचकर तो निकला ही था। मण्डली के लोगो को छोड़कर अकेले चलने पर आदमी कैसा अचल हो जाता है, मन-ही-मन इसी तत्त्व को पचाने मे लगा हूँ।

पथिक : मण्डली के लोग तैयार हैं। बस तुम्हारे जा मिलने की देर है।

हुव्वा : क्या कहा ? हम तिनमोहना वाले है, हममे एक बुरी आदत है—बात साफ न हो तो समझ मे ही नही आती। मण्डली के लोग किन्हें कह रहे हो।

पथिक : और हम चबुआ गाँव के है। साफ-साफ समझाने की हममे ऐसी बुरी आदत है कि हाथ पक गए है। (धक्का देकर) अब समझे ?

हुव्वा : उफ ! समझ गया। सीधा मतलब यह कि मेरी मर्जी हो न हो, चलना जरूर पडेगा। किधर चलना है ? अबके जरा हलके हाथ

से समझाना। तुम्हारी बातचीत के पहले धक्के से ही मेरी बुद्धि खुल गई है।

पथिक : शिवतराई चलना है।

हुब्बा : शिवतराई ? इस अमावस की रात मे ? वहाँ कौन-सी लीला होगी ?

पथिक : नन्दिसकट का टूटा गढ़ जोड़ने की लीला।

हुब्बा : टूटा गढ़ मुझसे जुडवाओगे ? भैया, अँधेरे मे तुम्हे मेरा चेहरा नही दिखाई दिया, तभी इतनी कड़ी बात कह गए। मै तो हूँ—

पथिक : तुम कोई भी क्यो न हो, दो हाथ तो है ?

हुब्बा : बस कहने भर को हैं, नही तो क्या इन्हे—

पथिक : हाथो का परिचय बातो से नही मिलता, सही जगह पर मिलेगा। चल, उठ।

(दूसरे पथिक का प्रवेश)

दूसरा पथिक : लो, यह एक और आदमी हाथ आया, ककर !

ककर : है कौन ?

तीसरा : कोई नही भैया, मैं तो लछमन हूँ, उत्तरभैरव के मन्दिर में घण्टा बजाता हूँ।

कंकर : यह तो और भी बढिया बात है। हाथो मे दम होगा। चलो शिवतराई।

लछमन : चला तो चलूँ, पर मन्दिर का घण्टा—

ककर : भैरव बाबा अपना घण्टा आप ही बजा लेगे।

लछमन : दुहाई है तुम्हारी, मेरी लुगाई बीमार पडी है।

कंकर : तुम हमारे साथ चलोगे तो या तो वह चगी हो जायगी, या मर जायगी। यहाँ रहने पर भी तो यही होगा।

हुब्बा : भैया लछमन, चुपचाप मान लो। काम मे जोखम जरूर है, पर मना करने मे भी कुछ कम जोखम नही है, मैं कुछ-कुछ अन्दाज पा चुका हूँ।

ककर : यह लो, नरसिह की आवाज सुनाई पड रही है। क्यों नरसिह, सब ठीक है न ?

(कुछ लोगों के साथ नरसिंह का प्रवेश)

नरसिंह : यह देखो, टोली बटोर लाया। और भी कई टोलियाँ पहले ही चल पडी है ।

कंकर · तो फिर चलो, रास्ते मे कुछ और भी जुट जायँगे ।

टोली का
एक व्यक्ति : मैं नही जाऊँगा।

कंकर : क्यो नही जाओगे ? क्या हुआ ?

वही व्यक्ति : हुआ तो कुछ नही, मै नही जाता ।

ककर क्या नाम है इस आदमी का, नरसिंह ?

नरसिंह वनवारी, कमल-बीजों की माला बनाता है ।

ककर : अच्छी बात है, जरा इससे समझ लूँ। क्यो नही जाओगे, बताना जरा।

बनवारी : तबियत नही है। शिवतराई वालो से मेरा कोई झगडा नही । वे हमारे दुश्मन नही है।

कंकर : अच्छा, न हो हमी उनके दुश्मन सही। तब भी तो तुम्हारा कुछ कर्तव्य है।

बनवारी : मैं अन्याय नही कर सकता।

ककर · न्याय-अन्याय विचारने की आजादी हो तभी अन्याय अन्याय होता है। उत्तरकूट विराट् है, उसके एक अश के रूप मे तुम जो कुछ करोगे उसकी कोई जवाबदेही तुम पर नही होगी ।

बनवारी : ऐसे भी विराट् है जो उत्तरकूट से भी बडे है। जैसे उत्तरकूट उनका अश है वैसे ही शिवतराई भी ।

कंकर · सुना नरसिंह, पट्ठा तर्क करता है । देश के तई इससे बड़ा संकट और कोई नही।

नरसिंह : कडा काम देते ही सारा तर्क झड़ जाता है। तभी तो इसे घसीटे ले जा रहा हूँ।

कंकर . तुम उत्तरकूट के बोझ हो, तुम्हें हल्का करने की तरकीब ढूंढ रहा हूँ ।

हुब्बा : बनवारी काका, तुम हर बात सोच-विचारकर समझना चाहते हो, इसीलिए जो लोग बिना सोचे-विचारे तुम्हे समझाना चाहते

है उनसे तुम्हारी ठनती रहता है। या तो उनकी प्रणाली अपना लो, या अपनी प्रणाली छोड़कर ठण्डे होकर बैठ जाओ।

वनवारी : तुम्हारी क्या प्रणाली है ?

हुव्वा : मैं तो गाना गाता हूँ। यहाँ उससे काम नही चलेगा यही सोचकर सुर नही छेड रहा हूँ, नही तो अब तक ताल उठा लेता।

कंकर : (बनवारी से) अब क्या इरादा है तुम्हारा ?

वनवारी : मै एक कदम भी नही हिलूँगा।

कंकर : तो फिर हमी तुम्हे हिलायँगे। बाँध लो इसे।

हुव्वा : एक बात कहूँ ककर दादा, नाराज़ न होना। इसे ढोने में जो मेहनत खर्च करोगे वह अगर बचा रखो तो काम आयगी।

ककर . उत्तरकूट की सेवा से जी चुराने वालो का दमन करना भी तो काम है, अच्छी तरह समझ लो, अभी समय है।

हुव्वा : मैं तो इसी बीच समझ चुका हूँ।

(नरसिंह और कंकर के अलावा बाकी सबका प्रस्थान)

नरसिंह : अरे, यह तो विभूति आ रहा है। यन्त्रराज विभूति की जय !

(विभूति का प्रवेश)

ककर : काम काफी आगे बढ चुका है, लोग भी काफी जुड गए है। पर, तुम यहाँ कैसे ? तुम्हारे उपलक्ष मे ही तो वे उत्सव मनायँगे।

विभूति : मुझे उत्सव का शौक नही।

नरसिंह : क्यो भला ?

विभूति : मेरा यश खर्व करने के लिए ही नन्दि-सकट का गढ़ टूटने की खबर ठीक आज के दिन भेजी गई। मुझसे होड लगा रखी है।

ककर : किसने होड़ लगा रखी है यत्रराज !

विभूति : सभी जानते है, मैं नाम लेना नही चाहता। उत्तरकूट मे उनका ज्यादा मान होगा या मेरा, बस यही तो सवाल है। एक बात तुम्हे नही मालूम; इस बीच किसी की तरफ से एक दूत आया था मेरे पास, मेरा मन तोडने। मुक्तधारा का मेरा बाँध तोड डाला जायगा, इसकी भी धमकी दे गया।

नरसिंह . इतनी मजाल !
कंकर : और तुम चुपचाप पी गए, विभूति !
विभूति : वे-सिर-पैर की वातो का खण्डन नही किया जाता।
कंकर : लेकिन विभूति, इतना वेफिक्र रहना क्या ठीक है ? तुम्ही तो कहते थे, वाँध के जोड़ो में दो-एक जगह दरार है। उसका पता चल गया तो ज़रा-से मे ही—
विभूति : जिसे दरार का पता चलेगा उसे यह भी मालूम हो जायगा कि उस छेद को खोलने वाला वच नही सकता, धार उसे फौरन वहा ले जायगी।
नरसिंह : क्या पहरा विठा देना ठीक नही ?
विभूति : उस छेद पर स्वय यमराज पहरा दे रहे है। वाँध के लिए मेरे मन मे ज़रा भी आशका नही। फिलहाल वह नन्दि-संकट का रास्ता घेरा जा सके तो फिर मुझे और कोई सोच नही।
ककर : तुम्हारे लिए यह कोई कठिन काम नही।
विभूति : ठीक है, मेरे यंत्र तैयार हैं। मुश्किल यह है कि वह पहाड़ी रास्ता सँकरा है, थोड़े-से लोग भी उसे आसानी से रोक सकते है।
नरसिंह : कहाँ तक रोकेगे ? मरते-मरते भी हम रास्ता वना देगे।
विभूति . ढेरों लोग चाहिए मरने के लिए।
ककर : मारने वाले हो तो मरने वालो की कमी नही होती।
नेपथ्य से : जागो, भैरव ! जागो !

(धनजय का प्रवेश)

ककर : यह लो, चलते समय अपशकुन।
विभूति · वैरागी, तुम-जैसे साधु तो अभी तक भैरव को नही जगा पाए, अव पाखण्डी कहलाने वाला मैं भैरव को जगाने चला हूँ।
धनजय : मानता हूँ, भैरव को जगाने का जिम्मा तुम्ही लोगो पर है।
विभूति : पर यह जगाना तुम्हारी तरह घण्टा हिलाकर आरती का दिया जलाकर जगाना नही है।
धनजय : ठीक है। तुम उन्हे ज़जीरो से वाँधोगे, वे ज़जीर तोड़ने के लिए जागेगे।
विभूति . हमारी ज़जीर कोई मामूली ज़जीर नही है, कड़ियो पर कड़ियाँ,

छल्लो पर छल्ले ।

धनजय : जब मुश्किल सबसे ज्यादा होती है, तभी उनका समय होता है ।

(भैरव-ग्रन्थियों का प्रवेश)

गान—१८

जय भैरव ! जय शकर !
जय जय जय प्रलयंकर ।
जय संशय भेदन,
जय बन्धन छेदन,
जय संकट संहर
शंकर शंकर !

[प्रस्थान]

(रणजित् और मन्त्री का प्रवेश)

मन्त्री : महाराज, शिविर बिलकुल सूना पड़ा है, काफी हिस्सा जल चुका है। जो दो-चार पहरेदार थे, वे तो—

रणजित् : वे जहाँ भी हो, अभिजित् कहाँ है, पता करना चाहिए ।

ककर . महाराज, हम युवराज के लिए सज़ा की माँग करते हैं ।

रणजित् जिसे सजा मिलनी चाहिए उसे सजा देने के लिए क्या मैं तुम्हारी बाट देखता रहता हूँ ?

कंकर : खोजने पर भी उनका पता नही चला, इसलिए लोगों के मन मे सन्देह बैठ गया है ।

रणजित् : क्या कहा ! सन्देह ! किस पर ?

ककर : क्षमा करे महाराज, प्रजा के मन की बात आपको मालूम होनी चाहिए । युवराज को ढूँढने मे जितनी ही देर लग रही है उतने ही वे अधीर होते जा रहे है । यहाँ तक कि अब जब वे मिल जायँगे तो उन्हे सज़ा देने के लिए वे महाराज की बाट नही देखेगे ।

विभूति महाराज के आदेश की बाट देखे बिना ही हमने नन्दि-सकट के टूटे दुर्ग को खड़ा करने का भार अपने ऊपर ले लिया है ।

रणजित् · मुझ पर क्यो न छोड दिया ?

विभूति : आपके वंश की अपकीर्ति मे आपकी गुप्त सम्मति हो सकती

है, यह सन्देह होना स्वाभाविक है।

मत्री : महाराज, आज जनसाधारण का मन एक ओर आत्मश्लाघा से और दूसरी ओर क्रोध से उत्तेजित हो उठा है। आप अधीर होकर उनकी अधीरता और न बढाये।

रणजित् : वह कौन खड़ा है वहाँ ? वैरागी धनंजय ?

धनंजय : देखता हूँ, महाराज को वैरागी का भी ध्यान है—

रणजित् : युवराज कहाँ है, यह तुम निश्चित रूप से जानते हो।

धनजय : नही महाराज, मैं जो निश्चित रूप से जानता हूँ उसे छिपा नही पाता, तभी तो आफत मे पड़ जाता हूँ।

रणजित् : तो फिर यहाँ क्या कर रहे हो ?

धनंजय : युवराज के प्रकट होने की वाट देख रहा हूँ।

नेपथ्य से : सुमन ! वेटा सुमन ! अँधेरा हो आया, चारो ओर अँधेरा हो आया !

राजा : कौन है यह ?

मत्री : वही पगली अम्बा।

(अम्बा का प्रवेश)

अम्बा : कहाँ, वह तो लौटा नही।

रणजित् : क्यो खोजती हो उसे ? समय हो गया था, उसे भैरव ने बुला लिया है।

अम्बा : भैरव क्या बस बुलाते ही रहते है, कभी लौटाते नही ? चुप-चाप? घनी रात मे ?—सुमन ! सुमन !

[प्रस्थान]

(दूत का प्रवेश)

दूत : शिवतराई से हजारो लोग चले आ रहे हैं।

विभूति : यह क्या कह रहे हो ! तय तो यह था कि हम वहाँ अचानक पहुँच-कर उन्हे निरस्त्र कर देंगे। जरूर तुम्हारे किसी विश्वासघाती ने उन्हें खबर कर दी है। ककर, तुम दो-चार जनो को छोड़कर भीतर की वात तो और कोई भी नही जानता। तो फिर कैसे—

ककर : यह क्या विभूति ! हम पर भी सन्देह करते हो क्या ?

विभूति : सन्देह की कोई सीमा नही होती ।

ककर : तो फिर हम भी तुम पर सन्देह करते है ।

विभूति : इसका तुम्हे अधिकार है । खैर, समय आने पर इसका भी फैसला हो जायगा ।

रणजित् : (दूत से) वे क्यो आ रहे है, तुम्हे मालूम है ?

दूत : उन्होने सुना है कि युवराज गिरफ्तार हो गए हैं, इसीलिए उन्होने प्रण किया है कि उनको खोज निकालेगे । यहाँ से छुडाकर वे उनको शिवतराई का राजा बनाना चाहते है ।

विभूति : हम भी युवराज को खोज रहे है और वे भी; देखे किसके हाथ लगते है ।

धनजय : दोनो ही दलो के हाथ लगेगे, उनके मन मे पक्षपात नही है ।

दूत : यह लो, शिवतराई का गणेश सरदार आ रहा है ।

(गणेश का प्रवेश)

गणेश : (धनजय से) ठाकुर, वे मिलेगे न ?

धनजय : हाँ रे ! मिलेगे ।

गणेश : ठीक-ठीक बताओ ।

धनजय : मिलेगे रे !

रणजित् किसे खोजते हो ?

गणेश : अरे, यह तो राजा है । छोड़ना पड़ेगा ।

रणजित् : किसको भाई ?

गणेश : हमारे युवराज को । आप । उन्हे नही चाहते, हम चाहते है । हमारा सब-कुछ तुम रोककर रख लोगे ? उनको भी ?

धनजय : अभी तक नही पहचान पाया मूरख ? किसकी सामर्थ्य है जो उन्हे रोके ?

गणेश : हम उन्हे अपना राजा बनायँगे ।

धनजय : ज़रूर बनाना । वे राजवेश धारण करके आयँगे ।

(भैरवपन्थी का प्रवेश)

गान—१९

तिमिर हृद विदारण

जलदग्नि निदारुण
मरुश्मशान संचर
शंकर शंकर !
वज्रघोष वाणी
रुद्र शूलपाणि
मृत्यु सिन्धु सन्तर
शंकर शकर !

(प्रस्थान)

(नेपथ्य से)

माँ बुलाती है, माँ बुलाती है। लौट आ सुमन ! लौट आ।

विभूति . यह क्या सुनता हूँ ! यह किसकी आवाज़ है।

धनजय : अरे, अँधेरे के सीने मे कोई खिलखिलाकर हँस रहा है !

विभूति : उफ् ! रहने भी दो। किधर से आ रही है आवाज़, जरा बताओ।

(नेपथ्य से)

जय हो, भैरव की जय हो !

विभूति : यह तो साफ जलधारा की आवाज है।

धनंजय : नृत्य के आरम्भ की पहली डमरू-ध्वनि है।

विभूति : आवाज़ बढ रही है, बढती ही जा रही है।

ककर : यह मानो—

नरसिह : लगता है मानो—

विभूति : हाँ, हाँ, वेशक। मुक्तधारा फूट निकली है। बाँध किसने तोडा ? किसने तोडा ? उसका निस्तार नही।

[क कर, नरसिह और विभूति का तेजी से प्रस्थान]

रणजित् : मत्री, यह क्या माजरा है ?

धनजय : बाँध तोडने के उत्सव का न्यौता है।

बाजे रे बाजे डमरू बाजे
हृदय माझे हृदय माझे।

मंत्री : महाराज, यह तो मानो—

रणजित् : हाँ, यह तो मानो उसीका—

मंत्री : उसके सिवा और तो किसी का—

रणजित् : इतना साहस और किसमे है ?

धनजय : नाचे रे नाचे चरण नाचे
प्राणेर काछे प्राणेर काछे

रणजित् : दण्ड देना होगा तो मैं दण्ड दूँगा। पर इस उन्मत्त प्रजा के हाथों से—मेरा अभिजित् देवताओं का प्यारा है, देवता उसकी रक्षा करे।

गणेश : मालिक बात क्या हुई, कुछ समझ मे नही आता।

धनजय : प्रहरी जागे प्रहरी जागे
ताराय ताराय कम्पन लागे

रणजित : अरे, मानो किसी के पैरो की आहट सुनाई दे रही हो। अभिजित्! अभिजित् !

मंत्री : लगता है, आ रहे हैं !

धनजय : मरमे मरमे वेदना फूटे—
बाँधन टुटे, बाँधन टुटे।

(संजय का प्रवेश)

रणजित् : यह तो संजय है ! अभिजित् कहाँ है ?

संजय : मुक्तधारा का प्रवाह उन्हे ले गया, हम उन्हे नही पा सके।

रणजित् : क्या कहते हो कुमार !

संजय : युवराज ने मुक्तधारा का बाँध तोड़ डाला।

रणजित् : समझ गया। उसे मुक्त करने मे ही उन्हें मुक्ति मिल गई। संजय, तुम्हे क्या वे साथ ले गए थे।

संजय : नही, पर मैं मन-ही-मन ताड गया था कि वे वही जायँगे। मै वहाँ पहुँचकर अँधेरे मे उनकी बाट देखने लगा, पर बस वही तक। उन्होंने मुझे रोक दिया, अन्त तक नही जाने दिया।

रणजित् : हुआ क्या, कुछ और बताओ।

संजय : न जाने कैसे उन्हे बाँध की एक त्रुटि का पता चल गया था। उसी जगह उन्होने यंत्रासुर पर आघात किया। यंत्रासुर ने उनका वार

उन्ही पर पलट दिया। और तब मुक्तधारा माँ की तरह उनकी घायल देह को गोद मे लिये चली गई।

गणेश : हम तो युवराज को खोजने निकले थे: तो क्या अब वे नही मिलेगे।

धनजय : हमेशा के लिए मिल गए।

(भैरवपंथी का प्रवेश)

गान—२०

जय भैरव ! जय शंकर !
जय जय जय प्रलयंकर !
जय संशय भेदन
जय बन्धन छेदन
जय सकट संहर !
शंकर शकर !
तिमिर हृद विदारण
जलदग्नि निदारुण
मरुश्मशान संचर !
शंकर शंकर !
वज्रघोष वाणी
रुद्र शूलपाणि
मृत्यु सिन्धु सतर !
शंकर शंकर !

परशिष्ट

इस नाटक के मूल बँगला-गीत

गान—५

ओ तो आर फिरबे ना रे, फिरबे ना आर, फिरबे ना रे
झड़ेर मुखे भासल तरी - कूले आर भिड़बे ना रे ॥
कोन पागले निल डेके
काँपन गेल पिछे रेखे—
ओके तोर बाहुर बाँधन घिरबे ना रे

गान—६

आमि मारेर सागर पाड़ि देब
विषम झड़ेर वाये
आमार भय-भाङा एइ नाये
मा भै वाणीर भरसा निये
छेंड़ा पाचे बुक फुलिये
तोमार ओइ पारेतेइ यावे तरी
छाया वटेर छाये
पथ आमारे सेइ देखावे
ये आमारे चाय—
आमि अभयमने छाड़ब तरी
एइ शुधु मोर दाय।
दिन फुरोले जानि जानि
पौंछे घाटे देब आनि
आमार दुःखदिनेर रक्त कमल
तोमार करुण पाये।

गान—७

अ

आरो आरो प्रभु, आरो आरो।
एमनि करेइ मारो मारो।

लुकिये थाकि आमि पालिये वेड़ाइ,
भये भये केवल तोमाय एड़ाइ;
या-किछु आछे सब काड़ो काड़ो।

आ

एबार याकरवार ता सारो, सारो—
आमिइ हारि किम्वा तुमिइ हार।
हाटे घाटे वाटे करि खेला,
केवल हेसे खेले गेछे वेला,
देखि केमन काँदाते पार।

गान—८

अ

भुले याइ थेके थेके
तोमार आसन'परे वसाते याओ
नाम आमादेर हेके हेके।

आ

द्वारी मोदेर चेने ना ये,
बाधा देय पथेर माझे,
लग्रो भितरे डेके डेके।

इ

मोदेर प्राण दियेछ आपन हाते—
मान दियेछ तारि साथे।
थेकेओ से मान थाके ना ये
लोभे आर भये लाजे,
म्लान हय दिने दिने,
याय धुलोते ढेके ढेके।

गान ९

आमाके ये बाँधवे धरे एइ हवे, यार साधन,
से कि अमनि हवे ?
आमार काछे पड़ले बाँधा सेइ हवे मोर बाँधन,
से कि अमनि हवे ?
के आमारे भरसा करे आनते आपन वशे ?
से कि अमनि हवे ?
आपनाके से करुक-ना वश, मजुक प्रेमेर रसे—
से कि अमनि हवे ?
आमाके ये काँदावे तार भाग्ये आछे काँदन—
से कि अमनि हवे ?

गान १०

आमारे पाड़ाय पाड़ाय खेपिये वेड़ाय कौन ख्यापा से !
ओरे, आकाश, जुड़े मोहन सुरे
की ये वाजाय कोन वातासे !
गेल रे गेल वेला,
पागलेर केमन खेला !
डेके से आकुल करे, देय ना धरा!
तारे कानन गिरि खुंजे फिरि,
केंदे मरि कोन् हुताशे !

गान ११

क

रइल वले राखले कारे ?
हुकुम तोमार फलवे कवे ?
टानाटानि टिकवे ना भाइ,
रवार येटा सेटाइ रवे।

ख

या-खुशि ताइ करते पार,
गायेर जोरे राख मार,

यांर गाये तार व्यथा बाजे
तिनिइ यासन सेटाइ सबे।

ग

भावछ हबे तुमि या चाओ,
जगत्टा के तुमिइ नाचाओ,
देखबे हठात् नयन मेले
हय ना येटा सेटाओ हबे।

गान १२

तोर शिकल आमाय विकल करबे ना।
तोर मारे मरबे ना।
तांर आपन हातेर छाड़-चिठि सेइ ये,
आमार मनेर भितर रयेछे एइ ये--
तोदेर धरा आमाय धरबे ना।
ये पथ दिये आमार चलाचल
तोर प्रहरी तार खोज पावे कि बल्।
आमि तांर दुयारे पौंछे गेछि रे,
मोर तोर दुयारे ठेकावे कि रे,
तोर डरे परान डरबे ना।

गान १३

आगुन, आमार भाइ,
आमि तोमारि जय गाइ।
तोमार शिकल-भाङा एमन राङा
मूर्ति देखि नाइ।
दुहात तुले आकाश-पाने
मेतेछ आज किसेर गाने?
ए कि आनन्दमय नृत्य अभय
बलिहारि याइ।
ये दिन भवेर मेयाद फुरोवे भाइ,
आगल यावे सरे,

से दिन हातेर दड़ि 'पायेर दडि
दिबि रे छाइ करे।
से दिन आमार अङ्ग तोमार अङ्गे
ओइ नाचने नाचवे रङ्गे,
सकल दाह मिटवे याहे—
घुचवे सब बालाइ।

गान १४

शुधु कि तार बेंधेइ तोर काज फुराबे
गुणी मोर, ओ गुणी ?
बाँधा वीणा रइवे पड़े एमनि भावे
गुणी मोर, ओ गुणी ?
ता हले हार हल ये हार हल,
गुणी मोर, ओ गुणी।
शुधू बाँधाबाँधिइ सार हल,
गुणी मोर, ओ गुणी।
बांधने यदि तोमार हात लागे
ता हलेइ सुर जागे
गुणी मोर, ओ गुणी।
ना हले धुलाय पड़े लाज कुड़ावे।

गान १५

फेले राखलेइ कि पड़े रवे, ओ अबोध ?
ये तार दाम जाने से कुड़िये लबे, ओ अबोध !
ओ-ये कोन् रतन ता देख् ना भाबि,
ओर' परे कि धुलोर दाबि ?
ओ हारिये गेलें तॉरि गलार
हार गाँथा ये व्यर्थ हवे।
ओर खोंज पड़ेछे जानिस ने ता ?
ताइ दूत बेरोल हेथा सेथा।
यारे करलि हेला सबाइ मिलि

आदर ये तार वाड़िये दिलि,
यारे दरद दिलि तार व्यथा कि
सेइ दरदिर प्राणे सबे ?

लाल कनेर

अनुवादक :
हजारीप्रसाद द्विवेदी

(इसकी घटना जिस नगर में घटी है उसका नाम है क्षयपुरी। यहाँ के मजदूर मिट्टी के नीचे से सोना निकालने के कार्य में नियुक्त हैं। यहाँ का राजा एक अत्यन्त जटिल जाल के आवरण के अन्तराल में रहा करता है। महल में जहाँ उस जाल का आवरण है वही स्थान इस नाटक का एक-मात्र दृश्य है। उसी आवरण के बाहर की ओर सभी घटनाएँ घटती हैं।)

(नंदिनी और किशोर, खदान खोदने वाला बालक)

किशोर : नदिन, नंदिनी, नंदिनी !

नंदिनी : मुझे इस तरह चिल्ला-चिल्लाकर क्यों पुकार रहा है किशोर ! मैं क्या सुन नही सकती ?

किशोर : जानता हूँ, तू सुन सकती है। लेकिन तुझे पुकारना अच्छा लगता है। तुम्हे और फूल चाहिएँ ? अच्छा, तो मै आऊँ।

नदिनी : जा, जा, अभी काम पर लौट जा, देर न कर !

किशोर सारा दिन तो सिर्फ सोने का ताल ही खोदता रहता हूँ। ज़रा-सा समय उसीमे से चुराकर तेरे लिए फूल ले आने का जो मौका पाता हूँ तो ऐसा लगता है मानो प्राण मिल गए।

नदिनी · अरे किशोर, वे अगर जान गए तो तुझे सज़ा देंगे।

किशोर : तुम्ही ने तो कहा था कि जैसे भी हो तुम्हे लाल कनेर चाहिए ही। मुझे इसमे यही मजा आता है कि लाल कनेर यहाँ आसानी से नही मिलता। बहुत खोज-पूछ करने पर एक ही पेड पा सका हूँ, वह यहाँ के जजाल के पीछे है।

नदिनी . तो मुझे दिखा दे, मैं जाकर खुद फूल चुन लाऊँगी।

किशोर : ऐसी वात न वोलो नदिनी, इतनी निठुर मत वनो ! उस पेड़ को मेरी एक-मात्र गोप बात की तरह छिपा रहने दो। विशू तुम्हे गान सुनाया करता है, वह गान उसका अपना होता है, आज से मैं तुम्हें फूल दिया करूँगा, ये मेरे अपने फूल होगे।

नदिनी . मगर यहाँ के ये तुझे दण्ड जो देते है। देखकर मेरी छाती फट जाती है !

किशोर : उस दु ख से मेरे फूल और भी अधिक मेरे अपने होकर खिलते है; वे मेरे दुःख के धन है।

नदिनी : किन्तु तुम लोगो के ये दु.ख मैं कैसे सहूँगी ?

किशोर : कैसा दु ख ? नदिनी, मै एक दिन तेरे लिए प्राण दूंगा, यही बात कितनी बार मन-ही मन सोचा करता हूँ।

नदिनी : तुमने तो मुझे इतना दिया, पर मै तुझे क्या दूं, बता तो किशोर ?

किशोर : तू ? तू मुझे वचन दे कि मेरे ही हाथ से रोज मेरे फूल लेगी।

नदिनी : अच्छा, यही सही। लेकिन तू जरा सम्हलकर चल !

किशोर : ना, मै सम्हलकर नही चलूंगा, नही चलूंगा। उनकी मार की नाक के ऊपर से तेरे लिए रोज़ फूल लेकर आ धमकूंगा।

[प्रस्थान]

(अध्यापक का प्रवेश)

अध्यापक : नदिनी, रुको, जाना नही।

नदिनी · क्या है अध्यापक !

अध्यापक : बार-बार इस तरह चकाचौंध लगाकर चली क्यो जाती हो ? जब तुमने चित्त को झकझोर दिया है तो जरा बोलते जाने मे क्या हर्ज है ? तनिक ठहरो, दो बाते कर लूं।

नदिनी : तुम्हे मेरी क्या जरूरत है ?

अध्यापक . जरूरत की बात तुमने एक ही कही। उधर जरा नजर फिराओ। हमारे खुदाई करने वाले मजूरो के दल पृथ्वी की छाती चीरकर जरूरत का बोझ सिर पर धारण किये कीडो की तरह खदान से बाहर निकल रहे है। इस यक्षपुरी मे हमारे पास जो कुछ धन है वह उसी धूल की नाडी का धन है—सोना ! किन्तु सुन्दरी, तुम जो सोना हो वह तो धूल का सोना नही है, वह तो प्रकाश का सोना है। जरूरत के बधन मे उसे कौन बाँध सकेगा ?

नंदिनी . बार-बार यह एक ही बात कहा करते हो। अच्छा मुझे देखकर तुम्हे इतना अचरज क्यो है अध्यापक ?

अध्यापक : सवेरे फूल के वन मे जो प्रकाश आता है उसमे अचरज की कोई बात नही, किन्तु पक्की दीवार की दरार से जो प्रकाश आता है उसकी बात ही कुछ और होती है। यक्षपुरी मे तुम वही अचरज-

भरी रोशनी हो। अच्छा, बताओ तो सही, तुम यहाँ के बारे मे क्या सोचती हो ?

नंदिनी : अवाक् होकर देखती हूँ कि सारा शहर मिट्टी के नीचे सिर घुसेड़कर अँधेरे मे टटोल रहा है। पाताल में खदान खोदकर तुम लोग यक्ष का धन निकाल लाते हो। परन्तु वह तो बहुत दिनो का मेरा धन है, धरती ने उसे कब्र दे रखी थी।

अध्यापक : हम लोग उसी मरे धन की शव-साधना करते हैं। उसके प्रेत को वश मे करना चाहते हैं। सोने के ताल मे यदि तास-बेताल को बाँध सकेगे तो सारी पृथ्वी मुट्ठी मे कर लेगे।

नंदिनी : और फिर तुम लोगो ने अपने राजा को एक अद्भुत लाल की दीवार की ओट में बाँध रखा है; तुम्हे डर है कि कही यह बात खुल न जाय कि तुम्हारा राजा भी आदमी है। तुम्हारी उस खदान के अधकार के ढक्कन को तोडकर उसमे प्रकाश उँडेल देने की इच्छा होती है। उसी प्रकार जी मे आता है कि इस भद्दे जाल को तोडकर उस बेचारे मनुष्य का उद्धार करूँ।

अध्यापक : हमारे मरे धन के प्रेत की जैसी भयकर शक्ति है वैसा ही भयंकर प्रताप है हमारे मनुष्यता-छने राजा का भी।

नंदिनी : ये सब तुम्हारी गढी हुई बाते हैं।

अध्यापक : गढी हुई तो है ही। नगे आदमी का कोई परिचय नही है। बना-सँवारकर तैयार किये हुए कपड़े से ही कोई राजा है, कोई रक है। चलो मेरे घर में। तुम्हें तत्त्व की बाते समझाने मे बड़ा आनन्द आता है।

नंदिनी : तुम्हारे खुदाई के मजूर जिस प्रकार खान खोदते-खोदते मिट्टी के नीचे डूबते ही जा रहे है, उसी प्रकार दिन-रात तुम पोथी-पत्र मे गर्त खोदते ही जा रहे हो। मुझे ले जाकर बेकार समय क्या नष्ट करोगे ?

अध्यापक : हम लोग ठोस अवकाश-रहित बिल के पतिगे हैं, घने काम मे डूबे हुए है। तुम खुले समय के आकाश की सध्या-तारा हो, तुम्हे देखकर हमारे पख फड़फडाने लगते है। आओ मेरे घर मे। तुम अपने को लेकर थोडा समय नष्ट करने दो मुझे।

नदिनी . ना, ना, इस समय नही। मैं आई हूँ तुम्हारे राजा को उसके अपने घर मे देखने।

अध्यापक . वह तो लाज की ओट मे रहता है, तुम्हे घर मे घुसने नही देगा।

नदिनी · मै जाल की बाधा नही मानती, मैं घर के भीतर घुसने आई हूँ।

अध्यापक : जानती हो नदिनी, मै भी एक जाल के पीछे हूँ मुझमें भी मनुष्य का वहुत-कुछ छूट गया है, सिर्फ पंडित-भर जगा हुआ है। हमारा राजा जैसा भयंकर राजा है, मै भी वैसा ही भयकर पडित हूँ।

नदिनी . तुम मेरे साथ मजाक कर रहे हो। तुम तो भयकर नही लगते। एक वात पूछूँ, ये लोग मुझे यहाँ ले आए, पर रजन को साथ क्यो नही लाए भला ?

अध्यापक . सभी चीजो को टुकडे-टुकडे करके ले आना ही इनका दस्तूर है। मगर मै पूछता हूँ कि इस जगह के मेरे धन के बीच अपने प्राणो के धन को क्यो ले आना चाहती हो ?

नदिनी . मेरे रजन को ले आवे तो इनके मरे पजर मे प्राण नाच उठेगे।

अध्यापक . अकेली नदिनी को ले आकर ही यक्षपुरी के सर्दार हतवुद्धि हो गए हैं, रजन को लाने से उसका क्या होगा ?

नदिनी : वे जानते ही नही कि वे कैसे विचित्र है ! उनके बीच विधाता यदि एक अच्छी-सी हँसी हँस दे तो उनकी नीद टूट सकती है। रजन विधाता की वही हँसी है।

अध्यापक · देवता की हँसी सूर्य का प्रकाश है, उससे बर्फ पिघलती है, किन्तु पत्थर नही गलता। सर्दारो को गलाने के लिए ताकत चाहिए।

नंदिनी : मेरे रजन की ताकत तुम्हारी शखिनी नदी के समान है। उस नदी की ही तरह वह जिस प्रकार हँस सकता है उसी प्रकार तोड-फोड़ भी सकता है। अध्यापक, तुम्हे आज के दिन की एक गुप्त खवर दूँ। आज रजन के साथ मेरी मुलाकात होगी।

अध्यापक : कैसे समझी ?

नंदिनी : होगी, होगी, मुलाकात होगी। खबर आई है।

अध्यापक : सर्दार की आँख वचाकर किस रास्ते खबर आ सकती है भला ?

नदिनी : जिस रास्ते वसन्त के आने की खवर आती है उसी रास्ते से।

उसमे लगा हुआ है आकाश का रंग और हवन की लीला !

अध्यापक : अर्थात् आकाश के रग में, पवन की लीला में उड़ती-उड़ती खबर आ पहुँची है !

नंदिनी : जब रजन आयगा तो दिखा दूंगी कि उड़ती खबर किस प्रकार मिट्टी पर आ पहुँचती है।

अध्यापक : रंजन की बात चलते ही नंदिनी के मुख की बाते रुकने का नाम नही लेना चाहती। जाने भी दो, मेरे पास तो वस्तु-तत्त्व विद्या है, उसीके गह्वर में घुस पडता हूँ। अब हिम्मत नही होती। (थोड़ी दूर जाकर फिर लौट आता है) नदिनी, एक बात तुमसे पूछूं, यक्षपुरी से तुम डरती नही ?

नंदिनी : डरने की क्या बात है ?

अध्यापक : ग्रहण के सूर्य से लोग डरा करते हैं, पूर्ण सूर्य से कोई नही डरता। यक्षपुरी ग्रहण-लगी पुरी है। सोने की खदान रूपी राहु ने उसे निगल लिया है। वह स्वयं पूर्ण नही है, किसी को पूर्ण रहने भी नहीं देना चाहती। मै तुमसे कहता हूँ तुम यहाँ मत रहो। तुम जब चली जाओगी तो ये खदानें और भी मुँह बाकर हमारी ओर ताकती रहेंगी। फिर भी कहता हूँ, भाग जाओ ! जहाँ के लोग डकैती करके माता वसुंधरा के आँचल को टुकडे-टुकड़े करके कुचल नही देते, वही रजन को लेकर सुखपूर्वक रहो। (कुछ दूर जाकर फिर लौटता है) नंदिनी, तुम्हारे हाथ मे वह जो लाल कनेर का कगन है उसमे से एक फूल निकालकर दोगी ?

नंदिनी : क्यो, तुम क्या करोगे ?

अध्यापक : कितनी ही बार सोचा है कि तुम जो लाल कनेर का कगन पहनती हो, उसका कुछ अर्थ है।

नदिनी : मैं तो उसका अर्थ नही जानती।

अध्यापक : शायद तुम्हारा भाग्यपुरुष जानता है। उस लाल आभा मे एक भय-मिश्रित रहस्य है, केवल माधुर्य नही।

नंदिनी : मुझमें भय ?

अध्यापक : विधाता ने सुन्दर के हाथो रक्त की तूलिका दी है। पता नही इस लाल रंग से तुम कौन-सा लेखा लिखने आई हो। मालती थी,

मल्लिका थी, चमेली थी—सब छोड़कर तुमने इसी फूल को क्यों चुन लिया? जानती हो, मनुष्य इसी प्रकार अनजान मे अपना भाग्य चुन लेता है।

नदिनी : रजन कभी-कभी मुझे दुलराकर कनेर कहा करता है, मालूम नही क्यो। मुझे ऐसा लगता है कि रजन के प्रेम का रग लाल है, मैंने उसी रग को गले मे पहना है, वक्ष-स्थल पर धारण किया है, हाथ में पहन रखा है।

अध्यापक : तो मुझे उसका एक फूल दे दो, सिर्फ़ एक क्षण का दान! मैं उस रंग के तत्त्व को समझने की चेष्टा करूँ।

नदिनी : यह लो। आज रजन की अवाई की खुशी मे यह फल मैंने तुम्हे उपहार दिया।

[अध्यापक का प्रस्थान]

(खदान के मजूर गोकुल का प्रवेश)

गोकुल : एक बार मुंह फिराओ तो भला। तुम्हे समझ ही नही सका। कौन हो तुम?

नदिनी : मुझे जो कुछ देख रहे हो उसके सिवा मैं और कुछ नही हूँ। समझने की तुम्हे ज़रूरत क्या है?

गोकुल : समझे बिना अच्छा नही लगता। यहाँ राजा तुम्हे किस काम के लिए ले आए है?

नदिनी : अकाज के लिए।

गोकुल : तुम्हारे पास जैसे कोई मन्तर है! सबको तुमने वश मे कर लिया है! सत्यानाशी हो तुम! जो लोग तुम्हारा यह सुन्दर मुख देखकर भूलेंगे, वे मरेंगे। देखूँ भला तुम्हारी माँग मे वह क्या झल रहा है?

नदिनी : लाल कनेर की मजरी।

गोकुल : उसका मतलब?

नंदिनी : उसका कोई मतलब नही।

गोकुल : मै तुम्हारा बिलकुल विश्वास नही करता। एक कैसा जाल तुमने फैलाया है! दिन बीतते-न बीतते कोई-न-कोई एक आफत तुम जरूर ले आओगी, इसीलिए इतना सिंगार किया है। भयंकरी हो तुम, भयकरी!

नदिनी मै तुम्हे इतनी भयंकर क्यो लगती हूँ ?

गोकुल : देखकर जान पडता है तुम लाल रोशनी की मशाल हो। जाता हूँ वेवकूफों को समझाकर कह देने—'सावधान, सावधान, सावधान !'

(प्रस्थान)

नदिनी : (जाल के दरवाज़े पर धक्का मारती है) सुन रहे हो ?

नेपथ्य से : सुन रहा हूँ नन्दा ! लेकिन वार-वार मत पुकारो, मेरे पास समय नही है, बिलकुल नही।

नंदिनी : आज मेरा मन खुशी से भरा है। उसी खुशी को लेकर तुम्हारे घर मे आना चाहती हूँ।

नेपथ्य से : नही, घर मे नही। जो कुछ कहना हो, बाहर से ही कहो।

नदिनी कुन्द-फूल की माला गूँथकर लाई हूँ, पद्म-पत्रो के दौने मे।

नेपथ्य से खुद पहन लो।

नदिनी : मुझे नही फबती, मेरी माला कनेर की है।

नेपथ्य से . मैं पर्वत की चोटी की तरह हूँ। शून्यता ही मेरी शोभा है।

नदिनी : उस चोटी के वक्ष स्थल से भी झरना झरा करता है, तुम्हारे गले मे भी हार लहरायगा। जाल खोल दो मै भीतर आऊँगी।

नेपथ्य से आने नही दूँगा, जो कहना हो शीघ्र बोलो, समय नही है।

नदिनी : दूर का वह गान सुन रहे हो ?

नेपथ्य से . कैसा गान ?

नदिनी : पौष का गान। फसल पक गई है। कटनी होगी, यह उसीका गान है

गान—१

पौष तुम्हें बुला रहा है; आ जाओ आ जाओ ! आज उसकी डलिया पकी फसल से भर गई है, आहा कैसा सुन्दर है यह ! देखगे नही हो पौष की धप पके धान की सुन्दरता को आकाश मे फैलाए दे रही है।

गान—२

दिग्वधुएँ धान के खेतों में हवा के नशे से मतवाली हो उठी हैं।

मिट्टी के ऑंचल पर धूप का सोना बिखर पड़ा है। आहा, कैसी विचित्र शोभा है।

तुम भी निकल जाओ राजा, तुम्हे मैं मैदान की ओर ले चलूँगी—

गान—३

मैदान की वंशी ध्वनि सुन-सुनकर आकाश आनन्दित हो उठा है। कौन है जो आज घर में रहना चाहेगा। द्वार खोलो, द्वार खोलो।

नेपथ्य से . मैं मैदान जाऊँगा ? वहाँ मै किस काम आऊँगा ?

नदिनी · मैदान का काम तुम्हारी इस यक्षपुरी के काम से कही अधिक सहज है।

नेपथ्य से · सहज काम ही मेरे लिए कठिन होता है, कभी तालाब भी फेन के नूपुर पहनने वाले झरने के समान नाच सकता है ? जाओ, जाओ, अब मत बोलो, समय नही है।

नंदिनी : अद्भुत है तुम्हारी शक्ति ! जिस दिन तुमने मुझे अपने भण्डार मे घुसने िया था, उस दिन तुम्हारे सोने के ताल को देखकर मुझे बिलकुल आश्चर्य नही हुआ था, किन्तु जिस विराट् शक्ति के बल पर अनायास ही उसे लेकर पहाड को चोटी की तरह सजा रहे थे, वही देखकर मैं मुग्ध हो गई थी। तो भी पूछती हूँ राजा, सोने का पिड क्या तुम्हारे हाथो के अचरज-भरे छन्द से उसी प्रकार चचल हो उठता है जिस प्रकार धान का खेत हो सकता है ? अच्छा राजा, बताओ तो भला, पृथ्वी का यह मरा धन दिन-रात उलटते-पलटते रहते हो, तुम्हे डर नही लगता ?

नेपथ्य से : क्यो, डर काहे का ?

नदिनी · पृथ्वी हमारे प्राणो की वस्तु को प्रसन्न होकर स्वय देती है, किन्तु जब उसकी छाती चीरकर मेरे हाड़ को ऐश्वर्य कहकर छीन लाते हो, तब तुम अँधेरे मे से एक अन्धे राक्षस का श्राप ले आते हो। देखते नही, यहाँ सभी कैसे-कैसे झुँझलाए हुए-से लगते है।

नेपथ्य से . श्राप ?

नदिनी : हाँ, खून-खच्चर, लूट-खसोट का श्राप ?

नेपथ्य से उस श्राप की बात मै नही जानता। इतना जानता हूँ कि हम शक्ति

लेकर आते है। मेरी शक्ति देखकर तुम खुश होती हो नदिनी ?

नंदिनी : बड़ी खुशी होती है। इसीलिए तो कहती हूँ कि उजाले मे निकल जाओ, धरती पर पाँव रखो, पृथ्वी भी खुश हो जाय।

गान—४

धान की फुनगियों पर ओस लगने से आलोक की प्रसन्नता जाग उठी है। आहा, पृथ्वी की खुशी आज उसके हृदय में समा नहीं रही है, वह देखो, वह आनन्द उछल रहा है ! आहा, कैसी विचित्र शोभा है !

नेपथ्य से : नदिनी, तुम्हे क्या मालूम है कि विधाता ने रूप की माया के अन्तराल मे तुम्हे अनुपम बना रखा है ? उसमे से छीनकर तुम्हे मुट्ठी मे करना चाहता हूँ, पर पकड़ नही पाता। मै तुम्हे उलट-पुलटकर देखना चाहता हूँ, और न देख सका तो तोड-फोड़ देना चाहता हूँ।

नदिनी : तुम क्या कह रहे हो ?

नेपथ्य से : तुम्हारे उस लाल कनेर की जो आभा है, महज उस आभा को निचोड़कर मै अपनी आँखो मे अजन क्यो नही कर पाता ? मामूली-सी कई पँपड़ियो ने आँचल से उसे ढक रखा है। ऐसी ही बाधा तुममे भी है—कोमल है, इसलिए कठोर है ! अच्छा नदिनी, साफ-साफ बताओ, तुम मुझे क्या समझती हो ?

नदिनी : यह और किसी दिन बताऊँगी। आज तो तुम्हारे पास समय नही है। आज जाती हूँ।

नेपथ्य से : नही नही, जाओ मत ! मुझे क्या समझती हो, बताए जाओ।

नदिनी : कितनी ही बार तो कहा है, तुम्हें आश्चर्यमय समझती हूँ। अपने प्रकाण्ड हाथो से प्रचड जोर के साथ तुम फूलते-फूलते ऊपर उठे हो, ठीक तूफान के आगे-आगे चलने वाले बादल की तरह—देखकर मेरा मन नाच उठता है।

नेपथ्य से : . रजन को देखकर भी तो तुम्हारा मन नाच उठता है, वह भी क्या—

नदिनी : रहने दो उस बात को। तुम्हे तो समय नही है।

नेपथ्य से : समय है, सिर्फ़ बताए जाओ !

नंदिनी : उस नाच का ताल और तरह का है, तुम नही समझ सकोगे।

नेपथ्य से समझूँगा। समझना चाहता हूँ।

नंदिनी : सारी बात खोलकर नही समझा सकती, मैं जाती हूँ।

नेपथ्य से . रुको ज़रा। बताओ मै अच्छा लगता हूँ या नही ?

नंदिनी हाँ खूब अच्छे लगते हो।

नेपथ्य से : रजन की तरह ?

नंदिनी . घूम-फिरकर एक ही बात। ये सारी बाते तुम नही समझते।

नेपथ्य से . कुछ-कुछ समझता हूँ। मैं जानता हूँ रजन के साथ मेरा अन्तर क्या है। मेरे अन्दर जोर-ही-जोर है, रजन मे जादू है।

नंदिनी . जादू किसे कहते हो ?

नेपथ्य से · समझाकर कहूँ ? पृथ्वी के निचले तले मे पिंडीभूत पत्थर है, लोहा है, सोना है, यहाँ जोर की मूर्ति रहती है। उपरले तले मे ज़रा-सी कच्ची मिट्टी है, उस पर उगी है घास, खिले हैं फूल—वही जादू का खेल है। मैं दुर्गम के बीच से हीरा ले आता हूँ, मणि-माणिक ले आता हूँ, लेकिन सहज के बीच से प्राण के उस जादू को नही ला पाता।

नंदिनी : तुम्हारे पास इतना है तो भी बराबर इस प्रकार लोभी की तरह बाते क्यो किया करते हो ?

नेपथ्य से · मेरे पास जो कुछ है सब बोझ हो गया है। सोना जमाते रहने से वह पारस पत्थर थोड़े ही हो जाता है।—शक्ति को जितना भी क्यो न बढाऊँ वह यौवन तक नही उठ सकती है। इसलिए पहरा बैठाकर तुम्हे बाँधना चाहता हूँ, रजन की तरह मेरे यौवन होता तो तुम्हे खुली रखकर ही बाँध सकता। इसी तरह बंधन की रस्सी मे गाँठ देते-देते दिन कट गए। हाय रे हाय, सब-कुछ बँधता है, केवल आनन्द नही बँधता।

नंदिनी . तुमने तो खुद को ही जाल मे बाँध रखा है, तब फिर क्यो इस प्रकार छटपटा रहे हो कुछ समझ में नही आता।

नेपथ्य से तुम नही समझ सकोगी। मैं एक विशाल रेगिस्तान हूँ—मरुभूमि। तुम्हारे समान एक-एक छोटी-सी घास की तरफ हाथ फैलाकर

चिल्ला रहा हूँ—मै तप्त हूँ, मैं रिक्त हूँ, मै क्लान्त हूँ। प्यास की जलन से इस रेगिस्तान ने न जाने कितनी उपजाऊ जमीनो को चाट डाला है, लेकिन इससे रेगिस्तान का ही फैलाव चढ़ता गया है, एक मामूली-सी कमजोर घास मे जो प्राण है उसे वह अपना नही सका है।

नदिनी : तुम्हे देखकर तो ऐसा नही लगता कि तुम क्लान्त हो। मै तो तुम्हारी जवरदस्त ताकत ही देख रही हूँ।

नेपथ्य से . नदिनी, एक दिन दूर देश मे मेरे ही-जैसा एक क्लान्त पहाड दिखाई पड़ा था। वाहर से मैं समझ ही नही सका कि उसके सभी पत्थर भीतर-भीतर व्यथित हो उठ है। एक दिन वड़ी रात गए भयकर आवाज सुनाई पड़ी, ऐसा जान पडा मानो किसी दैत्य का दु स्वप्न उमड़-घुमड़कर एकाएक फट पडा हो। सवेरे क्या देखता हूँ कि पहाड भूकम्प से ढह पडा है। शक्ति का भार अनजाने मे किस तरह आदमी को पीस देता है, यह वात उस पहाड को देखकर ही समझ सका था। और तुममे एक वात है—ठीक इससे उल्टी।

नदिनी : मुझे क्या देख रहे हो ?

नेपथ्य से . विश्व की वशी मे नाच का जो छद बजा करता है, वही छंद।

नदिनी कुछ समझ नही सकी।

नेपथ्य से . उस छन्द मे वस्तु का विपुल भार हल्का हो जाता है। उस छन्द मे ग्रह-नक्षत्रो के दल भिखारी नट-वालको की भाँति आसमान के कोने-कोने मे नाचते फिर रहे है। उसी नाच के छन्द मे तुम इतनी सहज हो गई हो नदिनी, इतनी सुन्दर! मेरी तुलना मे तुम कितनी सी हो, फिर भी मै तुमसे ईर्ष्या करता हूँ।

नदिनी तुमने अपने को सवसे छीनकर वचित कर रखा है, सहज होकर सवकी पकड के भीतर क्यो नही आते ?

नेपथ्य से . अपने को गुप्त रखकर विश्व के वडे-वडे माल-खजानो की मोटी मोटी रकमे चुराने बैठा हूँ। लेकिन जो दान विधाता के हाथ की मुट्ठी मे वन्द है उस दान तक तुम्हारी चम्पे की कली-सरीखी उँगलियाँ जितना पहुँच सकती है, मेरे सारे शरीर की ताकत भी

उतना तक नही पहुँच पाती। विधाता की वह बँधी मुट्ठी मुझे खोलनी ही पड़ेगी।

नंदिनी : तुम्हारी ये सब बाते मैं अच्छी तरह समझ नही सकती; मैं चली।

नेपथ्य से : अच्छा, चली जाना—लेकिन खिड़की से मै अपना हाथ बढा रहा हूँ, तुम एक बार अपना हाथ इस पर रखो तो।

नदिनी : ना, ना तुम्हारा सब-कुछ छोड़कर सिर्फ एक हाथ निकलने से मुझे डर लगता है।

नेपथ्य से : सिर्फ एक हाथ से पकडना चाहता हूँ, इसीलिए सभी मेरे पास से भाग जाते है। लेकिन सब-कुछ से अगर तुम्हे पकड़ना चाहूँ तो तुम धराई दोगी नंदिनी ?

नंदिनी : तुमने तो मुझे घर में आने ही नही दिया तब यह सब क्यो कह रहे हो ?

नेपथ्य से : अपनी अवकाश-हीनता की उल्टी धारा मे ठेलकर मैं तुम्हे घर मे नही ले आना चाहता। जिस दिन अनुकूल हवा पाल मे लगेगी और तुम अनायास ही आ जाओगी उसी दिन प्रवेश का शुभ लग्न होगा। वह हवा अगर तूफान की हवा हो, तो भी अच्छा है। अभी समय नही आया है।

नंदिनी : मैं तुमसे कहे देती हूँ राजा, उस हवा को रजन ले आयगा। वह जहाँ जाता है वही साथ मे छुट्टी लिये जाता है।

नेपथ्य से : तुम्हारा रंजन जिस छुट्टी को ढोता फिरता है उसे लाल कनेर के मधु से कौन भरे रहता है, यह क्या मै नही जानता ? नंदिनी, तुमने तो मुझे खाली छुट्टी की खबर दी है, उसे भरने के लिए मैं मधु कहाँ पाऊँगा ?

नदिनी : तो फिर आज मैं जाऊँ।

नेपथ्य से : नही, इस बात का जवाब दिये जाओ।

नदिनी : रजन को देखकर ही जान सकोगे कि छुट्टी मधु से कैसे भर उठती है। वह बहुत सुन्दर है।

नेपथ्य से . सुन्दर का जवाब सुन्दर ही पाता है। असुन्दर जब जवाब छीन लेना चाहता है तो वीणा का तार बजता नही, टूट जाता है। अब नही, जाओ, जल्दी चली जाओ—नही तो आफत आ सकती है।

नंदिनी : जाती हूँ, किन्तु कहे जाती हूँ, आज मेरा रंजन आयगा, आयगा, तुम उसे रोक नही सकोगे. किसी प्रकार नही।

[प्रस्थान]

(खदान के मजूर फागूलाल और उसकी स्त्री का प्रवेश)

फागूलाल : मेरी शराब तुमने कहाँ छिपा रखी है चन्द्रा ? निकालो !

चद्रा : सो क्या ? सुबह-सुबह शराब की ही बात ?

फागूलाल : आज छुट्टी का दिन है। कल उन लोगो का मारण-चडी का व्रत था। आज ध्वजा-पूजा होगी और उसीके साथ अस्त्र-पूजा भी।

चद्रा : क्या कह रहे हो ? वे भी देवी-देवता मानते है क्या ?

फागूलाल : नही देखा तुमने ? उनका शराब का भण्डार, अस्त्रशाला और मदिर बिलकुल सटे हुए हैं।

चद्रा : तो तुम्हे छुट्टी मिली है इसीलिए शराब चाहिए। गाँव में रहते थे तो परब की छुट्टी को तो—

फागूलाल : वन की चिड़िया छुट्टी पाती है तो उडती है, और पिंजड़े में बन्द रहती है तो छुट्टी देने पर सिर कूटकर मर जाती है। यक्षपुरी मे काम-काज की अपेक्षा छुट्टी ही एक बला है।

चद्रा : छोड़ दो ना काम, चलो घर चले।

फागूलाल : तुम्हे शायद मालूम नही, घर का रास्ता बन्द है।

चद्रा : बन्द क्यो होगा ?

फागूलाल : क्योकि हमारे घर से इन लोगो को कोई मुनाफा नही है।

चद्रा : हम क्या उनकी जरूरत से कसके चिपका दिये गए है ? हममे फालतू कुछ भी नही है ?

फागूलाल : हम लोगो का विशू पगला कहा करता है कि पूरा बनकर रहना बकरे को खुद के लिए ही जरूरी है; जो लोग उसे खाते है वे उसकी हड्डी-पसली, खुर-पूंछ अलग करके ही खाते है। यहाँ तक कि वह जब कसाई के खूंटे के पास 'म्याँ-म्याँ' करके चिल्लाता है, उसे भी वे लोग बेकार कहकर ही एतराज किया करते है। वह देखो विशू पगला गाना गाता-गाता इधर ही आ रहा है।

चद्रा : अचानक कुछ दिनो से उसके गले मे गान खुल गया है।

फागूलाल : यही तो देख रहा हूँ।

चद्रा : उसे नदिनी लगी है, उसने इसके प्राण भी खीचे है, गान भी।

फागूलाल : इसमें अचरज क्या है ?

चद्रा : नही, अचरज कुछ भी नही है। अजी, तुम भी सावधान रहो, किसी दिन तुम्हारे गले से भी गान निकाल लेगी—उस दिन मुहल्ले वालों की क्या दशा होगी ? मायाविनी माया जानती हैं। आफ़त लायगी।

फागूलाल : विशू की आज आफत तो नही आई है। यहाँ आने के बहुत पहले से वह नदिनी को जानता है।

चद्रा : (विशू को पुकारकर) समधी, सुनते जाओ, सुनते जाओ। कहाँ चले ? गान सुनने वाले यहाँ एकाध मिल सकते है, बिलकुल नुकसान ही नही होगा।

[विशू का प्रवेश और गान]

गान—५

कौन थे, तुम मेरी स्वप्न-नौका के नाविक ? पाल में नशीली हवा लगी, पागल प्राण गाता हुआ चल पड़ा। मुझे भुलावा दे जाओ, अपनी नैया खेकर मुझे अपने सुदूर घाट की ओर ले चलो।

चद्रा : तब कोई आशा नही है। हम लोग तो बहुत नजदीक है।

विशू :

गान—६

मेरी सारी चिन्ताएँ झूठी हैं; मेरा सब-कुछ पीछे रह जाय, तुम अपना घूँघट खोल दो, अपनी आँखें उठाकर देखो, अपनी हँसी से मेरे प्राण आच्छादित कर लो !

चंद्रा : तुम्हारी स्वप्न-नौका की उस लडकी को मै जानती हूँ।

विशू : बाहर से कैसे जानोगी ? मेरी नैया के भीतर से तो तुमने देखा नही।

चद्रा : कहे देती हूँ, वह एक दिन नाव डुबा देगी—वही तुम्हारे दुलार की नदिनी !

[खदान-मजूर गोकुल का प्रवेश]

गोकुल : देखो विशू, वह तुम्हारी नदिनी अच्छी नही जँचती।

विशू . क्यो, क्या किया उसने ?

गोकुल : कुछ किया नही, इसीलिए तो खटका लगता है। यहाँ का राजा खामखा उसे क्यो यहाँ ले आया है ? उसका रंग-ढग कुछ समझ मे नही आता।

चद्रा : समधी, यह हमारे दु.ख की जगह है, यहाँ आकर वह आठो पहर सुन्दरीगिरी करती फिरेगी, यह हम नही देख सकती।

गोकुल हमारा तो सीधे-सादे मोटे-सोटे चेहरे मे विश्वास है, जरा भारी-भरकम और वजनदार होना चाहिए।

विशू दिक्कत यह है कि यक्षपुरी की हवा सुन्दर के प्रति अवज्ञा सिखा देती है। सुन्दर तो नरक मे भी है, पर वहाँ रहने वाले उसे समझ नही पाते, यही तो उसकी सबसे बडी सजा है।

चंद्रा : अच्छा, तुम्हारी ही सही। मान लिया हम लोग मूर्ख ही है, परन्तु जानते हो, यहाँ का सर्दार भी उसे फूटी आँखो नही देख पाता ?

विशू : देखो चद्रा, ऐसा न हो कि सर्दार की फूटी आँखो की छूत तुम्हे भी लग जाय। यह छूत लगी तो हमे देखकर भी तुम्हारी आँखे लाल हो जायँगी। अच्छा फागू, तेरा क्या खयाल है ?

फागूलाल : साफ कहता हूँ दादा ! नदिनी को जब देखता हूँ तो अपनी ओर देखने पर शर्म मालूम होती है। उसके सामने मुँह से बात ही नही निकलती।

गोकुल : विशू भाई, उस लडकी ने तुम्हारा मन भुला दिया है, इसीलिए तुम देख नही सकते कि कैसी कुलच्छनी है वह। यह बात समझने मे वहुत देर नही लगेगी, मैं कहे रखता हूँ।

फागूलाल विशू भैया, तुम्हारी समधिन जानना चाहती है कि हम लोग शराब क्यो पीते है ?

विशू स्वय विधाता की कृपा से चारों ओर मदिरा की ही जय-जयकार है, यहाँ तक कि तुम्हारी आँखो के उस कटाक्ष मे भी। हम अपनी इस भुजा से काम जुगाया करते और तुम अपनी भुजलताओ के वंधन से मदिरा जुगाया करती हो। जानती हो समधिन, जीवलोक मे मजूरी करनी पडती है और उसे भूलना भी पडता है। मदिरा न हो तो उसे भुलायगा कौन ?

चद्रा : और नही तो क्या ! तुम्हारे-जैसे जनम के मतवालो के ऊपर

विधाता की दया का कोई आर-पार नहीं है। शराब का भाण्ड एकदम उलट दिया है।

विशू : एक तरफ़ भूख और प्यास चाबुक मार रही हैं, कलेजे में आग लगाए दे रही है, काम करो। दूसरी तरफ वन की हरियाली ने माया फैला दी है, धूप के सोने ने माया बखेर दी है, वे चित्र मे मस्ती ले आ दे रहे हैं, कहते हैं—छुट्टी, छुट्टी, छुट्टी।

चद्रा : इसीको शराब कहते है क्या ?

विशू : प्राणो की शराब ! नशा हल्का है मगर खुमारी दिन-रात लगी हुई है। सुबूत देता हूँ। इस राज में आया और पाताल में सेंध मारने के काम मे लग गया। महज शराब का नसीब होना दूभर हो गया। इसीलिए तो अन्तरात्मा बाजारू शराब से मतवाला बना घूम रहा है। जब सहज ही साँस लेने मे बाधा पड़ती है, तभी आदमी हाँफने लगता है।

गान—७

तेरे प्राणो का रस तो सूख गया है, तो फिर तू मरण-रस से प्याला भर ले। चिताग्नि को पिघलाकर ढाला गया है जो समस्त ज्वालाओं की ज्वाला मिटा देता है। अपनी ठहाके की हंसी से वह समस्त शून्य को रंगीन बना देता है।

चँद्रा : चलो ना समधी, भाग चले हम !

विशू : उस नीले चँदोवे के नीचे खुली शराब के अड्डे पर ! राह बन्द है। इसीलिए तो इस कदखाने की शराब पर जो असल मे चोरी का माल है, हमारा खिंचाव इतना ज्यादा है। हमारे पास न तो आकाश है, न अवकाश है, इसीलिए बाहर घण्टे की सारी हँसी और गान को, सूर्य के उजाले को कड़ा करके एक घूंट तरल आग के रूप में चुआ लिया है। जैसी ही ठोस गुलामी है, वैसी ही घनी छुट्टी भी।

गान—८

तेरा सूर्य गहन मेघ के नीचे था, तेरा दिन बेकाम के काम में ही नष्ट हो गया तो फिर लुप्तिरूपी नसे की चरम-संगिनी अंधकार-रात्रि ही क्यों न आ जाय और दिग्भ्रम के नशे से तेरी क्लांत

आँखों को ढँक दे।

चंद्रा : कुछ भी कहो समधी, यक्षपुरी मे तुम्हीं लोगो मे मस्ती आई है। हम औरते तो कुछ भी नही बदलीं।

विशू : बदली नही तो क्या ? तुम लोगो का फूल सूख गया है अब सोना-सोना करके प्राण हाँफ रहा है।

चद्रा : कभी नहीं।

विशू : मैं कहता हूँ, हाँ वह अभागा फागू बारह घटे के बाद और भी चार घटे सिर कूटता है; इसका कारण न फागू जानता है, न तुम जानती हो, अन्तर्यामी जानते हैं। तुम्हारे सोने के स्वप्न भीतर-ही-भीतर उसे चाबुक मारते है, यह चाबुक सर्दार चाबुक से भी कड़ा है।

चंद्रा : अच्छा, भाई अच्छा। अब चलो न यहाँ से देस लौट जायँ।

फागूलाल : अच्छा भाई विशू, तुम तो एक दिन पोथी पढ़-पढ़कर आँख खराब करने बैठे थे, तुम्हे भला हमारे-जैसे मूर्खो के साथ कुदाल पकड़वा दिया, सो कैसे हुआ ?

चद्रा : इतने दिनो से हूँ, समधी से इस सवाल का जवाब नही वसूल किया जा सका।

फागूलाल : और मजा यह है कि बात सभीको मालूम है।

विशू : क्या मालूम है, सुनूँ भला ?

फागूलाल : हमारी खबर लेने के लिए उन्होने तुम्हे चर बनाकर रखा था।

विशू : तुम सब जानते थे तो मुझे जीता क्यों छोड दिया।

फागूलाल : यह भी जानते हैं कि यह काम तुमसे हुआ नही।

चद्रा : क्यो समधी, ऐसे आराम के काम मे भी नही टिक सके ?

विशू : आराम का काम कहती हो, एक जीती-जागती देह के पीछे पीठ के फोड़े की तरह लगे रहने को ? मैंने कहा, 'शरीर खराब लग रहा है, देस जा आऊँगा।' सर्दार बोले, 'आह, इतना कमजोर शरीर लेकर देस जा भी कैसे सकोगे ? फिर भी कोशिश करके देखो।' कोशिश करके देख लिया। मालूम हुआ कि यक्षपुरी के कौर में घुस जाने पर उसका बाया हुआ मुँह बन्द हो जाता है, फिर तो उसके पेट मे जाने के सिवा और कोई रास्ता रह ही नही जाता। आज मैं उसके

उसी आशाहीन आलोकहीन पेट में गायब हो गया हूँ। अब तुममे-मुझमे फ़र्क इतना ही है कि सर्दार तुम्हारी जितनी अवज्ञा करता है, मेरी उससे कही अधिक। केले के फटे पत्ते की अपेक्षा फूटी हाँडी पर आदमी की अवहेलना ज्यादा होती है।

फागूलाल : कुछ परवाह नही, विशू दादा, हम तो तुम्हे सिर-माथे लिये ही है।

विशू : बात फूटते ही मार डाला जाऊँगा। जहाँ तुम सबोका दुलार जाता है वही सर्दार की आँख पहुँचती है। सुनहरा मेढक जितना ही मकमकाकर काले मेढक का स्वागत करता है, उतना ही वह साँप के कानो पहुँचता है।

चद्रा : तुम लोगो का काम कब खत्म होगा ?

विशू : पत्रे मे दिन का अन्त तो लिखा नही। एक दिन के बाद दो दिन, दो दिन के बाद तीन दिन—खदान काटते ही जा रहे है—एक हाथ के बाद दो हाथ, दो हाथ के बाद तीन हाथ। ताल का ताल सोना काट लाते हैं—एक ताल के बाद दो ताल, दो ताल के बाद तीन ताल। यक्षपुरी मे अक-पर-अंक कतार बाँधकर चले है, किसी अर्थ तक नही पहुँचते। इसीलिए उनके यहाँ आदमी नही, सख्या है। फागू भाई, तुम क्या हो ?

फागूलाल . पीठ के कपड़े पर निशान है; मैं ४७ फ हूँ।

विशू : मै ६९ ड। गाँव मे आदमी था, यहाँ आकर दस-पचीस का छक्का हो गया हूँ। छाती पर जुए का खेल चल रहा है।

चद्रा : समधी, सोना तो उनके बहुत हो गया, अब और की क्या ज़रूरत है ?

विशू : जरूरत नामक वस्तु का कोई अन्त है ? खाने की ज़रूरत नही हैं, पेट भरने पर उसका अन्त मिल जाता है; नशे की जरूरत नही है, इस कारण उसका अन्त भी नही है। वे सोने के ताल भी तो शराब है, हमारे यक्षराज्य की ठोस शराब ! नही समझी ?

चंद्रा : ना !

विशू : शराब का प्याला लेकर हम भूल जाते है कि हम भाग्य की सीमा मे बँधे है। समझते है, हमारी छुट्टी अबाध है ! यहाँ के मालिको के मन मे भी सोने का ताल हाथ मे आते ही ऐसा ही मोह लगता

है। वह सोचता है कि सर्वसाधारण की मिट्टी का खिंचाव उस तक नही पहुँचता, और फिर वे असाधारण के आसमान मे भी उड़ते है।

चंद्रा : नवान्न का समय आया ही समझो। गाँव-गाँव मे उसकी तैयारी हो रही है। पैरो पड़ती हूँ, चलो घर चले। एक वार हम सब लोग अगर सर्दार से——

विशू : स्त्री-बुद्धि से तुमने शायद अभी भी सर्दार को नही पहचाना ?

चंद्रा : क्यो उसे देखने से तो मुझे अच्छा ही—

विशू : हाँ हाँ, वहुत अच्छा, 'जगर मगर तन जोति !' घड़ियाल के दाँत हैं, वडे कायदे से प्रत्येक खाँज पर जाते हैं। मकरराज स्वय चाहे तो भी नही निकाल सकते।

चंद्रा : वह देखो सर्दार आ रहे है।

विशू : हो चुका ! उसने हमारी वात ज़रूर सुनी है।

चंद्रा : क्यो हमने ऐसा तो कुछ नही कहा जिससे——

विशू : नही जानती समधिन, वात हम करते है, मानी वे लगाते है। इसलिए किस बात की टीका किस छप्पर मे आग लगा देगी, कोई नही जानता।

(सर्दार का प्रवेश)

चंद्रा : सर्दार दादा!

सर्दार : क्या, नातिन, समाचार तो अच्छे है न ?

चंद्रा : एक वार घर जाने की छुट्टी दो।

सर्दार : क्यो ? रहने की जो कोठरियाँ दी है वे तो वहुत अच्छी है, घर से कही अधिक अच्छी। सरकारी खर्च से चौकीदार तक का इन्तजाम कर रखा है। क्यो जी ८९ ड ! तुम्हे इसके वीच देखने से ऐसा लगता है जैसे सारस वगलो के दल को नाच सिखाने आए है।

विशू : सर्दार जी, तुम्हारे मज़ाक से तबीयत खिलती नही पाँवो मे नाचने की ताकत होती तो यहाँ से समेटकर दौड़ लगाता। तुम्हारे इलाके मे नचाने का रोज़गार कितना खतरनाक है इस वात के मोटे-मोटे दृष्टान्त मैंने देखे है। अव तो ऐसा हुआ कि सीधी चाल चलते भी पैर काँपने लगते हैं।

सर्दार : नातिन,एक अच्छी खबर है। इन लोगो को अच्छी बाते सुनाने के लिए कीनाराम गोसाईं को बुलवाया है। इन लोगों से प्रणामी वसूल होने पर खर्चा निकल आयगा। गोसाईं जी से ये लोग रोज साँझ को—

फागूलाल ना, ना, सर्दार, यह नही होने का। आजकल साँझ को शराव पीकर हम बुद्द वने रहते है, कोई उपदेश सुनाने आया तो ख़ून-खरावी हो जायगी।

विशू चुप, चुप, फागूलाल !

(गोसाईं का प्रवेश)

सर्दार : यह लो, नाम लेते ही गोसाईं जी आ पहुँचे। प्रणाम करता हूँ महाराज ! हमारे इन कारीगर वेचारो का दिल कमजोर है, बीच-बीच मे चंचल हो उठता है। इनके कान मे जरा शान्ति-मन्त्र फूँक दे—वडी जरूरत है !

गोसाई . इनकी वात कह रहे हो ? आहा, ये तो साक्षात् कच्छप-अवतार है ! इन्होने अपने-आपको वोझ के नीचे दवा रखा है, तभी तो ससार टिका हुआ है। सोचने से रोमाच होता है ! हाँ बावा ४७ फ, एक बार विचार देखो तो, हम जिस मुख से नाम-कीर्तन करते हैं उस मुख के लिए अन्न कौन जुगाता है ? तुम्ही लोग न ? जिस राम नाम से मेरा शरीर पवित्र हो रहा है उसे तुमने ही तो एडी-चोटी का पसीना एक करके वनाया है। यह कोई मामूली बात है ! आशीर्वाद देता हूँ—तुम लोग सदा अचल रहो, तभी भगवान् की दया भी तुम्हारे ऊपर अचल होकर विराजेगी। हाँ वावा, एक वार दिल खोलकर वोलो तो—हरे राम हरे राम राम-राम हरे-हरे ! भगवान् तुम्हारा सब वोझ हल्का कर दे ! हरिनाम ही 'आदावन्ते च मध्ये च !'

चद्रा आहा, कितना मीठा लग रहा है वावा, वहुत दिनो से ऐसी वात नही सुनी। जरा चरनो की धूल तो दो महाराज !

फागूलाल . अब तक चुप्पी साधे था, पर अव नहीं रह सकता। सर्दार, इतनी वडी फिजूलखर्ची काहे के लिए भला ? प्रणामी वसूल करना चाहते हो कर लो, मगर पाखड नही सहा जायगा।

विशू : अरे फागूलाल, पगलाया तो खैर नही, चुप-चुप ?

चंद्रा : तुम नरलोक-परलोक दोनो खाने बैठे हो ? तुम्हारी क्या गति होगी ? ऐसी कुबुद्धि तो पहले तुममे नही थी। मै ठीक देख रही हूं, तुम लोगों को उस नदिनी की हवा लगी है।

गोसाई : जो कहो, सर्दार, ऐसी सरलता हमने नही देखी ! पेट और मुँह बिलकुल एक ! इन्हे हम क्या सिखायेंगे, इन्हीसे तो बहुत-कुछ सीखना है। समझे ?

सर्दार : जरूर समझा। यह भी समझ रहा हूँ कि उत्पात कहाँ से शुरू हुआ है। इनका भार मुझे ही लेना पडेगा। महाराज, बल्कि उस मुहल्ले मे हरिनाम सुना आवे। वहाँ करातियों ने कुछ गोल-माल शुरू किया है।

गोसाई : किस मुहल्ले की ओर कहा, सर्दार ?

सर्दार : वो उस ट-ठ-महाल मे। वहाँ का मुखिया है ७१ ट। ६५ ण जहाँ रहता है न, उसकी बाई ओर वह महाल खतम हो जाता है।

गोसाई : हाँ बाबा, न-महाल अब भी नटखटपन मे मशगूल है, लेकिन ण-महाल वाले मधुर रस मे बहुत-कुछ डूब चले हैं। उनके काम प्रायः मन्त्र लेने लायक हालत मे आ गए है। तो भी और कई महीने उस मुहल्ले मे पल्टन रखने की जरूरत पड़ेगी, क्योकि लिखा ही है, 'नाहकारात् परो रिपुः'। पल्टन वालो के दबाव से अहकार का दमन होता है, फिर हम लोगो की पारी आती है। अच्छा, तो फिर चलता हूँ।

चद्रा : प्रभु, आशीर्वाद करो कि इन्हे सुबुद्धि हो, इन गलतियो का बुरा न मानना।

गोसाई : कोई डर नही है, लच्छिमी माँ ये सब ठडे हो जायँगे।

(प्रस्थान)

सर्दार : क्यों जी, ६९ ड, तुम्हारे उस मुहल्ले वालो का मिजाज कुछ कैसा-कैसा देख रहा हूँ ?

विशू : हो सकता है। गोसाई जी ने इन्हे कच्छप-अवतार कहा है। किन्तु शास्त्र के मत से अवतार बदलते भी है। कच्छप अचानक वराह हो जाते हैं और हड्डी की मोटी खोल की जगह दाँत निकल आते

हैं, धैर्य की जगह गुर्राहट पैदा हो जाती है।

चद्रा : विशू समधी, जरा रुको। सर्दार दादा, मेरी अरदास न भूलना।

सर्दार . बिलकुल नही, सुन लिया है, याद रखूँगा।

(प्रस्थान)

चद्रा : देखा ? सर्दार कैसा भला आदमी है। सबके साथ हँसकर ही बोलता है।

विशू : घडियाल के दाँत मे शुरू मे हँसी होती है, बाद मे काट।

चद्रा : काटने की कौन-सी बात है इसमे भला !

विशू : तुम नही जानती, इन्होने ठीक किया है कि अब से कारीगरो के साथ उनकी स्त्रियाँ नही आ सकेंगी।

चंद्रा : क्यो ?

विशू : उनके हिसाब से हम सख्यारूप मे ही खाते मे जगह पाते है। लेकिन सख्या के अक के साथ नारी के अक का योग गणितशास्त्र मे नही मिलता।

चंद्रा : कहते क्या हो ! उनके स्त्रियाँ नही है ? वे क्या कहती है।

विशू . वे भी सोने के ताल की शराब से बेहोश हैं। नशे मे वे अपने पतियो को बहुत पीछे छोड गई है। हम लोग उनकी नजरो मे पडते ही नही।

चद्रा · अच्छा समधी, तुम्हारे घर तो स्त्री थी उसका क्या हुआ ? बहुत दिनों से उसकी कोई खबर नही मिली।

विशू · जब तक गुप्तचर के ऊँचे ओहदे पर बहाल रहा उतने दिन उसे सर्दारनियो के दुतल्ले पर ताश खेलने का न्यौता मिलता रहा। परन्तु जब फागूलाल के दल मे आ भिड़ा तो उधर का न्यौता बद हो गया। उसी गुस्से से मुझे छोडकर वह चली गई।

चद्रा : छी छी ! ऐसा भी पाप करना था !

विशू : इस पाप का फल भोगने के लिए वह अगले जनम मे सर्दारनी होकर जनम लेगी।

चद्रा : विशू समधी वह देखो, कौन है, धूमधाम से चली है। कतार की कतार मोरपखियाँ है, हाथियो के हौदो की झालर देख रहे हो ? कैसा जगर-मगर हो रहा है ! उनके साथ-साथ कैसे-कैसे घुड-

सवार है। भालो की पलक पर मानो एक-एक टुकड़ा सूर्य की रोशनी का गोला लिये जा रहे हैं।

विशू : वही तो सर्दारनियाँ ध्वजा-पूजा के भोज मे चली हैं।

चंद्रा : अहा, क्या धूमधाम का जुलूस है ! और कैसे सुन्दर चेहरे है ! अच्छा समधी, अगर तुमने काम न छोड़ दिया होता तो तुम भी उनके दल मे इसी धूमधाम के साथ निकलते और तुम्हारी वह स्त्री—

विशू : हाँ, हम दोनो की भी यही दशा होती।

चंद्रा : अब क्या लौटने का रास्ता नही है ? एकदम बन्द हो चुका है ?

विशू : ना, है—पनारे के भीतर से।

नेपथ्य से : पागल भाई !

विशू : क्या है पगली !

फागूलाल : लो, तुम्हारी नंदिनी की पुकार आई। आज अब विशू दादा को नही पाया जा सकता।

चंद्रा : तुम लोग अब विशू दादा की आशा मत रखो। अच्छा समधी, किस आशा पर उसने तुम्हे भुला रखा है ?

विशू : दुःख से भुलाया है।

चंद्रा : समधी, तुम बात उलटकर क्यो बोला करते हो ?

विशू : तुम सब नही समझ सकोगी। वह ऐसा दुःख है जिसे भूलने के समान दुःख दुनिया मे नही है।

फागूलाल : विशू दादा, साफ बात किया करो, नही तो गुस्सा आता है।

विशू : अच्छा कहता हूँ, सुनो नजदीक की चीज को हथियाने के लिए जो वासनाजनित दुःख होता है वह पशु का दुःख है और दूर की चीज को पाने के लिए आकांक्षाजनित जो दुःख होता है वह मनुष्य का होता है। मेरे उस चिरन्तन दुःख के पूर का प्रकाश नंदिनी मे प्रकट हुआ है।

चंद्रा : ये सब बाते मै नही समझती, समधी एक बात समझती हूँ कि जिस स्त्री को तुम लोग जितना ही कम समझते हो वह तुम्हे उतना ही अधिक खीचती है। हम लोग सीधी-सादी हैं, हमारा मोल कम है, तो भी, और चाहे जो हो, हम तुम्हे सीधे रास्ते लिये चलती हैं।

लेकिन आज कह सकती हूँ यह छोकरी तुम्हे अपनी लाल कनेर की माला मे फाँसकर सत्यानाश के रास्ते खीच ले जायगी।

[चन्द्रा और फागूलाल का प्रस्थान]
[नंदिनी का प्रवेश]

नंदिनी . पागल भाई, आज सवेरे दूर के रास्ते से वे पौष का गान गाते हुए मैदान की ओर जा रहे थे, सुना था तुमने ?

विशू : मेरा सवेरा क्या तेरे सवेरे जैसा है जो गान सुन सकूँगा ? वह तो थकी रात का झाड़ फेका हुआ जूठन है !

नंदिनी . आज मौज मे आकर सोचा कि यहाँ के परकोटे पर चढकर उनके गान मे मै भी जुट जाऊँ। पर कही रास्ता न पा सकी, इसलिए तुम्हारे पास आई हूँ।

विशू : मै तो परकोटा नही हूँ।

नंदिनी . हो, तुम्ही मेरे परकोटा हो तुम्हारे पास आती हूँ तो ऊँची उठकर बाहर को देखती हूँ।

विशू · तुम्हारे मुँह से यह बात सुनकर आश्चर्य होता है।

नंदिनी : क्यो ?

विशू : जब से यक्षपुरी मे घुसा तब से अब तक यही मालूम होता था कि मैने अपना आकाश ही खो दिया है, अब वह नही मिलने का। ऐसा जान पडता था कि यहाँ के टुकडे मनुष्यो के साथ मुझे एक ही ढेकी मे कूटकर ये लोग एक पिंड के रूप मे तैयार कर चुके है; इसमे कही भी दरार नही है, पोलापन नही है। ऐसे ही समय तुमने आकर मेरी ओर इस प्रकार ताका कि मुझे लगा, मानो मुझमे अब भी प्रकाश दिखाई देता है।

नंदिनी : पागल भाई, इस चारो ओर से बन्द गढ मे सिर्फ तुममे और मुझमे एक आकाश बचा हुआ है। बाकी और सबमे बंद हो गया है।

विशू : वह आकश बचा हुआ है, इसीलिए तुम्हे गाना सुना सकता हूँ।

गान—९

तुम्हे गान सुनाऊँगा, इसीलिए तो जगा रखती हो, ओ नीद तोड़ने वाली ! हृदय को चौंकाकर इसलिए तो पुकारती हो, ओ दु ख जगाने

वाली ! अँधेरा घिर आया, पक्षी घोंसलों में आ गए, नैया किनारे लगी; सिर्फ़ मेरा हृदय विराम नहीं पा रहा है, ओ (मेरी) दु.ख जगाने वाली !

नदिनी : विशू पागल, तुम मुझे 'दु:ख जगाने वाली' कहते हो ?

विशू : तुम मेरे समुद्र के अगम पार की दूती हो। जिस दिन आई उसी दिन मेरे हृदय के खारे जल की हवा में धक्का मार दिया ।

गान—१०

मेरे काम-काज के बीच में रुलाई के झूले को तुमने तो रुकने ही नहीं दिया ! मुझे छूकर, मेरे प्राणों को अमृत रस से भरकर, तुम हट जाया करती हो ! जान पड़ता है तुम मेरी व्यथा की ओट में खड़ी रहती हो, ओ दु:ख जगाने वाली !

नंदिनी : तुम्हे एक बात बताऊँ पगले ! जिस दु.ख का गान तुम गाते हो, मैं उसकी बात पहले नही जानती थी।

विशू : क्यो, रजन के पास से ?

नदिनी : नही। दोनो हाथो से दो डाँड पकडकर वह मुझे तूफान की नदी पार करा देता है; जगली घोडे का अयाल पकडकर जगल के भीतर से दौडा ले जाता है; उछलते हुए बाघ की भौहो के बीच तीर मारकर मेरा डर दूर करके वह हँसा करता है। हमारी नगाई नदी के स्रोत मे कूदकर वह जिस प्रकार प्रवाह मे उथल-पुथल मचा देता है, उसी तरह मुझे भी लेकर उथल-पुथल मचाता रहता है। प्राणो की बाजी लगाकर. सर्वस्व को दाँव पर रखकर वह हार-जीत का खेल खेलता है। उस खेल मे उसने मुझे जीत लिया है। एक दिन तुम भी तो उसीमे थे, किन्तु न जाने क्या सोचकर उस बाजी के खेल की भीड मे से तुम अकेले निकल पड़े। जाते समय जाने किस तरह मेरी ओर तुमने ताका था, मै ठीक समझा नही सकी।—इसके बाद बहुत दिनो तक कोई खबर नही मिली। अच्छा, तुम कहाँ चले गए थे, बताओ तो ?

विशू :

गान—११

ओ चाँद, दुःख के सागर में आँखों के पानी का ज्वार उमड़ आया

इस पार और उस पार के किनारों में आपस मे कानाफूसी होने लगी। मेरी नैया पहचाने घाट पर बंधी थी, उसका बंधन खुल गया। उसे हवा में उड़ाता हुआ न जाने किस अन-पहचाने घाट को लें चला है!

नदिनी : उस अनचीन्हे के किनारे से इस यक्षपुरी की खुदाई के काम में तुम्हे कौन घसीट लाया ?

विशू : एक स्त्री। अचानक तीर की चोट खाकर उड़ती चिडिया जिस प्रकार मिट्टी मे गिर जाती है, उसी प्रकार उसने मुझे धूल मे गिरा दिया है; मैं अपने को भूल गया था।

नदिनी : वह तुम्हे कैसे छू सकी ?

विशू : जब प्यासे को पानी मिलने की आशा नही रह जाती तो मरीचिका उसे सहज ही भुला देती है। इसके बाद आदमी दिङ्मूढ हो जाता है, अपने-आपको खोज नही पाता। एक दिन मैं पश्चिम ओर की खिडकी से मेघो की स्वर्णपुरी देख रहा था, वह देख रही थी सर्दार के महल की सोने की चोटी। मुझसे कटाक्ष करके बोली, 'वहाँ मुझे ले चलो, देखूं तुम्हारी ताकत कितनी है।' मैंने दर्प के साथ कहा, 'ले जाऊँगा'। उसे सोने की चोटी के नीचे ले आया। तब मेरा नशा टूटा!

नदिनी : अब मैं आ गई हूँ, तुम्हें यहाँ से निकालकर ले जाऊँगी। सोने की बेडी तोड दूंगी।

विशू : तुमने जब यहाँ के राजा तक को हिला दिया है तब तुम्हे कौन रोक सकता है? अच्छा तुम उससे डरती नही ?

नदिनी : इस जाल के बाहर से डर लगता है, लेकिन मैंने तो भीतर जाकर देखा है।

विशू : कैसा देखा तुमने ?

नदिनी : देखा है मनुष्य ही, लेकिन प्रकाण्ड। माथा सततल्ले महल के सिंह-द्वार की तरह है। दोनों भुजाएँ किसी दुर्गम दुर्ग के लोहे के अर्गल की भाँति हैं। ऐसा जान पड़ा जैसे रामायण-महाभारत मे से उतर पड़ा हो कोई।

विशू : घर के भीतर जाकर क्या देखा ?

नदनी . उसके वाएँ हाथ पर वाज वैठा हुआ था, उसे दॉड पर वैठाकर वह मेरे मुँह की ओर ताकता रहा। फिर जिस तरह वाज़ के पखो को उँगली से सहला रहा था, उसी प्रकार मेरा हाथ लेकर धीरे-धीरे सहलाता रहा। जरा देर वाद अचानक पूछ वैठा, 'तुम मुझसे डरती नही ?' मैंने कहा, 'विलकुल नही !' फिर खुले केशों मे उसने दोनो हाथ उलझा दिए और फिर कुछ देर तक आँखे मूँदे वैठा रहा।

विशू : तुम्हे कैसा लगा ?

नदिनी : अच्छा लगा—कैसा वताऊँ ? वह जैसे हजार वरसो का पुराना वरगद का पेड हो और मै मानो नन्ही-सी चिडिया हूँ। उसकी डाल की किसी टहनी पर जरा झूल लूँ तो निश्चिय ही उसकी मज्जा मे आनद लगेगा। उस अकेले प्राण को इतनी-सी खुशी देने की इच्छा होती है।

विशू : फिर उसने क्या कहा ?

नदिनी : एक वार झमककर उठ पडा और अपनी भाले की फलक-जैसी आँखे मेरे मुँह पर रखकर वोल उठा—'मै तुम्हे जानना चाहता हूँ।' मुझे कैसा-कैसा लगा, सारा शरीर सिहर उठा। वोली—'जानने को क्या है ? मै क्या तुम्हारी पोथी हूँ ?' उसने कहा—'पोथी मे जो है सव जानता हूँ, तुम्हे नही जानता।' इसके वाद जाने कैसा हो उठा। वोला, 'रजन की वात मुझे वताओ। उसे किस प्रकार प्यार करती हो ?' मैंने जवाव दिया, 'पानी के भीतर की पतवार जिस प्रकार ऊपर के आसमान के पाल को प्यार करती है—पाल मे हवा का गात लगा करता है और पतवार मे तरगो का नाच।' किसी वड़े चटोर लड़के की तरह एकटक देखता हुआ वह चुप-चाप सुनता रहा। अचानक चौककर वोल उठा, 'उसके लिए प्राण दे सकती हो ?' मै वोली—'अभी ही।' वह गरजकर मानो गुस्मे मे भरा हुआ चिल्ला उठा, 'कभी नही।' मैने कहा, 'हाँ, प्राण दे सकती हूँ।' 'उसमे तुम्हारा क्या फायदा है ?' मैं वोली—'नही जानती।' तव वह छटपटाकर वोल उठा—'जाओ, मेरे घर से चली जाओ ! जाओ, काम का हर्ज मत करो।' मै ठीक

मतलव नही समझ सकी।

विशू : वह सभी वातो का साफ अर्थ जानना चाहता है। जो वात उसकी समझ में नही आती वह उसे व्याकुल कर देती है, इसीसे वह गुस्सा कर जाता है।

नदिनी : पागल भाई, उसके ऊपर तुम्हे दया नही आती ?

विशू : जिस दिन उस पर विधाता की दया होगी उसी दिन वह मरेगा।

नदिनी : नही, नही, तुम्हे मालूम नही कि जीते रहने के लिए वह किस प्रकार प्राण देने को उतारू है।

विशू : उसके जीवित रहने का क्या अर्थ है यह वात तुम आज ही देख सकोगी।

नदिनी : वह देखो पागल भाई, वह छाया ! निश्चय ही सर्दार ने छिपकर हमारी वातें सुनी हैं।

विशू : यहाँ तो चारो ओर सर्दार की ही छाया दिखती रहती है। वचकर चलने का उपाय क्या है ? सर्दार तुम्हे कैसा लगता है ?

नदिनी : उसके समान मरी चीज़ मैंने देखा ही नही। ऐसा जान पडता है कि जंगल से काटकर लाया हुआ वेत है। पत्ता नही, जड नही, मज्जा में रस नही, सूखकर लचलचा रहा है।

विशू : अभागे ने और के प्राणो को सज़ा देने के लिए ही प्राण दिया है !

नदिनी : चुप रहो, सुन लेगा।

विशू : चुप रहने को भी तो वह सुन सकता है, इससे आफत और वढ जाती है। जव मै खुदाई करने वालो के साथ रहता हूँ, वातचीत मे सर्दार से वचकर चला करता हूँ। इसीलिए उन्होने मुझे विना प्रयोजन का जीव समझकर ही अव तक वचा रहने दिया है। अपने डडे से भी मुझे नही छूते। किंतु पगली, तेरे सामने मेरा मन वढ-चढ़कर वातें करने लगता है, सावधान रहने से घृणा होती है।

नदिनी : नही-नही, तुम विपत्ति को वुलाकर मत ले आओ।

[सर्दार का प्रवेश]

सर्दार : क्यो जी ६९ ङ, सवके साथ तुम्हारी प्रणय-लीला चलती रहती है, चुनाव-विचार एकदम नही है ?

विशू : यहाँ तक कि तुम्हारे साथ भी शुरू हो चली थी, चुनाव-विचार के कारण रुक गई।

सर्दार : आखिर बातचीत का विषय क्या है ?

विशू : किस प्रकार तुम्हारे इस किले से निकल भागा जाय, इसी बात पर विचार कर रहे है।

सर्दार : क्या कह रहे हो, हिम्मत इतनी बढ गई है ? कबूल करते भी डर नहीं लगा ?

विशू : सर्दार, तुम मन-ही-मन तो सब-कुछ जानते हो। पिंजड़े के पक्षी सीखचो को जो ठुकराया करते है सो तो दुलार के कारण नहीं करते। यह बात क़बूल की तो क्या, न की तो क्या !

सर्दार : दुलार नही करते यह तो जानी हुई बात है, लेकिन कबूल करते डरते नहीं, यह बात हाल ही मे कई दिनो से जनाई देने लगी है !

नदिनी : सर्दार जी, तुमने कहा था कि रंजन को ले आ दोगे। कहाँ,—तुमने बात तो नहीं रखी ?

सर्दार : आज उसे देख सकोगी।

नदिनी : यह मुझे मालम था। तो भी तुमने आज्ञा दी है, जय हो तुम्हारी ! यह लो कुन्द पुष्प की माला।

विशू : छी छी, माला को तुमने नष्ट कर दिया। रजन के लिए क्यों नही रखा उसे ?

नदिनी : उसके लिए माला है।

सर्दार : ज़रूर है, वह गले मे झूल रही है, वही न ? जयमाला कुन्द के फूलो की है, क्योकि वह हाथ का दान है और वरणमाला लाल कनेर की है, वह हृदय का दान है। ठीक है, ठीक है, हाथो का दान हाथो-हाथ चुका दो, नही तो सूख जायगा; हृदय का दान जितनी ही इन्तज़ारी करेगा, उतना ही उसका दाम बढ़ेगा।

[प्रस्थान]

नदिनी : (खिडकी के पास) सुन रहे हो ?

नेपथ्य से : क्या कहना चाहती हो, बोलो !

नदिनी : एक बार खिड़की के पास आकर खडे हो जाओ।

नेपथ्य से : यह खडा हुआ।

नंदिनी : घर मे आने दो, बहुत-सी बाते करनी हैं।

नेपथ्य से : बार-बार क्यों झूठ-मूठ का अनुरोध करती हो। अभी भी समय नही हुआ। तुम्हारे साथ वह कौन है? रंजन का जोड़ीदार है क्या?

विशू : ना राजा, मै रजन की वह उल्टी पीठ हूँ जिधर रोशनी नही पड़ती। मैं अमावस हूँ।

नेपथ्य से . नंदिनी से तुम्हारा क्या काम है? नंदिनी, यह आदमी तुम्हारा कौन होता है?

नंदिनी : यह मेरा साथी है, मुझे गाना सिखाता है। इसीने तो वह 'भालो-बासि' गान सिखाया है।

नेपथ्य से : यही तुम्हारा साथी है? यदि अभी इसका और तुम्हारा साथ छुड़ा दूँ तो क्या होगा?

नंदिनी : यह क्या! तुम्हारे गले की आवाज कैसी हो गई? जरा रुको। तुम्हारा क्या कोई साथी नही है?

नेपथ्य से : मेरा साथी? दुपहरी के सूरज का कोई साथी होता है?

नंदिनी : अच्छा रहने दो यह बात। मैया रे, तुम्हारे हाथ मे वह क्या है?

नेपथ्य से : एक मरा मेढक।

नंदिनी : उसे लेकर क्या करोगे?

नेपथ्य से : यह मेढक एक दिन एक पत्थर के कोटर मे घुसा था। तीन हजार साल तक उसीकी ओट में टिका रहा। मैं इस मेढक से यही रहस्य सीख रहा था कि इसी प्रकार कैसे टिका रहा जा सकता है। कैसे जीवित रहा जा सकता है, यह बात उसे नही मालूम। आज ऐसा लगा कि ज्यादा दिनो तक यो सीखते रहना ठीक नही है, इसीलिए मैंने पत्थर का पर्दा तोड़ दिया, हमेशा टिके रहने से इसे मुक्ति दे दी। तुम्हे क्या यह खबर अच्छी नही मालूम होती?

नंदिनी : मेरे चारो ओर से भी आज तुम्हारा यह पत्थर का किला खुल जायगा। मैं जानती हूँ आज रजन के साथ मेरी मुलाक़ात होगी।

नेपथ्य से : तब मैं तुम दोनो को एक साथ देखना चाहता हूँ।

नदिनी : जाल की ओट से अपने चश्मे से होकर, तुम नही देख सकोगे।

नेपथ्य से : घर मे बैठाकर देखूँगा।

नदिनी : इससे क्या होगा ?

नेपथ्य से : मैं जानना चाहता हूँ।

नंदिनी : तुम जानने की बात कहते हो तो कैसा डर-सा लगता है।

नेपथ्य से · क्यो ?

नंदिनी : जान पड़ता है, जिस चीज़ को मन से नही जाना जाता, प्राणो से समझा जाता है, उस पर तुम्हे दरद नही है।

नेपथ्य से · ऐसी चीज़ का विश्वास करने की हिम्मत नही होती, खटका लगा रहता है कि कही ठगा न जाऊँ। अच्छा, तुम जाओ, समय बर्बाद मत करो।—नही, नही, जरा रुको। तुम्हारे केशो से लाल कनेर का गुच्छा गालो पर लटक आया है। मुझे दे दो।

नंदिनी : इससे क्या होगा ?

नेपथ्य से : उस फूल के गुच्छे को देखता हूँ और ऐसा लगता है जैसे मेरे ही रक्त प्रकाश का शनिग्रह फूल का रूप धारण करके आया है। कभी-कभी जी मे आता है, तुम्हारे पास से छीनकर टुकड़े-टुकडे कर दूँ। फिर सोचता हूँ, नदिनी यदि किसी दिन अपने हाथो वह माला मेरे सिर पर पहना दे तो—

नदिनी . तो क्या होगा ?

नेपथ्य से : तो फिर शायद मैं सहज ही मर सकूँगा।

नंदिनी : कोई एक मनुष्य लाल कनेर को बहुत चाहता है, मैंने उसीको याद करके इन फूलो को कान का झुमका बनाया है,

नेपथ्य से : तो फिर कहे देता हूँ, ये फूल मेरे भी शनिग्रह है और उसके भी शनिग्रह है।

नदिनी · छी-छी, ऐसी बात क्या कह रहे हो ! मैं जाऊँ।

नेपथ्य से : कहाँ जाओगी ?

नदिनी · तुम्हारे किले के दरवाज़े के पास बैठी रहूँगी।

नेपथ्य से . क्यो ?

नदिनी : रजन जब उस रास्ते आयगा तो देखेगा कि मैं उसीका इन्तज़ार कर रही हूँ।

पथ्य से . रंजन को यदि पीसकर धूल मे मिला दूँ और उसे जरा भी पहचाना न जा सके !

दिनी : आज तुम्हे क्या हो गया है ? मुझे झूठ-मूठ डर क्यो दिखा रहे हो।

पथ्य से : झूठ-मूठ डर ? तुम नही जानती—मैं भयकर हूँ।

दिनी : अचानक यह तुम्हारा कैसा भाव वदल गया ? सव तुमसे डरते है—क्या यही देखने मे तुम्हे मज़ा आता है ? हमारे गाँव का श्रीकठ रामलीला मे राक्षस वनता है; जव उसका संवाद होता है तो वच्चे डर से आतकित हो उठते है इस पर वह वहुत खुश होता है। तुम्हारी भी यही हालत है। मेरे मन मे कैसा लगता है सच वताऊँ ? गुस्सा तो नही करोगे ?

नेपथ्य से · कैसा लगता है, वताओ भला !

नंदिनी : यहाँ के आदमियो का व्यवसाय ही डर दिखाना है। इसीलिए तुम्हे जाल से घेरकर अद्भुत वना रखा है उन्होने। इस हौवा की तस्वीर वनने मे तुम्हे लाज नही लगती ?

नेपथ्य से . क्या कहती हो नंदिनी ?

नंदिनी : इतने दिन तक जिन्हे तुम डराते आ रहे हो, वे एक दिन डरने मे शर्मायेंगे। मेरा रजन यदि यहाँ होता तो तुम्हारी नाक के सामने चुटकी वजाकर मर जाता, पर डरता नही।

नेपथ्य से : हिमायत तो कम नही है तुम्हारी ! इतने दिनो तक तोड़-मरोड़कर जो कुछ मैंने तहस-नहस किया है, उसी पुंजीभूत पहाड़ो की चोटी पर तुम्हे खड़ी करके दिखाने की इच्छा कर रही है। फिर तो—

नंदिनी . फिर क्या !

नेपथ्य से : फिर मैं अपना अन्तिम तोड़ना तोड़ दूँ। अनार के दाने फटफटाकर जिस तरह दस अगुल की फाँक से अपना रस निकाल देते है, उसी प्रकार मैं अपने इन दो हाथो से—जाओ जाओ ! अभी भाग जाओ, अभी !

नंदिनी : मैं यह खडी हूँ, क्या कर सकते हो, करो। इस तरह भद्दे ढग से क्यो गरज रहे हो ?

नेपथ्य से : मैं कितना अद्भुत निष्ठुर हूँ, उसका समूचा प्रमाण तुम्हे देने की इच्छा हो रही है। मेरे घर मे से कभी तुमने आर्त्तनाद नही सुना

क्या ?

नदिनी : सुना है। किसका आर्त्तनाद है वह ?

नेपथ्य से · मैं सृष्टिकर्त्ता की चातुरी तोड़ा करता हूँ। विश्व के मर्मस्थल मे जो कुछ छिपा हुआ है, उसे छीन लेना चाहता हूँ। उन्ही छिने प्राणो की रुलाई है वह। पेड से यदि आग चुराना हो तो उसे जला देना होता है। नंदिनी तुम्हारे भीतर भी आग है—लाल आग। एक दिन जला-कर उस आग को निकाले बिना निस्तार नही ।

नदिनी : क्यो तुम इतने निष्ठुर हो।

नेपथ्य से : मैं या तो प्राप्त करूँगा या नष्ट कर दूँगा। जिसे मैं पा नही सकता उस पर दया नही कर सकता। उसे तोड़ देना भी एक तरह का पाना ही है।

नदिनी : यह क्या ! इस तरह मुक्का बाँधकर हाथ क्यो निकाल रहे हो ?

नेपथ्य से : अच्छा, खीच लेता हूँ, तुम भाग जाओ, जैसे कबूतर बाज़ की छाया से भागता है, उसी तरह।

नंदिनी : अच्छा जाती हूँ, तुम्हे अब नही चिढ़ाऊँगी !

नेपथ्य से · सुनो सुनो, लौट आओ ! नदिनी नदिनी !

नदिनी : क्या कहते हो ?

नेपथ्य से : सामने तुम्हारे मुँह पर और आँखो मे जीवन की लीला खेल रही है और पीछे तुम्हारे काले केशों की धारा मे ही मृत्यु का निस्तब्ध झरना है। मेरे ये दोनो हाथ उस दिन उसमे डूब मरने का आराम पा गए थे। और कभी मैने मृत्यु के माधुर्य को इस प्रकार नही सोचा था। इन गुच्छे-के-गुच्छे काले केशो के नीचे मुँह छिपाकर सोने की बडी इच्छा हो रही है। तुम नही जानती मैं कितना थका हूँ।

नदिनी : तुम क्या कभी सोते नही ?

नेपथ्य से . सोते डर लगता है।

नदिनी तुमको मैं वह 'भालोबासि' नाम पूरा सुना दूँ—

गान—१२

प्यार करता हूँ प्यार करता हूँ—इसीमें पास और दूर, जल और स्थल में वशी बजा करती है। आकाश में किसके हृदय में पीड़ा

हो रही है. दिगंत में किसकी काली आंखें आंखों के पानी से बही जा रही हैं।

नेपथ्य से : बस बस, रहने दो, अब मत गाओ—

नंदिनी :

गान—१३

उसी सुर में समुद्र के किनारे बंधन खुल जाता है, अतुल रोदन हिल उठता है। उसी सुर से अकारण ही मन में भूले हुए गान की बात, भूले हुए दिनों की हँसी और रुलाई याद आ जाती है।

पागल भाई, वह देखो, मरे मेढक को फेंककर वह जाने कब भाग गया है। वह गान सुनते डरता है।

विशू : उनकी छाती में जो बूढ़ा मेढक सब तरह के सुरों की छूत बचाकर बैठा हुआ है, वह जब गान सुनता है तो मर जाना चाहता है। इसीलिए उसे डर लगता है। पगली आज तेरे मुख पर एक दीप्ति देख रहा हूँ; तेरे मन में किस भावना का अरुणोदय हुआ है—मुझे नहीं बतायगी ?

नंदिनी : मन में यह खबर आ पहुँची है कि आज रंजन निश्चय ही आयगा।

विशू : निश्चित खबर किस तरफ से आई है।

नंदिनी : सुनो बताती हूँ। मेरी खिड़की के सामने अनार की डाल पर रोज नीलकंठ पक्षी आकर बैठता है। मैं सन्ध्या समय रोज ध्रुव तारे को प्रणाम करके कहती हूं कि उसके पंख से यदि एक पर उड़कर मेरे घर में आए तो समझूँगी कि मेरा रंजन आयगा। आज सवेरे उठते ही देखा कि उत्तरी हवा में उड़ता हुआ एक पर मेरे बिछौने पर आ गिरा है। यह देखो, उस पर को मैंने अपने आँचल में बांध रखा है।

विशू : यही तो देख रहा हूँ, और देखता हूँ आज तुमने माथे में बेंदी भी दी है।

नंदिनी : भेंट होने पर इस पर को मैं उसकी शिखा में पहना दूँगी।

विशू : लोग कहते हैं, नीलकंठ के पाँख में विजय-यात्रा का शुभ चिह्न होता है।

नंदिनी : रंजन की विजय-यात्रा मेरे हृदय के भीतर से होकर चलेगी।

विशू · पगली, अब मै अपने काम पर जाऊँ।

नंदिनी : नही, आज मै तुमको काम नही करने दूँगी।

विशू : तो बता, क्या करूँ ?

नंदिनी : गान गाओ।

विशू : कौन-सा गान ?

नंदिनी : राह देखने का गान

विशू (गाता है)

गान—१४

उसने शायद युग-युग से मुझे चाहा था, वही शायद मेरे रास्ते के किनारे बैठा हुआ है। आज मानो मुझे याद आ रहा है कि न जाने कब, किस अस्फुट प्रदोष-वेला में उसे आँखों देखा था, वही मानो मेरे रास्ते के किनारे आ बैठा है। आज आलोक-संगीत के साथ उस चाँद का वरण होगा, और रात के मुख का अन्धकार इशारे से खुल जायगा। शुक्ल रात्रि में उसी आलोक मे, एक पलट में भेंट होगी और सभी आवरण खिसक जायँगे। वही मानो मेरे रास्ते के किनारे बैठा हुआ है।

नंदिनी : पागल, जब तुम गाते हो तो मुझे ऐसा मालूम होता रहता है, तुम्हे मुझसे बहुत-कुछ पाना था, पर मै कुछ भी नही दे सकी।

विशू तेरा यही कुछ भी नही देना मै अपने सिरमाथे चढा चला जाऊँगा। थोडा-कुछ देने की कीमत पर गान नही बेचूँगा।—इस समय तू कहाँ जायगी ?

नंदिनी : रास्ते के किनारे, जहाँ से रजन आयगा। वही बैठी रहकर फिर तुम्हारा गान सुनूँगी।

[दोनों का प्रवेश]

[सर्दार और मुखिया का प्रवेश]

सर्दार : नही, इस मुहल्ले मे रजन को किसी तरह आने नही दिया जा सकता।

मु।खया . उसे दूर रखने के लिए ही तो वज्रगढ की सुरंग मे काम करने को ले गया था।

सर्दार : फिर क्या हुआ ?

मुखिया : किसी प्रकार उससे पार नहीं पाया गया। वह कहता, हुकुम मानकर काम करने का अभ्यास मुझे नहीं है।

सर्दार : अभ्यास अभी शुरू कराने में क्या दोष है ?

मुखिया : यह कोशिश भी की गई। बड़ा सर्दार कोतवाल को लेकर आया। लेकिन इस आदमी को डर-भय तो कहीं है ही नहीं, गले में जरा-सा शासन करने का स्वर आया नहीं कि ठठाकर हँस दिया। पूछने पर कहता है गंभीरता मूर्ख का स्वाँग है, मैं उसीको हटाने आया हूँ।

सर्दार : उसे सुरंग के भीतर दल में क्यों नहीं भिड़ा दिया ?

मुखिया : दिया था, सोचा था कि दबाव में पड़कर वश मान जायगा। लेकिन हुआ उल्टा। ऐसा मालूम होने लगा कि खुदाई के मजूरों पर से भी दबाव कम हो गया। उनको भी मतवाला बना दिया, बोला—आज हम लोगों का खुदाई-नाच होगा।

सर्दार : खुदाई-नाच ? इसका क्या मतलब ?

मुखिया : रंजन ने तान छेड़ दी, मजूरों ने कहा—ढोल कहाँ मिलेगा ? उसने कहा—ढोल नहीं तो कुदाल तो है। फिर कुदाल पर ताल पड़ने लगे, सोने के पिंड लेकर कैसी विचित्र लुकौवल चलने लगी ! बड़े मुखिया खुद आए, बोले—'यह कैसा तुम्हारे काम का ढंग है ?' रंजन बोला—'काम की रस्सी मैंने खोल दी है, उसे खींचकर नहीं चलना होगा, वह नाचता हुआ चलेगा।'

सर्दार : देखता हूँ यह आदमी पागल है।

मुखिया : वज्र पागल ! कहता हूँ, कुदाल पकड़ो। जवाब देता है, उससे अधिक काम होता यदि तुम एक सारंगी ला देते।

सर्दार : तुम लोग उसे वज्रगढ़ ले गए थे, वहाँ से वह कुबेरगढ़ में कैसे आया ?

मुखिया : क्या जाने, मालिक। उसे जंजीरों से तो कसकर बाँधा गया था। थोड़ी देर बाद देखता हूँ, न जाने कैसे छिटककर निकल आया है—उसके शरीर को कुछ भी दबाकर नहीं रख सकता। और वह बात-बात में साज बदल लेता है, चेहरा बदल लेता है। उसकी ताकत अचरज-भरी है। यदि वह कुछ दिन और रहा तो

खुदाई के मजूर भी बधन नही मानेगे।

सर्दार : वह क्या ? वह रंजन ही है न ? रास्ते से गाना गाता हुआ चला है। कही से एक टूटी सारगी जुगा ली है। हिमाकत तो देखो, ज़रा छिपाने की भी चेष्टा नही है !

मुखिया : यही तो ! न जाने कब गारद की भीत काटकर निकल आया है। जादू जानता है।

सर्दार : जाओ, इस बार पकडो उसे। खयाल रखो, इस मुहल्ले मे नदिनी के साथ उसकी मुलाकात किसी प्रकार न होने पावे।

मुखिया : देखते-देखते उसका दल भारी होता जा रहा है। कभी हम लोगो समेत सबको नचा देगा !

[छोटे सरदार का प्रवेश]

सर्दार : कहाँ चले हो ?

छोटा सर्दार : रजन को बाँधने चला हूँ।

सर्दार तुम क्यो ? मझले सर्दार कहाँ हैं ?

छोटा सर्दार . उसे देखकर उन्हे ऐसा मजा आया है कि उसके बदन पर हाथ देना ही नही चाहते। कहते है—उसकी हँसी देखकर समझ पाता हूँ कि हम सर्दार लोग कितने अद्‌भुत हो गए है।

सर्दार . सुनो, उसे बाँधना होगा। राजा के घर मे भेज दो।

छोटा सर्दार : वह तो राजा के बुलावे को मानना ही नही चाहता।

सर्दार उसे कह दो कि राजा उसकी नदिनी को सेवादासी बनाकर रखे हुए है।

छोटा सर्दार : लेकिन राजा यदि—

सर्दार : सोच-विचार की कोई जरूरत नही, चलो मै स्वय जाता हूँ।

[सबका प्रस्थान]

[अध्यापक और पुराणवागीश का प्रवेश]

पुराणवागीश : भीतर यह कैसा प्रलय-काण्ड हो रहा है, बताओ तो ? बड़ा भयकर शब्द हो रहा है जो !

अध्यापक : जान पड़ता है राजा अपने ऊपर खुद ही बिगड़ पड़ा है, इसीलिए, अपनी ही तैयार की हुई किसी चीज़ को तोड-फोड़ रहा है।

पुराणवागीश . जान पड़ता है, बड़े-बड़े खभे भड़भड़ाकर गिरे जा रहे हैं।

अध्यापक : हमारे उस पहाड़तले से लगा हुआ उसीके बराबर एक तालाब था, उसीमे शखिनी नदी का पानी इकट्ठा हुआ करता था। एक दिन उसकी वाईं ओर का ऊँचा टीला झुक गया और जमा हुआ पानी पागल के अट्टहास की तरह खिलखिलाता हुआ बाहर निकल गया। कुछ दिन से राजा को देखकर जान पड़ता है कि उसके संचय-सरोवर के पत्थर में भी चाड़ लगा है। उसका ताला भीतर-ही-भीतर खबर गया है।

पुराणवागीश : वस्तुवागीग, यह किस स्थान मे मुझे ले आए हैं और यहाँ करना क्या है ?

अध्यापक : जगत् मे जो कुछ जानने को है, उस सब-कुछ को वह जानने के द्वारा ही आत्मसात् करना चाहता है। मेरी वस्तु-तत्त्व-विद्या को तो उसने प्राय सब-का-सब ढलवा लिया है, अब रह-रहकर बिगड़ उठता है और कहता है—'तुम्हारी विद्या तो सेंध मारने को सावर से एक दीवाल तोड़कर उसके पीछे एक और दीवाल निकालती रही है। किन्तु प्राण-पुरुष का भीतरी महल कहाँ है ?' मैने सोचा, उसे कुछ दिनो के लिए पुराण-चर्चा में भुलवा रखा जाय—मेरी थैली तो झाड़ ली जा चुकी है, अब पुरावृत्त की पाकेटमारी चले। वह देख रहे हो कौन जा रही है ?

पुराणवागीश : एक लड़की, धानी रग की साडी पहने हुए।

अध्यापक : पृथ्वी की प्राणों-भरी खुशी को अपने सारे शरीर में खीच लिया है, इस हमारी नंदिनी ने। इस यक्षपुर में सर्दार हैं, मुखिया हैं, खुदाई करने वाले मज़दूर हैं, मेरे-जैसा पडित है, कोतवाल है, जल्लाद है, मुर्दाफरोश है, सभी मज़े में मिल गए है, किन्तु वह एकदम बेमेल है। चारो ओर है हाट का हो-हल्ला, वह है सुर-बँधा तम्बूरा। एक-एक दिन उसके चले जाने की हवा से ही मेरी वस्तु-चर्चा का जाल फट जाता है। उसीके फाँक मे से मेरा ध्यान जंगली चिड़िया की तरह हुश करके निकल भागता है।

पुराणवागीश : कहते क्या हो ! तुम्हारी पक्की हड्डी भी ठकठका उठती है क्या ?

अध्यापक : जानने के आकर्षण की अपेक्षा जब प्राण का आकर्षण ज्यादा हो

जाना है, तभी पाठशाला से भागने की प्रवृत्ति मे सँभालकर बाहर हो जाती है।

पुराणवागीश : अच्छा, अब बताओ तुम्हारे राजा से कहाँ भेट होगी ?

अध्यापक : भेट होने का उपाय नही है। उस जाल की ओट से बातचीत होगी।

पुराणवागीश क्या कहा, इस जाल की ओट से ?

अध्यापक : और नही तो क्या। घूँघट की ओट से जिस तरह रसालाप होता है उस ढग का नही, एक छनी हुई बात,—बीन-बराकर शुद्ध की हुई। उसके घर की गाय शायद दूध देना नही जानती, एकदम मक्खन देती है।

पुराणवागीश : बेकार बाते छोड़कर असली बात वसूल कर लेना ही तो पडित का अभिप्राय होता है।

अध्यापक . किन्तु विधाता का नही। उन्होने असली चीज़ की सृष्टि ही की है बेकार चीज़ो का लालन करने के लिए। वे सम्मान देते है फल की गुठली को और प्रेम देते है उसके गूदे को।

पुराणवागीश : आजकल देखता हूँ तुम्हारा वस्तु-तत्त्व यानी रग की ओर दौड पड़ा है। किन्तु अध्यापक, तुम अपने इस राजा को बरदाश्त कैसे कर पाते हो ?

अध्यापक . सच बताऊँ ? मै उसे प्यार करता हूँ।

पुराणवागीश कहते क्या हो तुम !

अध्यापक . तुम नही जानते, वह इतना बडा है कि उसके दोष भी उसे नष्ट नही कर सकते।

[सर्दार का प्रवेश]

सर्दार . अजी वस्तुवागीश, चुन-चुनकर इसी आदमी को ले आए हो। इनकी विद्या का ब्यौरा सुनकर ही हमारा राजा बिगड उठा है।

अध्यापक सो क्यो ?

सर्दार . राजा कहता है कि पुराण नाम की कोई चीज़ है ही नही, वर्तमान काल ही सिर्फ बढता चल रहा है।

पुराणवागीश : पुराण यदि नही है तो फिर कुछ भी कैसे है ? पीछे यदि न हो तो सामने रह ही क्या सकता है ?

सर्दार : राजा कहते है, महाकाल नवीन को सामने प्रकाशित करता हुआ

चल रहा है ! इस बात को पंडित दबा देता है और कहता है, महाकाल पुरातन को अपने पीछे ढोए लिये जा रहा है।

अध्यापक : नंदिनी के निविड यौवन की छाया-वीथिका मे नवीन की माया-मृगी को राजा चकित भाव से देख सके है, किन्तु पकड नही सके है, और बिगड उठे है मेरे वस्तु-तत्त्व के ऊपर।

[नंदिनी का तेजी से प्रवेश]

नंदिनी . सर्दार, सर्दार यह क्या ! वे कौन हैं !

सर्दार सुनो नंदिनी, जब घोर रात होगी तब तुम्हारे कुन्द फूल की माला पहनूँगा। जब अँधेरे मे मेरा रुपए मे बारह आना ही अस्पष्ट चलेगा उस समय शायद फूल की माला मुझे फबेगी।

नंदिनी : उधर देखो, कैसा भयानक दृश्य है ! प्रेतपुरी का दरवाजा खुल गया है क्या ? पहरेदारो के साथ वे कौन चले है, वे जो राजा के महल के खिडकी-दरवाजो से निकले आ रहे है ?

सर्दार उनको हम राजा का जूठन कहते है।

नंदिनी : क्या मतलब ?

सर्दार . मतलब एक दिन तुम भी समझोगी, आज रहने दो।

नंदिनी : किन्तु कैसे चेहरे है ये ? ये क्या मनुष्य है ? उनमे मांस-मज्जा, मन-प्राण, क्या कुछ है ?

सर्दार शायद नही।

नंदिनी : किसी दिन था !

सर्दार : शायद था।

नंदिनी · अब कहाँ चला गया ?

सर्दार वस्तुवागीश, समझा सको तो समझा दो, मै चला।

[प्रस्थान]

नंदिनी वह क्या है ! उन छाया-मूर्तियो मे पहचाने मुखडे देख रही हूँ। वे दोनो तो जरूर ही हमारे अनूप और उपमन्यु है। अध्यापक, वे लोग हमारे पडोसी गाँव के बाशिंदे है। दोनो भाई सिर के जितने लम्बे है शरीर के उतने ही पुख्ता भी, लोग इन्हे ताल-तमाल कहा करते हैं। अषाढ चतुर्दशी को हमारी नदी मे नाव-दौड़ खेलने आए थे। हाय-हाय छाती फटती है, किसने इनकी यह दशा कर रखी

है ? वह तो शकलू दिख रहा है, तलवार के खेल मे सबके आगे माला पाता था। अ-नू-प, शकलू—इधर देखो इधर मै नंदिनी, ईशानी पाड़ा की तुम्हारी नदिनी। सिर उठाकर देखा भी नही। हमेशा के लिए सिर नीचा हो गया है। अरे वह कौन है ? ककु ? हाय रे, उसके जैसे लड़के को भी ईख की तरह चूस लिया है। बड़ा जलील था; जिस घाट मैं पानी ले आने जाती उसीके पास ढालू किनारे पर बैठा रहता। ऐसा भान करता मानो तीर चलाने के लिए सरकंडे लेने आ गया है। शैतानी करके मैंने उसे कितना दु.ख दिया है। अरे ओ ककू, जरा मेरी ओर घूमकर ताक। हाय-हाय, मेरे इशारे पर जिसका रक्त नाच उठता था, उसने मेरी पुकार पर जवाव तक नही दिया ? बुझ गई है मेरे गाँव की सब रोशनी, बुझ गई ! अध्यापक, लोहा घिस गया है, सिर्फ काला मोरचा ही बाकी है ? ऐसा क्यो हुआ ?

अध्यापक : नदिनी, जिधर रास्ता है उसी तरफ तुम्हारी नज़र जाती है। इस बार लौ की ओर भी देखो, देखोगी कि उसकी जीभ लपलपा रही है।

नदिनी : तुम्हारी बात मैं नही समझ सकती।

अध्यापक : राजा को तो देखा है ? उसकी मूर्ति देखकर, सुना है कि तुम्हारा मन मुग्ध हो गया है।

नदिनी : ज़रूर हुआ है। वह जो अद्भुत शक्ति का चेहरा है।

अध्यापक : वह अद्भुत जिसका जमा है, यह किम्भूत उसीका खर्च है। ये छोटे-छोटे सब जलकर होते रहते है राख और वह वड़ा जलता रहता है लौ के रूप मे। यही है वड़ा होने का तत्त्व।

नदिनी : वह तो राक्षस का तत्त्व है।

अध्यापक : तत्त्व पर बिगड़ना फिजूल है। वह अच्छा भी नही होता, बुरा भी नही होता। जो होता है सो होता है, उसके विरुद्ध जाओ तो होने के ही विरुद्ध जाओगी।

नदिनी : यही यदि मनुष्य का होने का रास्ता है, तो नही चाहता मैं होना—मैं उन छाया-मूर्तियो के साथ चली जाऊँगी—मुझे रास्ता दिखा दो।

अध्यापक : रास्ता दिखाने का जब दिन आयगा तो ये लोग ही दिखा देंगे, उसके पहले रास्ता नामक कोई बला नही है। देखो न, पुराण-

वागीश न जाने कब धीरे-से खिसक पडे हैं, सोचते है—भागकर बच जायँगे। ज़रा आगे जाकर ही समझ सकेगे कि घेरे का जाल यहाँ से लेकर बहुत योजन दूर तक खूँटियो मे बँधा है। नंदिनी, नाराज हो रही हो तुम ? तुम्हारे कपोल पर लाल कनेर का गुच्छा आज प्रलय-संध्या के मेघ के समान दीख रहा है।

नंदिनी : (खिड़की को धक्का मारकर) सुनो, सुनो !

अध्यापक : किसे बुला रही हो तुम ?

नंदिनी : जाल के कुहासे से ढके हुए तुम्हारे राजा को।

अध्यापक : भीतर के किवाड़ बन्द हो गए हैं, आवाज़ नही सुन सकेगा।

नंदिनी : विशू पागल, पागल भाई !

अध्यापक : उसे क्यो बुला रही हो ?

नंदिनी : वह अब तक लौटा नही, मुझे बड़ा डर लग रहा है।

अध्यापक : ज़रा पहले तुम्हारे ही साथ तो देखा था उसे।

नंदिनी : सर्दार ने कहा कि रंजन को पहचनवाने के लिए उसकी बुलाहट हुई है। मैं साथ जाना चाहती थी, जाने नही दिया। वह किसकी चीख़ सुनाई दे रही है।

अध्यापक : जान पड़ता है उस पहलवान की है।

नंदिनी : वह कौन है ?

अध्यापक : वही, वह जगद्विख्यात गज्जू पहलवान; जिसका भाई भजन हिमाकत करके राजा से कुश्ती लड़ने आया था; फिर तो उसकी लंगोटी का एक धागा भी कही दिखाई नही दिया। उसी गुस्से से गज्जू भी ताल ठोकता आया। मैंने शुरू मे ही उससे कह दिया था कि इस राज्य मे सुरग खोदने आना चाहते हो आओ, मरते-मरते भी कुछ दिन जीते रहोगे। और अगर मर्दानगी हो तो एक क्षण भी नही बर्दाश्त की जायगी। वह स्थान बहुत कठिन है।

नंदिनी : दिन-रात इस आदमी बुझाने वाले जाल की खबरदारी करके ये लोग क्या कुछ भी अच्छे रह पाते है ?

अध्यापक : अच्छे का सवाल इसमे नही है, रहने का सवाल है। इनका यह रहना इतने भयकर रूप से बढ गया है कि लाख-लाख आदमियो पर यदि दबाव न पड़े तो इनके इस भार को सम्हालेगा कौन ?

नंदिनी . रहना ही होगा ? मनुष्य होकर रहने के लिए यदि मरना ही हो तो उसमे दोष क्या है ?

अध्यापक : फिर वही गुस्सा ? उसी लाल कनेर की झकार ! खूब मधुर है, फिर भी जो सत्य है वह सत्य है। रहने के लिए मरना है, ऐसे कहने मे तुम्हे सुख मिलता हो तो कह लो। किन्तु रहते वही लोग है जो कहते हैं कि रहने के लिए मरना होगा। तुम लोग कहती हो इससे मनुष्यत्व मे त्रुटि आती है; पर गुस्से के कारण भूल जाती हो कि यही मनुष्यत्व है। बाघ को खाकर बाघ बडा नही होता। सिर्फ मनुष्य ही मनुष्य को खाकर फूल उठता है।

(पहलवान का प्रवेश)

नंदिनी : आहा, किस तरह ढुलकता-ढिमलता आ रहा है। पहलवान, यही सो रहो। अध्यापक, देखो ना, कहाँ इसे चोट लगी है ?

अध्यापक : बाहर से चोट का निशान देख नही सकोगी।

पहलवान : दयामय प्रभो, ऐसा हो कि मै जीवन में एक दिन शक्ति पाऊँ, सिर्फ एक दिन के लिए भी !

अध्यापक : काहे वास्ते भाई !

पहलवान · सिर्फ उस सर्दार की गर्दन मरोड देने के लिए।

अध्यापक : सर्दार ने तुम्हारा क्या किया है ?

पहलवान · सब-कुछ उसीने तो किया है। मै तो लड़ना ही नही चाहता था। आज कहता फिरता है कि मेरा ही दोष था।

अध्यापक : क्यो भई, इसमे उनका क्या स्वार्थ है ?

पहलवान · यदि समस्त पृथ्वी को शक्तिहीन कर दे तभी वे निश्चिन्त होगे। दयानिधान भगवान् ऐसा करो कि एक दिन उसकी दोनो आँखे उखाडकर फेक सकूँ, उसकी जीभ खीचकर निकाल बाहर करूँ।

नंदिनी · तुम्हे कैसा लग रहा है पहलवान ?

पहलवान : ऐसा जान पडता है कि शरीर भीतर से पोला हो गया है। ये लोग जाने कहाँ के दानव है, जादू जानते है, सिर्फ जोर ही नही, साहस तक सोखते है। यदि किसी उपाय से एक बार—हे कल्याण-मय हरि, आ यदि एक बार—तुम्हारी दया होने से क्या नही

हो सकता ! सर्दार की छाती मे यदि एक बार दाँत गड़ा सकूँ !

नदिनी : अध्यापक, इसे तुम पकड़ो, हम दोनो मिलकर इसे घर पर ले चले ।

अध्यापक . मुझमे साहस नही है नंदिनी ! यहाँ के नियमानुसार इसमे अपराध होगा ।

नदिनी : मनुष्य को मरने देने मे अपराध नही होगा ?

अध्यापक जिस अपराध का दण्ड देने वाला कोई नही है, वह पाप हो सकता है किन्तु अपराध नही। नंदिनी, इन सब मे से तुम एकबारगी निकल आओ। जड की मुट्ठी बाँधकर पेड़ मिट्टी के नीचे हरण शोषण का कार्य करता है, किन्तु वहाँ फूल तो नही खिला सकता। फूल खिलता है ऊपर की डाल मे, आकाश की ओर। ओ लाल कनेर, हमारी मिट्टी के नीचे की खबर लेने मत आओ। हम टक लगाये बैठे है कि ऊपर की हवा मे तुम्हारा झूला झूलना देखेंगे। वह सर्दार आ रहा है। तो फिर मैं हटूँ। तुम्हारे साथ बात करता हूँ, यह वह नही सह सकता।

नदिनी : मेरे ऊपर इतना गुस्सा क्यो ?

अध्यापक अन्दाज से कह सकता हूँ। तुमने भीतर-ही-भीतर उसके मन के तार को खीचा है; सुर जितना ही नही मिल रहा है, बेसुर उतना ही कड़ा होकर चिल्ला उठता है।

[प्रस्थान]

(सर्दार का प्रवेश)

नदिनी सर्दार !

सर्दार : नदिनी, तुम्हारे उस कुन्द फूल की माला को देखकर गोसाई जी की दोनो आँखें—लो वे खुद आ रहे है। प्रणाम ! प्रभु वह माला नदिनी ने मुझे दी थी।

(गोसाईं जी का प्रवेश)

गोसाई · अहा, शुभ्र प्राणो का दान ! भगवान् के शुभ्र कुन्द पुष्प ! विषयी जन के हाथ मे पडकर भी उसकी शुभ्रता म्लान नही हुई, इसीसे तो पुण्य की शक्ति और पापी के परित्राण की आशा देख पाता हूँ।

नदिनी · गोसाई जी इस आदमी की कोई व्यवस्था कीजिए। इसके जीवन

का वाकी कितना-सा रह गया है ।

गोसाई : सब ओर से विचारकर जिस मात्रा मे इसका जीना जरूरी है हमारे सर्दार निश्चय ही उतना जीवित रखेगे। किन्तु वत्से, यह सब आलोचना तुम्हारे मुँह से श्रुतिकटु लगती है। हम पसन्द नही करते ।

नदिनी : इस राज्य मे जीवित रखने का भी मात्रा-विचार क्या है ?

गोसाई : क्यो नही है ? पार्थिव जीवन सीमावद्ध है न ? इसीलिए हिसाव समझकर उसका वँटवारा करना होता है। हमारी श्रेणी के लोगो पर भगवान् ने दुस्सह उत्तरदायित्व का वोझा लाद दिया है, उसको ढोने के लिए हमारे हिस्से मे प्राण का साराश कुछ अधिक मिलना चाहिए। ये लोग खूब कम जिएँ तो भी काम चल जायगा, क्योकि उनका भार कम करने के लिए हम लोग जीते हैं। यह क्या उनके लिए कम बचाव है ?

नंदिनी : गोसाई जी भगवान् ने तुम्हारे ऊपर इनका कौन-सा उपकार करने का विपम वोझ लाद दिया है ?

गोसाई : जो प्राण सीमावद्ध नही है उसमे हिस्सा वँटाने के लिए किसी के साथ किसी के झगड़े की कोई ज़रूरत ही नही है, हम गोसाई लोग उसी प्राण का रास्ता दिखाने आए है। इसीसे यदि वे सन्तुष्ट रहे तभी हम उनके हितू है।

नदिनी : तव क्या यह आदमी अपने सीमावद्ध प्राण को लेकर इसी तरह अधमरा होकर पडा रहेगा ?

गोसाई : पड़ा क्यो रहेगा भला ? क्यो सर्दार, क्या कहते हो ?

सर्दार : ठीक कहते है आप, पडा क्यो रहने दूंगा ! आज से अपने ज़ोर से चलने की उसे जरूरत ही नही होगी। हम अपने ही जोर से उसे चलाते फिरेंगे। अरे गज्जू !

पहलवान : क्या प्रभु !

गोसाई . हरि-हरि, इसी वीच उनका गला खासा महीन हो उठा है। अपने नाम-कीर्तन के दल मे उसे खीच सकूँगा, ऐसा लगता है।

सर्दार : ह-क्ष मुहल्ले के मुखिया के घर मे तेरा डेरा हुआ है, चला जा वही।

नंदिनी : यह कैसी वात ! वह चलेगा कैसे !

सर्दार : देखो नंदिनी, आदमी चलाना ही हम लोगो का व्यवसाय है। हम जानते है कि आदमी जहाँ जाकर थोवर लटकाकर पड़ा रहता है वहाँ थोडा जोर मारने से और भी थोड़ी दूर जा सकता है। जाओ गज्जू !

पहलवान : जो हुकुम।

नंदिनी : पहलवान, मैं भी जाती हूँ मुखिया के घर, वहाँ तुम्हे देखने वाला कोई नही है।

पहलवान : नही नही रहने दो, सर्दार गुस्सा करेगा।

नंदिनी : मै सरदार के गुस्से से नही डरती।

पहलवान : मैं डरता हूँ, दुहाई है मेरी विपदा मत बढ़ाओ।

[प्रस्थान]

नंदिनी : सर्दार, जाओ मत, कहते जाओ मेरे विशू पागल को कहाँ ले गए हो ?

सर्दार : मैं ले जाने वाला कौन होता हूँ। मेघ को हवा उड़ा ले जाती है, इसे यदि दोप समझो तो हवा से पूछो कि उसे ठेलता कौन है ?

नंदिनी : यह कैसा सत्यानाशी देश है जी ! तुम भी आदमी नही हो और जिन्हे चलाते हो वे भी आदमी नही है ? तुम लोग हवा हो, वे मेघ हैं ? गोसाईं, तुम ज़रूर जानते हो। बताओ मेरा विशू पागल कहाँ है ?

गोसाईं : मै ज़रूर जानता हूँ। जो जहाँ रहते है सब भले के लिए ही।

नंदिनी : किसके भले के लिए ?

गोसाईं : सो तुम नही समझोगी। आ छोड़ो, छोडो, वह मेरी जप-माला है। लो वह टूट गई ! ऐ सर्दार, तुम लोगों ने जो इस लड़की को—

सर्दार : न मालूम कैसे वह यहाँ के नियमो के फाँक मे जगह पा गई है। खुद हमारे राजा—

गोसाईं : अजी देखो, इस वार मेरा राम-नामा तक फाड़ डालेगी, आफत है ! मै चला।

[प्रस्थान]

नंदिनी : सर्दार, तुम्हे बताना ही पडेगा। बताओ मेरे विशू पगले को कहाँ

ले गए हो ?

सर्दार विचारशाला मे उसकी बुलाहट हुई है—इससे अधिक कुछ कहने को नही है। मुझे छोड़ो, बहुत काम पड़े है।

नंदिनी : मैं स्त्री हूँ, इसलिए तुम मुझसे नही डरते ? विद्युत्-शिखा के हाथो इन्द्र अपना वज्र भेज देते है। मै वही वज्र लेकर आई हूँ, तुम्हारी सर्दारी का स्वर्ण-शिखर टूटेगा।

सर्दार : तो सच्ची बात तुमको बता जाऊँ। विशू की आफत तुम्हीने बुलाई है।

नंदिनी : मैंने ?

सर्दार हाँ, तुमने ही। इतने दिन तक कीड़े की तरह नि शब्द मिट्टी के नीचे गड्ढा खोदकर वह चल रहा था, उसे मरने के लिए पख फड़-फडाना तुम्हीने सिखाया है, तुम्हीने, ओ इन्द्रदेव की आग ! बहुतो को इसमे ढकेलोगी, तब अन्त मे तुममे-हममे समझौता होगा। ज्यादा देर नही है।

नंदिनी : वही हो, किन्तु एक बात बताते जाओ, मेरे साथ रजन की भेट होने दोगे या नही ?

सर्दार . हर्गिज नही।

नदिनी हर्गिज नही ? देखूंगी कितनी ताकत है तुममें ! उसके साथ मेरा मिलना होकर ही रहेगा। ज़रूर होगा, और आज ही। तुम्हे बताए देती हूँ।

(सर्दार का प्रस्थान)

नदिनी . (खिड़की को धक्का मारकर) राजा, ओ राजा, सुनो ! तुम्हारी विचार-शाला कहाँ है ? मै तुम्हारे इस जाल के पर्दे को तोड़ दूँगी। वह कौन—वह कौन है ! यह किशोर दिखता है। बोल तो किशोर, तुझे मालूम है हमारा विशू कहाँ है ?

किशोर . हाँ नदिनी, अभी उसके साथ तुम्हारी भेट होगी, दिल मजबूत कर रखो। पता नही पहरेदारो के मालिक ने मेरा मुँह देखकर दया क्यो दिखाई ? मेरे अनुरोध पर इसी रास्ते विशू को ले जाने को राजी हुआ है।

नदिनी पहरेदारो का मालिक ! तो क्या—

किशोर : हॉ वह देखो, आ रहा है।

नदिनी : यह क्या, तुम्हारे हाथ में हथकडी ! पागल भाई, तुम्हें ये लोग इस तरह कहॉ ले चले है ?

(विशू को लिये हुए पहरेदारों का प्रवेश)

विशू : डर नही है, कुछ डर की बात नही है ! पगली, इतने दिन बाद मेरी मुक्ति हुई है।

नदिनी : क्या कहते हो, कुछ समझ मे नही आ रहा है।

विशू : जब डर के मारे पद-पद पर विपत्तियो को सम्हालता हुआ चलता था तब मै छूटा हुआ था। उस छूट के समान वधन और कुछ नही है।

नदिनी : तुमने क्या दोप किया है कि वे तुम्हे बॉधे लिये जा रहे है ?

विशू : इतने दिनो बाद आज सच्ची वात कह दी थी।

नदिनी : इसमे दोप क्या हुआ ?

विशू . कुछ नही।

नदिनी : तो फिर इस प्रकार बॉधा क्यो ?

विशू . इसमे नुकसान क्या हुआ ? सत्य मे मैंने मुक्ति पाई है—यह बधन इसी वात का सत्य-साक्षी हो रहा है।

नदिनी : वे तुम्हे पशु की तरह बॉधकर लिये जा रहे है, उन्हे खुद लज्जा नही लग रही ? छी-छी, वे भी तो आदमी ही है।

विशू . उनके भीतर जो एक प्रकाण्ड पशु बैठा हुआ है—मनुष्य के अपमान से उनका सिर नीचा नही होता, सिर्फ भीतर के पशु की पूँछ फूलती रहती है, हिलती रहती है ?

नदिनी : आहा, पागल भाई, तुम्हे इन्होने मारा भी है क्या ? तुम्हारे शरीर पर ये गोहिए कैसे है ?

विशू . चाबुक मारा है, जिस चाबुक से कुत्तो को पीटते है उसीसे। जिस रस्सी से यह चाबुक तैयार हुआ है उसी रस्सी के सूत से इनके गोसाई की जयमाला भी तैयार हुई है। जब ये लोग ठाकुर का नाम जपते है तो इस बात को भूल जाते है, पर ठाकुर याद रखते है।

नदिनी . मुझे भी तुम्हारे साथ ऐसे ही बॉध ले जायँ भाई मेरे ! तुम्हारी

इस मार मे से मैं भी कुछ हिस्सा यदि न पाऊँ तो आज से मुँह में अन्न नही रुचेगा ।

किशोर : विशु, यदि मै कोशिश करूँ तो वे जरूर तुम्हारे वदले मुझे ले जा सकते है । तुम ऐसी ही अनुमति दो ।

विशू : यह तू पागल-सरीखी वात कर रहा है ।

किशोर : सजा तो मुझे तकलीफ देने से रही । मेरी उमर कम है, मैं खुशी-खुशी सह लूँगा ।

नदिनी : नही-नही किशोर, तू ऐसी वात मत कह !

किशोर : नदिनी, आज मैंने काम मे कोताही की है, उनको इसकी खवर लग गई है । मेरे पीछे उन्होने कुत्ता लगा रखा है । वे मेरा जो अपमान करेंगे उससे यह सजा मुझे वचा लेगी ।

विशू : नही किशोर, अब पकड़े जाने से काम नही चलेगा, एक खतरा-भरा काम करना है । रजन यहाँ आ गया है, जैसे हो उसे बाहर निकालना होगा । सीधा काम नही है ।

किशोर : नदिनी, तो फिर मै विदा हुआ । रजन के साथ भेट होने पर तुम्हारी कौन-सी वात उसे वताऊँगा !

नदिनी : कुछ नही उसे वह लाल कनेर का गुच्छा दे देना, इसीसे मुझे जो कुछ कहना है, सव कहा जायगा ।

[किशोर का प्रस्थान]

विशू : इस वार रजन से तुम्हारा मिलन हो !

नदिनी . अब मुझे मिलन मे सुख नही मिलेगा । यह बात मै कभी भूल न सकूँगी कि तुम्हे खाली हाथो विदा किया था । और वह बेचारा वालक किशोर है उसने ही मुझसे क्या पाया भला !

विशू : मन मे तुमने जो आग जला दी है उसके प्रकाश मे उसके अन्तर का सब धन प्रकट हो गया है और चाहिए ही क्या ? याद है न, वह नीलकण्ठ की पाँख रंजन के चूड़े मे पहना देनी होगी !

नदिनी : वह क्या है मेरी छाती के आँचल मे ?

विशू : पगली, फसल कटने का वह गान सुन रही है ?

नदिनी : सुन रही हूँ प्राण रो उठते है ।

विशू · मैदान की लीला समाप्त हुई, खेत का मालिक पकी फसल लेकर

घर चला। चलो प्रहरी, अव अधिक देर करना ठीक नहीं—

गान—१५

फसल का अन्तिम समय है, अब इसे काट लो और गट्ठर बांध लो। काटने लायक जो कुछ नहीं है, उसको छोड़ दो। मिट्टी के साथ मिलकर उसे मिट्टी हो जाने दो।

[सब का प्रस्थान]

(चिकित्सक और सर्दार का प्रवेश)

चिकित्सक : राजा अपने ऊपर आप ही विगड पड़ते है, यह रोग वाहर का नही है, मन का है।

सर्दार : इसका प्रतिकार क्या है ?

चिकित्सक : कोई जवर्दस्त-सा धक्का। या तो वह दूसरे राज्य के साथ हो या नही तो फिर अपनी ही प्रजाओ मे उत्पात लगा देना।

सर्दार : अर्थात् यदि वे और किसी का नुकसान नही कर सकेंगे तो अपना ही कर वैठेंगे।

चिकित्सक : ये वड़े आदमी है वड़े। बच्चे सरीखे खेला करते हैं। एक खेल से जब नाराज होते है तव अगर और एक खेल न जुगा दिया जाय तो अपना ही खिलौना तोड देते है, किन्तु तैयार रहो सर्दार अव ज्यादा देर नही है।

सर्दार : लक्षण देखकर मैंने आगे से ही सव तैयारी कर रखी है। किन्तु हाय-हाय, दुःख की क्या वताऊँ ! हमारी स्वर्णपुरी उस समय जैसे ऐश्वर्य से भर उठी थी, वैसा और कभी नही हुआ था, ठीक उसी समय—अच्छा जाओ, सोच देखता हूँ !

[चिकित्सक का प्रस्थान]

(मुखिया का प्रवेश)

मुखिया : सर्दार-महाराज, आपने वुलाया है ? मैं महाल का मुखिया हूँ।

सर्दार : ३२१ तुम्ही हो न ?

मुखिया : क्या गजव की याददाश्त है मालिक की ! मेरे-जैसे अपात्र को भी नही भूलते।

सर्दार : देश से मेरी स्त्री आ रही है। तुम्हारे महाल के पास डाक वदलेगी।

शीघ्र ही यहाँ पहुँचा देना होगा।

मुखिया मुहल्ले मे बैलो की मरकी पडी है, गाडी खीचने के लिए बैलो का अभाव है। खैर, देखा जायगा, खुदाई करने वाले मज़दूरो को जोत दिया जायगा।

सर्दार : जानते हो न, कहाँ जाना होगा ? बागान-बाड़ी मे जहाँ सर्दारो का भोज है।

मुखिया . जाता हूँ, लेकिन एक बात बताता जाऊँ। जरा कान दे। वह जो ६९ ङ है, जिसे लोग-बाग विशू पागल कहते है उसका पागलपन सुधारने का वक्त आ गया है।

सर्दार · क्यो ? तुम्हारे यहाँ उत्पात करता है क्या ?

मुखिया : मुँह से नही, भाव-भगी से !

सर्दार : अब कोई चिन्ता नही। समझे ?

मुखिया : ऐसा ? तो फिर ठीक है। और एक बात वह जो ४७ फ है, ६९ ङ से कुछ ज्यादा मिलता-जुलता है।

सर्दार : मैने यह भी लक्ष्य किया है।

मुखिया . मालिक का लक्ष्य तो ठीक ही है, फिर भी चारो ओर नज़र रखनी पडती है कि नही, इसीलिए दो-एक छूट भी सकते है। यही देखिए ना, हमारा ९५, गाँव के नाते मेरा फुफुआ-ससुर होता है—अपनी पसली की हड्डियो से सर्दार-महाराज के झाड़ूबर्दार का खडाऊँ बना देने को तैयार है, स्वामि-भक्ति देखकर स्वय उसकी सहर्धमिणी भी लज्जा से सिर नीचा कर लेती है और फिर भी आज तक—

सर्दार : उसका नाम बड़ी बही मे चढ गया है।

मुखिया : चलो, इतने दिनो की सेवा सार्थक हुई। उसे सावधानी के साथ खबर सुनानी होगी, उसे मृगी का रोग भी है, अचानक—

सर्दार : अच्छा, सो होता रहेगा, तुम जल्दी करो।

मुखिया : और एक आदमी की बात कहनी है—होता तो वह मेरा अपना सगा साला ही है, लेकिन उसकी माँ जब मर गई तो मेरी घर वाली ने उसे अपने हाथो पाल-पोसकर बड़ा किया है, तो भी जब मालिक का नमक—

सर्दार : उसकी बात कल होगी, तुम दौड़कर चले जाओ।

मुखिया : मझले सर्दार बहादुर वह आ रहे है। उन्हे मेरी ओर से जरा समझा दें हुजूर। मेरे ऊपर, उनकी नेक नज़र नहीं है। मुझे ऐसा लगता है कि जब मालिक लोगों के इलाके में ६६ ङ आया-जाया करता था, तभी उसने मेरे नाम—

सर्दार : नहीं-नहीं, किसी दिन उसे तुम्हारा नाम लेते नहीं सुना।

मुखिया : वही तो उसकी चालाकी है। जो नामी आदमी है उसका नाम दबाकर ही तो उसे मारा जाता है। छल-बल से, इशारे से, लगालगी करना तो अच्छा नहीं है। हमारे ३३ को यही रोग है। उसको और कोई काम तो है नहीं, समय-बेसमय मालिकों की मंडली मे उसका जाना-आना लगा ही हुआ है। डर लगता है, न जाने कब किसके नाम क्या लगा बैठे। और फिर उन हज़रत के घर की खबर अगर—

सर्दार : आज अब समय नहीं है, जल्दी जाओ।

मुखिया : तो राम-राम सर्दार। (लौटकर) एक बात ! उस टोले का ८८ उस दिन महज तीस रुपये पर घुसा, लेकिन दो साल जाते-न-जाते आज उसकी आमदनी ऊपरी पावना समेत अधिक नही तो डेढ़ दो हज़ार माहवार तो होगी ही। हुजूर लोगो का मन सीधा है, देवतो का-सा भोला दिल है, स्तुति सुनकर ही भूल जाते हैं। साष्टांग प्रणाम की घटा देखकर ही—

सर्दार : अच्छा-अच्छा, ये बाते कल होगी।

मुखिया : मेरे तो हुजूर, दया-धरम है, मैं उसकी रोटी मारने को नहीं कहता, किन्तु उसे खजाने के काम मे रखना ठीक हो रहा है कि नहीं, सो एक बार सोच देखे। हमारा विष्णुदत्त उसकी रग-रग का हाल जानता है, उसे बुलाकर—

सर्दार : आज ही बुलाऊँगा, तुम जाओ !

मुखिया : हुजूर मेरा मँझला लड़का अब लायक हो गया है। प्रणाम करने आया था, तीन दिन तक चक्कर काटकर दर्शन न पाकर लौट गया है। बड़े मन के दुःख मे है सरकार। हुजूर के भोग के लिए मेरी पतोहू के हाथ की तैयार की हुई साँची कुम्हड़े की—

सर्दार : अच्छा, परसों आने को कहो। भेंट होगी।

[मुखिया का प्रस्थान]
(मझले सर्दार का प्रवेश)

मझला सर्दार: नाच वाली और वजनियो को वगीचे मे भेजकर आ रहा हूँ।

सर्दार : और रजन का वह कितनी दूर तक—

मझला सर्दार. यह सब काम मुझसे नही होते। छोटे सर्दार ने स्वय पसन्द करके अपने ऊपर उसका भार लिया है। अब तक उसका—

सर्दार : राजा क्या—

मझला सर्दार: राजा निश्चय ही नही समझ सके। दस जनो मे मिलकर उसे—किन्तु इस तरह राजा को धोखा देना मै तो उचित नही समझता।

सर्दार : राजा के प्रति हमारा तो कर्तव्य है उसीके लिए राजा को धोखा देना जरूरी होता है। उसकी जवाबदेही मेरी है। लेकिन अब उस लडकी को विना विलम्ब—

मझला सर्दार: नही-नही, ये बाते मेरे साथ नही। जिस मुखिया पर वह भार डाला गया है वह उपयुक्त आदमी है, कैसा भी गंदगी-भरा काम क्यो न हो, वह एकदम नही हिचकता।

सर्दार : केनाराम गोसाई क्या रजन की बात जानता है?

मझला सर्दार: अन्दाज पर सभी जानता है, साफ जानना नही चाहता।

सर्दार : सो क्यो?

मझला सर्दार. कही 'नही जानता' कहने का रास्ता बन्द न हो जाय, इसीलिए।

सर्दार . बन्द अगर हो ही गया तो क्या?

मझला सर्दार: नही समझे? हम लोगो का तो सिर्फ एक ही चेहरा है—सर्दार का चेहरा। किन्तु उसकी एक पीठ की ओर गुसाईं का चेहरा है, दूसरी ओर सर्दार का। रामनामा ज़रा-सा उलझा नहीं कि वह फॉस बन जाता है। इसीलिए सर्दारी धर्म का पालन अपने से ही छिपाकर करना होता है, ऐसा करने से नाम-जप के समय ज्यादा दिक्कत नही होती।

सर्दार : नाम-जप छोड़ ही देता तो क्या होता?

मझला सर्दार. लेकिन इधर उसका मन तो धर्मभीरु है, रक्त चाहे-जैसा हो। इसीलिए, स्पष्ट भाव से नाम-जप और अस्पष्ट भाव से सर्दारी

करने से वह स्वस्थ रहता है। वह है इसीलिए हमारा देवता आराम मे है, उसका कलक ढका हुआ है, नही तो उसका चेहरा अच्छा नही दीखता।

सर्दार . मझले सर्दार, मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारे रक्त के साथ भी सर्दारी के रक्त का मेल अभी तक नही बैठा।

मझला सर्दार: रक्त सूखते ही यह बला जाती रहेगी, अब भी यह आशा है। लेकिन आज भी मै तुम्हारे उस ३२१ को बर्दाश्त नही कर सकता। जिसे दूर से चिमटे से पकडने पर भी घृणा मालूम होती है उसीको जब हवा मे सुहृद कहकर छाती से लगाना पडता है तब किसी भी तीर्थ के जल मे हजार स्नान करने पर भी अपने को पवित्र समझना कठिन हो जाता है।—वह देखो, नदिनी आ रही है।

सर्दार · चले आओ मझले सर्दार !

मझला सर्दार. क्यो डर काहे का हे ?

सर्दार तुम्हारा विश्वास नही; मुझे मालूम है तुम्हारी आँखो मे नदिनी का नशा छाया हुआ है।

मझला सर्दार: लेकिन तुम्हे नही मालूम कि तुम्हारी आँखो मे भी कर्त्तव्य के साथ कुछ थोडा-सा लाल कनेर का रग मिला हुआ है, इसीलिए उसकी लालिमा इतनी भयकर हो उठी है।

सर्दार . होगा। मन की बात मन खुद भी नही जानता। तुम चले आओ मेरे साथ।

[दोनों का प्रस्थान]
(नदिनी का प्रवेश)

नदिनी : देखते-देखते सिंदूरिया बादलो से आज की गोधूलि लाल हो उठी। यही क्या हम दोनो के मिलन का रग है ? मेरा सिंदूर ही मानो सारे आसमान मे फैल गया है ! (खिडकी को धक्का मारकर) जब तक नही सुनोगे तब तक दिन-रात यहाँ पडी रहूँगी।

(गोसाई का प्रवेश)

गोसाई : किसे ठेल रही हो !

नदिनी · तुम्हारे उस अजगर को, जो ओट मे छिपा हुआ आदमी निगला करता है।

गोसाईं : हरि ! हरि !! भगवान् जब छोटे को मारना चाहते है तो उसके छोटे मुँह मे बड़ी बात बैठा देते है। देखो, नदिनी, तुम विश्वास करो, मैं तुम्हारी मंगल-कामना करता हूँ।

नदिनी : इससे मेरा मगल नही होगा।

गोसाईं : आओ मेरे ठाकुर-घर मे तुम्हे हरिनाम सुनाऊँ।

नदिनी : सिर्फ नाम लेकर मै क्या करूँगी ?

गोसाईं : मन में शान्ति पाओगी।

नदिनी : यदि मै शान्ति पाऊँ तो मुझे धिक्कार है। मैं इस दरवाजे पर इन्तज़ार करती बैठी रहूँगी।

गोसाईं : देवता की अपेक्षा मनुष्य पर तुम्हारा विश्वास अधिक है ?

नदिनी : तुम्हारा वह ध्वज-दण्ड का देवता कभी नर्म नही होगा। लेकिन जाल की ओट मे बैठा हुआ आदमी क्या सदा-सर्वदा जाल मे ही बँधा रहेगा ? जाओ, जाओ, जाओ ! मनुष्य का प्राण नोचकर उसे नाम-जप से भुलवाना ही तुम्हारा रोजगार है।

[गोसाईं का प्रस्थान]

(फागूलाल और चन्द्रा का प्रवेश)

फागूलाल : विशू तुम्हारे साथ आया था, वह इस समय कहाँ है ? सच बताओ।

नदिनी : उसे गिरफ्तार करके ले गए है।

चद्रा : राक्षसी तूने ही उसे पकडवा दिया है, तू उनकी चर है।

नदिनी : कौन-सा मुँह लेकर तुम ऐसी बात कह सकी ?

चद्रा : नही तो यहाँ तेरा क्या काम है ? खाली सबका मन भुलाती घूमती-फिरती है !

फागूलाल : यहाँ सभी सबको सदेह की नजरो से देखते है, लेकिन फिर भी मैं तुम्हारे ऊपर विश्वास करके आया हूँ। मन-ही-मन तुम्हे—अच्छा जाने भी दो इस बात को। लेकिन आज जाने कैसा लग रहा है !

नदिनी : लगता होगा ! मेरे साथ आकर ही वह आफत मे फँस गया। तुम लोगो के साथ रहते वह निरापद था, यह बात उसने खुद कही।

चद्रा : तब क्यो उसे फुसला लाई, सत्यानाशी !

नदिनी : क्या करूँ, उसने कहा था कि मुझे मुक्ति चाहिए।

नदिनी : (खिडकी पर धक्का मारकर) समय हो गया है, द्वार खोलो !

नेपथ्य से . फिर तुम असमय मे आई हो। अभी जाओ, जाओ !

नदिनी . इन्तज़ार करने का समय नही है, मेरी वात सुननी ही पड़ेगी।

नेपथ्य से : क्या कहना है, वाहर से ही कहकर चली जाओ !

नदिनी : वाहर से मेरी वात का सुर तुम्हारे कानो तक नही पहुँच पाता।

नेपथ्य से आज ध्वजा-पूजा का दिन है, मेरा मन विक्षिप्त मत करो। पूजा मे व्याघात होगा। जाओ, जाओ, अभी जाओ !

नदिनी : मेरा डर जाता रहा है, इस तरह तुम खदेड़ नही सकते। मरूँ वह भी अच्छा है, लेकिन दरवाज़ा खुलवाए विना यहाँ से मैं हिलती नही।

नेपथ्य से : शायद रजन को चाहती हो ? सर्दार से कह दिया है, वह अभी उसे ला देगा ! पूजा के लिए जाने लगूँ तो दरवाज़े पर खडी न रहना। नही तो विपद् आयगी।

नंदिनी . देवता को समय का अभाव नही है, वे पूजा के लिए युग-युगान्तर तक इन्तज़ार कर सकते हैं। मनुष्य को दु ख तो मनुष्य का सहारा चाहता है। उसका समय थोडा होता है।

नेपथ्य से : मै थका हूँ, बुरी तरह थका हूँ। ध्वजा-पूजा मे जाकर थकान मिटा आऊँगा। मुझे कमजोर मत वनाओ। इस समय तुमने वाधा डाली तो रथ के पहिये के नीचे धुर्रा उड़ जायगा तुम्हारा !

नंदिनी . छाती पर से पहिया निकल जाय, मैं नही हिलती।

नेपथ्य से : नदिनी, तुमने मेरे यहाँ प्रश्रय पाया है, इसीलिए नही डरती। लेकिन आज डरना ही होगा।

नदिनी . मै चाहती हूँ कि जैसे सवको डर दिखाते फिरते हो वैसे ही मुझे भी डराओ। तुम्हारे प्रश्रय को मै घृणा करती हूँ।

नेपथ्य से : घृणा करती हो ? स्पर्धा चूर्ण-विचूर्ण हो जायगी। तुम्हे अपना परिचय दे दूँ ऐसा समय आ गया है।

नदिनी : परिचय की ही इन्तज़ारी मे हूँ, खोलो द्वार। (द्वार का खुलना) यह क्या ! यह कौन पड़ा हुआ है, रजन-जैसा देख रही हूँ जैसे।

राजा : क्या कहा, रजन ? रंजन ! यह रंजन कभी नही हो सकता।

नंदिनी : हाँ राजा, यही तो मेरा रंजन है।

राजा : उसने अपना नाम क्यो नही वताया ? इतनी हिमाकत के साथ क्यो आया ?

नंदिनी · जागो रजन, मै आई हूँ तुम्हारी सखी। राजा, वह क्यो नही रहा ?

राजा : धोखा दिया है। तुझे इन सबो ने धोखा दिया है। अनर्थ हो गया ! मेरा अपना ही यत्र मुझे नही मानता। कौन है रे, बुला सर्दार को वाँधकर ले आ उसे।

नदिनी : राजा, रजन को जगा दो। सब कहते है तुम जादू जानते हो, उसे जगा दो !

राजा : मैंने यमराज से जादू सीखा है। जगा नही सकता, जागरण मिटा सकता हूँ।

नंदिनी : तो मुझे भी उसी नींद मे सुला दो ! मै नही सह सकती। यह कैसा सत्यानाश कर दिया तुमने ?

राजा : मैंने यौवन को मारा है—इतने दिन से अपनी सारी ताकत लगाकर केवल यौवन को मारता आया हूँ। मुझे मेरे यौवन का अभिशाप लगा है।

नंदिनी उसने क्या मेरा नाम नही वताया ?

राजा : इस तरह वताया था कि मैं सह नही सका। अचानक मेरी रग-रग मे जैसे आग सुलग गई हो।

नदिनी (रंजन के प्रति) वीर मेरे, यह नील कण्ठ का पर तुम्हारी चूडा पर मैंने पहना दिया। आज से तुम्हारी विजय-यात्रा शुरू हुई है। उस यात्रा की वाहन मैं हूँ। आहा, यह उस लाल कनेर की मंजरी इसके हाथो मे है। तब तो किशोर ने उसे देखा था। वह कहाँ गया ? राजा, कहाँ गया वह वालक ?

राजा : कौन वालक ?

नंदिनी : जिसने रजन को यह मजरी दी थी ?

राजा : अजीव लड़का था वह। लडकी की तरह तो उसका अदनार मुख था, किन्तु बाते वड़ी उद्धत थी। हिमाकत तो देखो, वह मेरे ऊपर टूट पड़ने आया था।

नदिनी : फिर क्या हुआ ? क्या हुआ उसका ? वोलो, क्या हुआ ? तुम्हे

बताना ही पड़ेगा चुप क्यो हो ?

राजा : वह बुद्बुद् की तरह लुप्त हो गया।

नंदिनी : राजा अब समय हो गया।

राजा : काहे का समय ?

नदिनी : मेरी सारी शक्ति के साथ तुम्हारी लडाई होगी।

राजा मेरे साथ लड़ोगी तुम ? तुमको तो मै इसी क्षण मार सकता हूँ।

नदिनी : उसके बाद प्रत्येक क्षण मेरा वह मरना तुम्हे मारता रहेगा। मेरे पास कोई अस्त्र नही हैं, मेरा अस्त्र मृत्यु है।

राजा : तो फिर पास आओ। मेरे ऊपर विश्वास करने की हिम्मत है ? चलो मेरे साथ। आज मुझे अपना साथी बना लो, नदिनी !

नदिनी : कहाँ जाना होगा !

राजा : मेरे विरुद्ध लड़ाई करने, किन्तु मेरे ही हाथो मे हाथ रखकर। समझी नही तुम ? वह लडाई शुरू हो गई है। यह मेरी ध्वजा; मै तोड देती हूं इसका दण्ड और तुम फाड डालो इसका केतन। मेरे ही हाथो मे तुम्हारा हाथ आकर मुझे मारे। मार डाले, अच्छी तरह रगड़ डाले ! इसीमे मुक्ति है !

दल के आदमी : महाराज यह क्या अनर्थ है, कैसी उन्मत्तता है ! ध्वजा यह हमारी तोड दी आपने। यह हमारे देवता की ध्वजा तोड़ दी आपने। पृथ्वी को और दूसरी ओर स्वर्ग को वेध डाला है। वही हमारा परम पवित्र ध्वज-दण्ड। पूजा के दिन यह कैसा घोर पाप है ! चल रे चल, सर्दारो को खबर दे।

[प्रस्थान]

राजा : अब भी बहुत-कुछ तोड़ना बाकी है, तुम भी चलोगी मेरे साथ, नदिनी प्रलय-पथ मे मेरी दीप-शिखा !

नदिनी : मै चलूँगी।

[फागूलाल का प्रवेश]

फागूलाल . विशू को वे किसी तरह नही छोड़ेगे। यह कौन यही राजा है क्या ! डाकिनी, अब इसके साथ परामर्श चल रहा है ! विश्वास-घातिनी !

राजा : तुम्हे क्या हो गया है ? क्या करने निकले हो ?

फागूलाल : बंदीशाला का दरवाज़ा तोडने। मरेंगे, लेकिन लौटेंगे नही।

राजा : लौटेंगे क्यो ! तोड़ने के रास्ते मै भी चला हूँ। वह देखो उसका पहला चिह्न—मेरी तोडी हुई ध्वजा, मेरी अन्तिम कीर्ति।

फागूलाल : नंदिनी ठीक-ठीक नही समझ सका। हम सीधे आदमी है, दया करो, हमे धोखा मत दो। तुम तो हमारे घर की लड़की हो।

नंदिनी : फागूभाई, तुमने तो मृत्यु का ही प्रण किया है। धोखा खाने में तो कुछ भी बाकी नही रखा है !

फागूलाल : नंदिनी, तब तुम भी हमारे साथ चलो !

नंदिनी मैं तो इसीलिए बची हूँ। फागूलाल, मैने रंजन को तुम सबके बीच ले आना चाहा था। वह देखो, आ गया है मेरा वीर—मृत्यु को तुच्छ करके !

फागूलाल : सर्वनाश ! वही क्या रंजन है ? नि शब्द पड़ा हुआ है।

नंदिनी : नि शब्द नही है। मृत्यु में उसका अपराजित कण्ठ मैं सुन रही हूँ। रंजन जी उठेगा, वह कभी मर नही सकता !

फागूलाल . हाय री नंदिनी, मेरी सुन्दरी ! इसीलिए क्या तू इतने दिनो से बाट जोह रही थी, हमारे इस अध नरक मे ?

नंदिनी . उसके आने की राह देख रही थी, वह तो आ गया, वह फिर आने की तैयारी करेगा, वह फिर आयगा। चंद्रा कहाँ है फागूलाल ?

फागूलाल . वह गोकुल को लेकर सर्दार के वहाँ रोने-धोने गई है। सर्दार पर उनका अगाध विश्वास है। लेकिन महाराज तुमने गलत तो नही समझा ? हम लोग तुम्हारी ही बंदीशाला तोड़ने निकले है।

राजा : हाँ मेरी ही बंदीशाला। तुम-हम दोनो मिलकर काम करेंगे। यह काम अकेले तुम्हारे वश का नही है।

फागूलाल . सर्दारो ने खबर पाई नही कि रोकने पहुँचेंगे।

राजा : उनके साथ मेरी लड़ाई है।

फागूलाल ' सेना वाले तुम्हे मानेंगे नही।

राजा : अकेला लड़ूँगा। साथ में तुम लोग तो हो।

फागूलाल : जीत सकोगे ?

राजा : मर तो सकूँगा न ! इतने दिन वाद मरने का मतलव समझ सका हूँ।—मैं वच गया हूँ !

फागूलाल : राजा, गर्जन सुन रहे हो ?

राजा : वह देख रहा हूँ, सर्दार सेना लेकर आ रहा है। इतनी जल्दी कैसे यह सभव हुआ ? आगे से ही तैयार था, सिर्फ़ मैं ही नही जानता था। मुझे धोखा दिया है ! मेरी ही शक्ति से वांधा है मुझे।

फागूलाल : मेरा दल-वल तो अभी आया नहीं।

राजा : सर्दार ने ज़रूर उन्हे रोक रखा है। वे अव नही आ सकेंगे।

नंदिनी : मन मे था कि वे विशू पगले को मेरे पास पहुँचा देंगे। सो क्या अव संभव नही है ?

राजा : उपाय नही है। राह-घाट रोकने मे सर्दार-जैसा उस्ताद मैंने किसी को नही देखा।

फागूलाल : तो फिर चलो नदिनी, तुम्हें सुरक्षित जगह मे पहुँचा आऊँ, फिर जो होना होगा, सो होगा। सर्दार ने तुम्हे देखा तो खैर नही है।

नदिनी : अकेली मुझको ही सुरक्षितता के निर्वासन में भेजोगे ? फागूलाल, तुमसे तो सर्दार अच्छा, उसीने मेरी जय-यात्रा का पथ खोल दिया है। सर्दार ! देखो, उसने वर्छे की नोक पर मेरी कुंद-फूल की माला झुला रखी है। उस माला को मैं अपनी छाती के रक्त से लाल कनेर के रंग का वना जाऊँगी। सर्दार ने मुझे देख लिया है। जय, रंजन की जय !

[द्रुत प्रस्थान]

राजा : नंदिनी !

[प्रस्थान]

(अध्यापक का प्रवेश)

फागूलाल : कहाँ दौड़े जा रहे हो अध्यापक ?

अध्यापक : किसी ने बताया—राजा इतने दिन बाद चरम प्राण का संधान पाकर निकल पड़ा है। मैं भी पोथी-पत्रा फेंककर साथ देने चला आया।

फागूलाल : राजा तो वह मरने गया, उसने नंदनी की आवाज़ सुनी है।

अध्यापक : उसका जाल फट गया है। नंदिनी कहाँ है ?

फागूलाल : वह सबके आगे है। अब तो उस तक पहूँचना मुश्किल है।

अध्यापक : अभी तो पहुँचा जा सकता है। अब वह तरह नही दे सकती। उसे पकड़ूँगा।

[प्रस्थान]

(विशू का प्रवेश)

विशू : फागूलाल, नदिनी कहाँ है ?

फागूलाल : तुम कैसे आए ?

विशू : हमारे कारीगरो ने बदीशाला तोड़ दी है। वे उधर लड़ने जा रहे है ! मै नदिनी को खोजने आया हूँ। वह कहाँ है।

फागूलाल : वह सबके आगे चली गई है।

विशू : कहाँ ?

फागूलाल : अन्तिम मुक्ति मे।

विशू : वहा तो रजन है !

फागूलाल : धूल मे देख रहे हो उसके रक्त की रेखा ?

विशू : समझ गया ! वही इन दोनो के परम मिलन की रक्त-राखी है ! इसके बाद अकेले महायात्रा का मेरा समय आ गया। खूब संभव, मेरी पगली गान सुनना चाहेगी ! आ रे भाई, अब लड़ाई पर चल।

फागूलाल : नदिनी की जय !

विशू : नंदिनी की जय !

फागलाल : और वह देखो, धूल में लोट रहा है, उसके लाल कनेर का ककण ! दाहिने हाथ से न जाने कब खिसक पड़ा है ! आज अपना हाथ खाली करके वह चली गई।

विशू : मैंने उससे कहा था कि उसके हाथ से कुछ लूंगा नही, किन्तु

लेना पड़ा यह उसका आखिरी दान ।

[प्रस्थान]

(दूर गाना सुनाई देता है)

गान—१६

पौष तुम्हें बुला रहा है, आ जाओ, आ जाओ ! उसकी पकी फसल की डलिया पर धूल का आँचल छा गया है ।

●

परिशिष्ट

गान १

पौष तोदेर डाक दियेछे—आय रे चले
आर, आय, आय, !
डाला रे तार भरेछे आज पाका फसले
मरि, हाय, हाय, हाय !

गान २

हावार नेशाय उठलो मेते
दिग्वधूरा धानेर खेत,
रोदेर सोना छड़िये पड़े माटिर आँचले—
मरि, हाय, हाय, हाय !

गान ३

माठेर बाँशि शुन शुने आकाश खुसि हलो
घरेते आज के रवेगो। खोलो दुयार खोलो।

गान ४

आलोर खुशी उठलो जेगे
धानेर शीषे शिशिर लेगे,
धरार खुशी धरे ना गो, ओइ-जे उथले,
मरि, हाय, हाय, हाय !

गान ५

मोर स्वपन-तरीर के तुइ नेये।
लागलो पाले नेशार हावा, पागल परान चले गेये।

आमाय भुलिये दिये या
तोर दुलिये दिये ना
तोर सुदूर घाटे चल रे वेये।

गान ६

आमार भावना तो सब मिछे,
आसार सब पड़े थाक् पिछे।
तोमार घोम्टा खुले दाओ,
तोमार नयन तुले चाओ,
दाओ हासिते मोद पराण छेये।

गान ७

तोर प्राणेर रस तो शुकिये गेलो ओरे,
तबे मरण रसे ने पेयाला भरे।
स-ये चितार आगुन गालिये ढाला,
सब ज्वलेनर मेटाय ज्वाला,
सब शून्यके से अट्ट हेसे देय ये रंगीन करे।

गान ८

तोर सूर्य छिलो गहन मेघेर माझे,
तोर मेरेछे अकाजेरइ काजे,
तबे आसुक्-ना सेइ तिमिर राति,
लुप्ति - नेशार चरम साथी,
तोर क्लान्त आँखि दिक् से
ढाकि दिक्-भोलाबार घोरे।

गान ९

तोमाय गान सोनावो ताइ तो आमाय जागिये राखो,
ओगो घुम - भाङानिया!
बुके चमक दिये ताइ तो डाको,
ओगो दुख - जागानिया!
एलो आंधार घिरे,
पाखी एलो नीड़े,

तरी एलो तीरे,
शुधु आमार हिया बिराम पाय नाको,
ओगो दुख - जागानिया !

गान—१०

आमार काजेर माझे माझे
कान्नाधरार दोला तुमि थामते दिले ना ये।
आमाय परश क'रे
प्राण सुधाय भ'रे
तुमि जाओ ये सरे,
बुझि आमार व्यथार आड़ालेते दाँड़िये थाको,
ओगो दुख - जागानिया !

गान ११

ओ चाँद, चोखेर जलेर लाग्लो जोयार दुखेर पारावारे,
हलो कानाय कानाय कानाकानि एइ पारे ओइ पारे।
आमार तरी छिलो चेनारकूले, बाँधन ताहार गेलो खुले,
तारे हावाय-हावाय निये गेलो कोन् अचेनार धारे।

गान १२

भालोबासि भालोबासि—
एइ सुरे काछे दूरे जले स्थले बाजाय बाँशी।
आकाशे कार बुकेर माझे
व्यथा बाज,
दिगन्ते कार कालो आँखि
आँखिर जले जाय गो भासि।

गान १३

सेइ सुरे सागर-कूले
बाँधन खुले
अतल रोदन उठे दुले।
सेइ सुरे बाजे मने

अकारणे
भुले-जावा गानेर वाणी,
भोला दिनेर काँदन-हासि।

गान १४

युगे युगे बुझि आमाय चेयेछिल से।
सेइ बुझि मोर पथेर धारे रयेछे वसे।
आज केन मोर पड़े मने कखन तारे चोखेर कोणे
देखेछिलेम अफुट प्रदोषे।
सेइ येन पथेर धारे रयेछे बसे।
आज ओइ चाँदेर वरण हवे आलोर सङ्गीते,
रातेर मूखेर आँधार-खानि खुलबे इङ्गिते।
शुक्ल राते शेइ आलोके देखा हबे, एक पलके
सब आवरण याबे ये खसे।
सेइ येन मोर पथेर धारे रयेछे वसे।

गान १५

शेष फलनेर फसल एवार केटे लओ बाँधों आँटि,
वाकि या नय गो नेबार माटिते होक ता माटि।

गान १६

पौष तोदेर डाक दियेछे—आय रे चले,
आय, आय, आय।
घलार आँचल भरेछे आज पाका फसले,
मारि, हाय, हाय, हाय!